काली माटी के अंचल से...

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

काली माटी के अंचल से...

कि. राजनारायणन

अनुवाद

एच. बालसुब्रमण्यम

एकं सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1879-9

पहला संस्करण : 1996 (*शक 1918*)

Original Title : Karisal Kattu Kadudashi (*Tamil*)
Translation : Kali Maatee Ke Anchal Se (*Hindi*)

रु. 39.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

भूमिका

कि. राजनारायणन का व्यक्तित्व निराला है, उसी भांति निराला है उनका कृतित्व। व्यवसाय से वे काली माटी अंचल के कृषक हैं। तमिलनाडु के नेल्लै तथा चिदंबरनार जिलों में उत्तर तथा पूर्व की तरफ फैला हुआ प्रदेश काली माटी का अंचल कहलाता है। यहां की माटी काले रंग की है, वर्षा की कमी की वजह से कम उपजाऊ है, इसलिए यहां पर सूखे प्रदेश की फसलें होती हैं। इस मिट्टी की एक और खासियत है, यह अपनी संतान से कड़ी मेहनत मांगती है।

इस इलाके के इडैचेवल गांव में जन्मे कि. राजनारायणन नायकर वंश-परंपरा में आते हैं। ये लोग धार्मिक विश्वास से पक्के वैष्णव हैं। कि. राजनारायणन ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं हैं। इसी गांव के प्रसिद्ध लेखक कु. अलगिरि सामी के संपर्क से लेखन के क्षेत्र में आए। काफी समय तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ संबद्ध रहने की वजह से इनका इस दल के चोटी के नेताओं से घनिष्ठ परिचय रहा। पार्टी के आंदोलनों में भाग लेकर इन्होंने जेल-यात्राएं भी कीं। परंतु बाद में उन्होंने इस पार्टी से अपना नाता तोड़ लिया था।

कि. राजनारायणन का एक और महत्वपूर्ण संपर्क है और यह है रसिकमणि टी.के. चिदंबरनाथ मुदलियार के साथ, जिन्होंने तमिल के समालोचना साहित्य में सर्वप्रथम रसिकता का समावेश किया था। यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि रसिकमणि के साथ से कि. राजनारायणन के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनके दृष्टिकोण को एक नया मोड़ मिला।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ संपर्क ने उन्हें मानव-जीवन को यथार्थ रूप में देखने की दृष्टि प्रदान की। टी.के.सी. के साथ संपर्क ने उनके मानस में रसिकता को उजागर किया। इन दोनों विशेषताओं के सरस सम्मिश्रण की सुंदर परिणति है कि. राजनारायणन की कृतियां। यदि प्रथम संपर्क ने उनके साहित्य की विषय वस्तु को समृद्ध किया तो द्वितीय संपर्क ने उसके स्वरूप को सघनता से रससिक्त बनाया। अर्थात कथ्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की कला सिद्ध हो गई।

कि. राजनारायणन का साहित्यिक जीवन सन 1958 से प्रारंभ होता है। "सरस्वती", "तामरै", "दीपम्", "कणैयाषी", ''कल्कि'', "जूनियर विकटन्", "ताय्", "कुमुदम्", "मन ओसै" आदि प्रशस्त पत्र पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं। इन समसामयिक पत्रिकाओं में उन्होंने अनेक उत्कृष्ट कहानियों की रचना की है। इन कहानियों में उनका मानवतावादी स्वरूप उभरता है। "गोपल्ल ग्रामम्", "गोपल्ल ग्रामन्तु मक्कल्" (गोपल्ल गांव की जनता) - ये दोनों उपन्यास तमिल के उपन्यास साहित्य में सदा अमर रहेंगे।

कि. राजनारायणन की समस्त कृतियों में उनके अपने गांव अथवा काली माटी के अंचल का जीवन प्रतिबिंबित है। अपनी रचनाओं में वे जनता के अतीत काल के इतिहास तथा वर्तमान की समस्याओं का बारीक बारीक चित्र खींचते हैं। इस चित्रांकन के लिए वे जनता की बोली का उसके अपने मुहावरों और कहावतों का उनकी भाषा की आंचलिकता का इस तरह कुशल प्रयोग करते हैं कि उनके सहज रस में लेशमात्र भी ह्रास न हो। यही कारण है कि कि. राजनारायणन काली माटी के आंचलिक लेखक कहलाते हैं।

इतनी सारी विशेषताओं से युक्त इस कथाकार और उपन्यासकार ने हाल ही में काली माटी अंचल की जनता की बोली पर एक कोश-ग्रंथ तैयार किया है, लोक-साहित्य पर अनेक महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं, पत्र-शैली में भी उत्कृष्ट रचनाएं की हैं। प्रस्तुत कृति "करिसल काट्टु कडुदाशि" (काली माटी के अंचल से...) पत्र-साहित्य और रेखाचित्र साहित्य दोनों के मिश्रण से उत्पन्न एक नवीन विधा में आती है।

रेखाचित्र साहित्य तमिल में एक नई विधा है। आधुनिक तमिल साहित्य में किसी भी नवीनता का अनुसंधान करते हुए हम महाकवि सुब्रह्मण्य भारती का उल्लेख किए बिना आगे नहीं बढ़ सकते। इस शताब्दी के प्रारंभ में भारती ने हिंदुस्तान की राजनीति, आर्थिक स्थिति, नई नई लहरें आदि को आधार बनाकर अनगिनत रेखाचित्रों की रचना की है। उनके अनुयायी व. रामस्वामी अय्यंगार ने "काली माटी के अंचल से" वाली शैली में सन 1920 में ही लेख लिखे हैं। इनका समाहार अब "नडै चित्तिरम्" (व्यवहार चित्रण) के नाम से प्रकाशित हुआ है। सन 1930 के दशक में अनेक कहानीकारों ने ललित रेखाचित्र लिखे हैं, किंतु इनमें से व.रा. के रेखाचित्रों को छोड़कर शेष लेखकों के निबंध या तो विवरणात्मक हैं या साहित्यिक विवादों पर आधारित हैं।

पाश्चात्य देशों में लोकप्रिय रेखाचित्र विधा जो है, उस किस्म के रेखाचित्र तमिल साहित्य में विरल हैं। इस विधा विशेष में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए पूरी संभावना रहती है। चार्ल्स लैंब या ऑलिवर गोल्डस्मिथ के रेखाचित्रों में कृतिकार का व्यक्तित्व सुंदर ढंग से प्रकाशित हुआ है। तमिल में ऐसे रेखाचित्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। किंतु कल्कि और नाडोडी ने इस स्थिति को बदल दिया। कृतिकार की भावनाओं को व्यक्त करने वाले बहुत से रेखाचित्र कल्कि द्वारा लिखे गए, नाडोडी ने भी प्रचुर मात्रा में इस तरह के रेखाचित्र

लिखे। इनके रेखाचित्रों में तत्कालीन समाज की कमियों-न्यूनताओं पर गहरा व्यंग्य किया गया है। ये दोनों ही लेखक मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी हैं, महानगर के रहने वाले हैं इसलिए इन्होंने शहरी जनता को केंद्रित करके अपने व्यंग्य का ताना-बाना बुना था।

कि. राजनारायणन की प्रस्तुत कृति "करिसल काट्टु कडुदाशि" (काली माटी के अंचल से...) इसी रेखाचित्र विधा में आती है। इस समाहार में संकलित सभी रेखाचित्र काली माटी के अंचल की जनता से संबंधित हैं। इन रेखाचित्रों में उनके जीवन की समस्याओं, आचार-विचार और रहन-सहन की चर्चा मिलती हैं। इनमें, देहाती जनता की अस्मिता प्रतिफलित है। अर्थात ये रेखाचित्र शहरी लेखकों की कृतियों से हटकर ग्रामीण अंचल की सुगंध से सुवासित हैं। इनमें आपको माटी की सुगंध मिलेगी। काली माटी अंचल की जनता के द्वारा प्रयुक्त शब्दों, मुहावरों और कहावतों को कि. राजनारायणन ने मुद्रण-यंत्र पर आरूढ़ करके उन्हें एक सौंदर्य और सौकुमार्य प्रदान किया है।

ये सारे रेखाचित्र इस बात का प्रमाण दे रहे हैं कि काली माटी अंचल की जनता के साथ लेखक किस हद तक घुल-मिल गए हैं, उनके साथ कैसे एकाकार हो गए हैं। "अलगू ने तमिल सीखी" नामक रेखाचित्र में कट्टरपंथी शुद्ध तमिलवादियों की खिल्ली उड़ाई गई है। "रूढ़ियां, विश्वास और निदान" में देहाती जनता के अंधविश्वासों की आलोचना की गई है। "कुत्ते" पालतू जानवरों के संबंध में सरस रेखाचित्र है। परपीड़न में सुख पाने वाले क्रूर-विनोदी स्वभाव के लोगों का चित्रण "हैवानियत" में मिलता है। "गुंडे और देवता" में ग्रामीणों के ईश्वर विश्वास की नुक्ताचीनी मिलती है। स्वच्छंद रूप से विचरण करता कोई नौजवान शादीशुदा होने पर किस तरह जोरू का गुलाम बन गया, इसी घटना को लेखक हंसी-मजाक में "आठवां झोंका" कहते हैं। देश में पहले-पहल चाय-काफी का प्रचलन जब शुरू हुआ, देहाती लोगों ने इनका स्वागत कैसे किया, इसका मजेदार वर्णन "वह जमाना" में मिलता है। "अजूबे गांव के" और "घनघोर वर्षा ऋतु में" इन दोनों रेखाचित्रों में गांव के रीति रिवाजों का रोचक वर्णन हुआ है। "दिखा दिया अंगूठा" में दिखाया गया है कि सरकारी दफ्तरों में लोगों को किस तरह आसानी से ठगा जाता है। "कषुगुमलै तो है पर कषुमरम् (सूली) नदारद" राजनीतिक ठगी का पर्दाफाश करता है। धार्मिक विद्वेष के कारण "कषुमरम्" शब्द को शब्दकोश से ही कैसे हटा दिया गया, यह इस रेखाचित्र का कथ्य है। "एलाप् पोरुत्तम" (सातवां मेल-मिलाप) विद्युत निगम के भ्रष्टाचारों का खुलासा करता हुआ शुरू होकर देहाती जनता के चरित्र, धार्मिक विश्वास, राजनीतिक विचार आदि में पल्लवित और पुष्पित होता हुआ आगे बढ़ता है। यह एक सुदीर्घ रेखाचित्र है।

इस समाहार में सम्मिलित अनेक रेखाचित्रों में कहानी के सभी लक्षण मौजूद हैं। "पुलिस दादाजी" इसका अच्छा उदाहरण है। "गुंडे और देवता" में भी कहानी के समस्त तत्व विद्यमान हैं। रेखाचित्र असल में उपन्यास और कहानी का मध्यवर्ती स्वरूप है। अंग्रेजी साहित्य में

कहानियों की शुरुआत से काफी पहले ही रेखाचित्र ने अपना रूप संवारा था। कुछ ललित रेखाचित्र कहानी का-सा आनंद देते हैं। कि. राजनारायणन के ये रेखाचित्र भी इसी कोटि में आते हैं।

कि. राजनारायणन की कृतियां हास्य रस से भरपूर हैं। हास्य-व्यंग्य के माध्यम से वे अपने पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। अपनी देखी-सुनी घटनाओं के रोचक वर्णन के द्वारा वे पाठकों को अपने चारों ओर की साधारण जनता की दयनीय दशा का अनुभव कराते हैं। पाठकों के मन में जब यह चित्र साकार होता है, तो वहां पर हास्य मिश्रित करुण-रस का परिपाक हो जाता है। अपनी इसी विशेषता के कारण कि. राजनारायणन एक महान मानवतावादी लेखक के रूप में परिगणित होते हैं।

एस. तोताद्रि

भाग—एक

पुलिस दादाजी

पुलिस दादाजी अब नहीं रहे। जब मैं छोटा था, मेरे मन को प्रभावित करने वाले व्यक्तियों में पुलिस दादा भी एक थे। उन्हें इस दुनिया से कूच किए कई साल हो गए, फिर भी वे आज तक मेरे मन में बसे हुए हैं।

जब मैंने पहली बार उन्हें देखा तभी उनके दांत टूट चुके थे। फिर भी उनकी बोली स्फुट ही थी। वे हट्टे-कट्टे थे, अच्छी कद-काठी थी। इस तरह के व्यक्तित्व के धनी ही उस महकमे में भर्ती हो सकते हैं। इसका फायदा यह है, अगर चोर दो डग भरे तो एक ही डग में लपक कर उसे दबोचा जा सकता है। (दादाजी से मैंने सुना है, उन दिनों सचमुच पुलिस द्वारा चोरों के पीछे भागकर उन्हें पकड़ने का रिवाज था।)

उनकी नाक के बीचों-बीच एक गहरा दाग दिखाई देता था। एक दिन दादा ने वह हादसा सुनाया जिसमें उन्हें यह चोट लगी थी।

बात यूं हुई कि उस पक्के चोर को खदेड़ते हुए जब वे भाग रहे थे, वह साला किसी खोके के अंदर छिप गया। जब दादा झांक कर उसे देखने लगे तो उसने जोर से हंसिया चला दिया। अच्छा हुआ कि दादाजी ने झट अपना मुंह पीछे कर लिया। सिर तो बच गया भगवान की कृपा से, पर वार नाक के बीचों-बीच पड़ा। बोले कि यह उसी का दाग है। मैंने फिर एक अवसर पर पुलिस दादी के सामने इस वाकया का जिक्र किया तो दादीजी मुंह बनाते हुए बोलीं, "तुम भी उसकी बातों में आ गए? अरे, वह आदमी नहीं है बेटे, झूठ का पुलिंदा है हां, पुलिंदा।"

दादी का रुख सदा यही रहा है। उन्हें दादाजी कभी रास नहीं आए। मैंने उन दोनों को आपस में बात करते हुए कभी नहीं देखा। ऐसा भी नहीं था कि दोनों एक-दूसरे से झगड़ा ही करते रहे। बातचीत के जरिए ही तो झगड़ा किया जा सकता है। बात ही न करें तो कैसा झगड़ा? सो, बोलचाल भी नहीं, तकरार भी नहीं।

असल में दादा के लिए दादी कोई पराई औरत नहीं थी, उनकी सगी दीदी की बेटी थी।* यों रिश्ते में ही संबंध करने के पीछे मकसद यही होता है कि एक तो परिवार की संपत्ति बाहर नहीं जाती और दूसरे यह भी मुमकिन है कि पराए घर से लड़की चुनने पर

---

*तमिलनाडु में मामाजी से या मामा/बुआ के बेटे से विवाह संबंध की प्रथा है।

वह सास के खिलाफ लड़ाई का झंडा ऊंचा रखे।

पुलिस दादी मुझे अपने बेटे की तरह चाहती थी। बदकिस्मती ही कहिए उनके बाल-बच्चे नहीं हुए। पुलिस कुनबों के बारे में ग्रामीण समाज में एक विश्वास चला आ रहा है। उसके अनुसार अगर पुलिस वालों के यहां बच्चे होते तो इतने पैदा हो जाते कि घर में नहीं समाते और नहीं, तो एक भी नहीं। होती तो अतिवृष्टि, नहीं तो एकदम अकाल। दोनों ही स्थितियों में उन्हें "परेशानी" ही होती है।

मुझे याद नहीं आ रहा है, कभी मैंने दादाजी को पुलिस की वर्दी में देखा हो, हां, पेंशन की तारीख पर वे चमकदार पीतल के बटन लगी हुई खाकी कमीज पहने बस से कोविलपट्टी जाते। बाकी दिनों में केवल लुंगी में रहते।

गांव के पार्वती मंदिर की पत्थरवाली सीढ़ियों पर उन्होंने "पतिनंचाम् पिल्लै" खेलने के लिए स्थाई रूप से लकीरें खुदवाई हैं। शिल्पी को बुलाकर छेनी से खुदवाई ये लकीरें मंदिर की सीढ़ियों पर अब भी देखी जा सकती हैं। इस खेल में पुलिस दादाजी "चैंपियन" हैं। स्वयं ब्रह्माजी धरती पर उतर आएं और दादा से खेलें तब भी दादाजी ही जीतेंगे। खेल से जब भी फुरसत मिलती, दादाजी पुलिस महकमे में अपनी बहादुरी और पराक्रम की गाथाएं सुनाने लग जाते—अपनी होशियारी और सूझबूझ की कहानियां। ऐसी वीरताओं का वर्णन वे पूरी तन्मयता के साथ करते मानो वह घटना आंखों के सामने घट रही हो। इनमें से एक दिलचस्प वाकया याद आ रहा है।

दादाजी के एक साथी थे। उनका कोई नंबर भी बता रहे थे। जेल में जिस तरह कैदियों को पुकारने के नंबर होते हैं उसी तरह पुलिस महकमे के जवानों के लिए भी नंबर ही उनका "नाम" होता है। मां-बाप द्वारा बड़े लाड़-प्यार या श्रद्धा-भक्ति के साथ रखे गए "रामस्वामी, लक्ष्मणस्वामी" जैसे सुंदर नामों की वहां कोई पूछ नहीं। जेल में एक बार किसी कैदी और इस "नंबर" के बीच में वाकफियत हो गई। वह कैदी एक नंबर का चोर था। उसे बीड़ी पीने की लत थी। जेल में गार्ड ड्यूटी पर बैठे "नंबर" को बीड़ी पीते देखकर चोर को भी बीड़ी की तलब हुई--बुरी तरह।

मगर पुलिस वाले से बीड़ी मांगते डर लग रहा था। सो धीरे से उसने कोई बात छेड़ दी। "नंबर" को भी वक्त काटना था। वे भी शरीक हो गए बातचीत में। इस गुफ्तगू के दौरान उन्होंने उससे कई "पते की बातें" जान लीं। उनमें एक खास खबर यह थी : फलां जगह में उस चोर ने कई सारे गहने जमीन के अंदर गाड़ रखे हैं। उस पुलिस वाले क़े यहां नौ संतानें थीं भगवान की दया से—सब की सब बेटियां। ऐसे में अगर गहने हासिल हो जाएं तो बहुत आसानी हो जाएगी न?

बातचीत के दौरान एक दिलचस्प मोड़ पर वह दम लेने के लिए रुक गया। फिर "नंबर" से पूछा – "बीड़ी मिलेगी हेड साहब ?" (जब आपको काम निकालना हो तो कंपाउंडर

को "डाक्टर साहब" और नर्स को "डाक्टर साहिबा" बुलाना ही पड़ेगा।) "हेड साहब" के संबोधन से वे सातवें आसमान पर चढ़ गए और उन्होंने जेब से दो बीड़ियां निकाल कर दे दीं।

यों उनकी वाकफियत दोस्ती में बदली और यह घनिष्ठता बढ़ती ही गई। "चोर के बच्चे" को बेरोकटोक बीड़ियां नसीब होती गईं। यही नहीं, नाश्ते-नमकीन वगैरह किसी चीज की कोई कमी नहीं रही।

मगर लाख कोशिश करने पर भी वे उससे एक बात नहीं उगलवा पाए। वही, उस मौके का हुलिया जहां गहने गाड़ रखे थे। वह यही कहता, "आप बेफिक्र रहिए हेड साहब! जब भी मैं बाहर निकलूंगा, आपको खुद उस जगह पर ले जाऊंगा, सारे गहने खोद निकालेंगे और आधा आधा बांट लेंगे।"

इसी तरह वह बात को टालता जा रहा था। एक बार बहुत जोर देने पर इतना भर बताया, "गुरुमलै जंगल के अंदर अय्यन मंदिर के पीछे की तरफ गाड़े हैं।" उसके बाद जब भी काम से फुरसत मिलती – कभी कभी छुट्टी लेकर भी "नंबर" चले जाते थे अय्यन मंदिर की ओर, उन्होंने वहां जगह जगह गड्ढे खोदे।

"क्यों हेड साहब ! आजकल दर्शन ही दुर्लभ हो रहे हैं। कहीं बाहर गए थे?", चोर का बच्चा उन्हें छेड़ता। थके हारे स्वर में वे जवाब देते, "हां भई, रिश्तेदारों के गांव जाना पड़ा गमी पर।"

चाहे जितनी बार पूछिए, पुलिस दादा उसी दिलचस्पी से यह कहानी सुनाते। कहानी के अंत में जिस तरह "हेड साहब" ठगे गए उसका जिक्र करते हुए जोर जोर से हंस पड़ते, हम भी उनके साथ हंसते।

दादाजी इसी जोश-खरोश के साथ अपने जीवन की घटनाएं भी सुनाते।

बोले कि जब ये किशोर थे, एक गधी ने बच्चा जना था। वह अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। इनका तो यह हाल था कि इस नजारे को टकटकी लगाकर देख रहे थे। गधी का बच्चा एकदम प्यारा प्यारा लग रहा था। इतना प्यारा, इतना हसीन कि गोद में उठाकर प्यार-पुचकार करने को जी कर रहा था।

इनकी यह आवारागर्दी इनके रिश्तेदारों से, जो इन्हें लड़की देना चाहते थे, बर्दाश्त नहीं होती थी। जब भी ये उनके सामने होते थे लोग इनका मजाक उड़ाते थे। ऐसे में ये गधी के बच्चे पर लट्टू बने हुए उनकी नजर में पड़ गए। तब वहां से गुजरते हुए एक संबंधी ने पूछा – "जमाई साहब, वाह, गधी का बच्चा कितना सुंदर है!" ये भी समझ गए कि मामाजी की नीयत हमें छेड़ने की है और छीछालेदर करने की है। इसलिए ये खामोश रहे।

"जमाई साहब, आप इस गधी के बच्चे को कंधे पर उठाकर गांव का एक चक्कर लगा आइए तो। पूरे पांच रुपए का इनाम दूंगा, हां।" मामाजी ने चुनौती दी।

इस पर भी ये चुप रहे। लेकिन मामाजी तो बार बार अपनी उसी बात की रट लगा रहे थे। इसी बीच काफी भीड़ जमा हो गई। तब भीड़ की ओर मुखातिब होकर मामाजी बोलने लगे, "पता है, हमारे जमाई साहब क्या कह रहे हैं? ये बोल रहे हैं, मामाजी, मैं इस गधी के बच्चे को कंधे पर उठाकर गांव का एक चक्कर लगा सकता हूं। कहिए आप मुझे क्या देंगे?"

सब लोग हंसने लगे। भीड़ में से किसी ने पूछा, "आखिर जमाई साहब इसके लिए क्या मांग रहे हैं?"

"ये मांगेंगे हजार रुपए, इतना हम कहां से दे सकते हैं? मुझसे जितना होगा, जरूर दूंगा। पांच रुपए दे सकता हूं।" रिश्तेदार ने कहा। इस सज्जन के बारे में पुलिस दादा को खूब पता था। जानते थे कि वे कंजूस मक्खीचूस हैं, "चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए" के उसूल वाले हैं। इसलिए सोच लिया कि उनसे आज पांच रुपए जरूर धरवा लूंगा।

बोले, "इस खेल में एक खतरा है।" वह यह था कि जच्चा गधी जो है, बच्चे पर किसी के द्वारा हाथ उठाना हरगिज बर्दाश्त नहीं करेगी। कह नहीं सकते, वह काट खाएगी या लात मारेगी। वे जानते थे कि यह तमाशा देखने के लिए ही वे मुझे छेड़ रहे हैं। फिर भी मन में पक्का ठान लिया कि जो भी हो, इसे करके दिखाना ही होगा। एक तरह से इनके लिए यह इज्जत का सवाल हो गया।

"ससुरजी, यह तो बताइए पैसा अंटी में रख के चुनौती दे रहे हैं या यों ही हवा में उड़ान भर रहे हैं?" दादा ने पूछा।

भीड़ के लोगों ने तुरंत उन्हें पकड़ लिया। वे जोर देने लगे, "निकालो पैसा। हमारे सामने धरो।" ससुरजी कितने बड़े "दानवीर कर्ण" हैं, यह बात गांव वालों से भी छिपी नहीं थी।

नौबत यह आई कि ससुरजी को लाचार होकर पांच रुपया निकालना पड़ा और किसी पंच को सौंपना पड़ा।

जब सभी का ध्यान बंटा हुआ था—जब गधी ने भी कल्पना नहीं की होगी कि ऐसा भी हो सकता है—ये बिजली की तरह लपके और आनन-फानन में गधी के बच्चे को कंधे पर डालकर भाग खड़े हुए।

एकाएक मच गया हो हल्ला ! बच्चा खोने से गधी गुस्से में लाल-पीली होकर पीछे पीछे भागी। दर्शकों का जोश भरा उल्लास और अट्टहास ! बच्चों का हर्षारव और सीटियां!

बच्चे को एकाएक लाकर ससुर के पैरों तले डालकर इन्होंने ऐसा चकमा दिया कि गधी धोखे में यह समझ बैठी कि ससुर ने ही मेरा बच्चा उठाया। उसने ससुरजी की जांघ को जोर से काट खाया। दर्द के मारे ससुर चीखे-चिल्लाए...।

दादा बालकों की तरह हंसने लगे। हम लोग भी खूब हंसे।

"फिर? फिर क्या हुआ?" मैंने पूछा। "फिर क्या होना था? मुझे मिल गए इनाम के पांच रुपए और ससुर को मिला गधी के काटे का दर्द। उस दिन से उन्होंने मेरा मजाक उड़ाना छोड़ दिया।"

दादाजी इस तरह की कलात्मक गाथाओं का बयान तभी करते थे, जब वे घर के बाहर हों। घर के अंदर दाखिल होते ही, सो भी दादी से आमना-सामना होने पर, अबोध बालक बन जाते थे। हमें यहीं कहना पड़ता है कि दादी को दादा से जरा भी प्यार नहीं था। रत्ती भर भी प्यार होता तो नहाते वक्त, उनकी पीठ रगड़ती। मगर दादा इन चीजों की बिल्कुल परवाह नहीं करते थे। इसके लिए भी उन्होंने एक युक्ति ढूंढ़ निकाली।

राज-मिस्त्री को बुला लाए। सीमेंट और रेत का मसाला बनवाया। उसे आंगन से लगी दीवार पर दो फुट की चौड़ाई और ढाई फुट की लंबाई में पुतवाया। ऐसा चिनवाया कि उसकी सतह चिकनी न होकर खुरदरी हो। दादी की तरह हम भी हैरानी में खड़े थे कि यह सब क्या हो रहा है। हम बच्चों ने दादाजी से इसके बारे में पूछा भी। उन्होंने इस तरह आंख मारी मानो कह रहे हों, "देखते रहो बच्चो !" हम भी चुप हो गए। तीसरे दिन हम देखते क्या हैं...

दादाजी जब नहा रहे थे, दीवार पर बनी नई पट्टी के साथ अपनी पीठ लगा ली। उसे ऊपर-नीचे रगड़ने लगे ... फिर दाएं-बाएं, आड़े-तिरछे। लगता था, ऐसा करते हुए उन्हें मजा आ रहा था। खुरदरी पट्टी के साथ पीठ रगड़ते हुए वे जिस तरह से मुंह बनाते और उनकी आंखों की पुतलियां ऊपर को चली जातीं। इससे हम समझ गए कि दादा को बहुत अच्छा लग रहा था। दूर से देखने वाला शायद यही समझ लेता कि यह भी नृत्य की कोई नई विधा होगी। दादाजी मुंह बनाते हुए और कोहनियां मोड़ते हुए यों नाचते कि देखते ही बनता था।

केवल इस प्रदर्शनी को देखने के लिए हम लोग दादा के यहां रोज जाने लगे। वे भी हमारे लिए और थोड़ी देर तक यह "पीठ रगड़-नृत्य" दिखाते। बीच बीच में दादी की ओर देखते हुए मगर उनकी आंख बचाकर–दादाजी आंख मटकाते। अब तो न दादा रहे, न दादी। उस घर को किसी और सज्जन ने खरीद लिया। वे लोग उसमें रह रहे हैं। जब भी मैं उधर से गुजरता हूं जरूर गौर से देखता हूं। दीवार पर जहां दादाजी पीठ रगड़ते थे, वह खुरदरी पट्टी आज भी ज्यों की त्यों बनी है-उनकी यादगार में।

अलगू जिसने तमिल सीखी ...

कुट्रालम में एक दिन रसिकमणि टी.के.सी.* से मिलने के लिए कोई सज्जन पधारे।

वे सज्जन परिमार्जित तमिल भाषा में हमसे बोले "...श्रीमान से साक्षात्कार के लिए समागत हैं।"

हम पहचान गए कि उनकी बोलचाल की शैली ही कुछ ऐसी है। हम मन ही मन खुश हो रहे थे कि रसिकमणि भी इस वार्तालाप का खूब आस्वादन करेंगे।

उन्हें बड़े आदर के साथ ले जाकर हम लोगों ने रसिकमणि के सामने छोड़ दिया। अपना परिचय देते हुए औपचारिक वार्तालाप में ही साहित्य की शब्दशक्ति और अलंकार की छटा बिखेर दी उन पंडितराज ने।

वाह ... वाह ! की व्यंजना से सिर हिलाते हुए और मूंछों में ही मुस्कराते हुए रसिकमणि जिस भंगिमा से पंडितराज की आडंबरपूर्ण भाषा-शैली का आस्वादन कर रहे थे, वह हमारे लिए आनंद की चीज थी। जब सज्जन ने अपनी वार्ता समाप्त की, रसिकमणि ने सहज ढंग से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, "तो आप घर में पत्नी के साथ भी इसी शैली में बात करते होंगे !" रसिकमणि तो हंसे बिना यह बात बोल गए, लेकिन हम लोगों का बुरा हाल हो रहा था, हंसी रोकना दुश्वार हो रहा था।

अपने गांव–इडैचेवल लौटने के बाद भी वह दृश्य और रसिकमणि का वह रस में सना प्रश्न मन में ही गूंज रहा था। तमिल के प्रसिद्ध लेखक कु. अलगिरि सामी के ससुर श्री चन्द्रगिरि को मैंने कुट्रालम की घटना ज्यों की त्यों सुनाई। इस पर उन्होंने मुझे एक लोक-कथा सुनाई। वह यों है:

काफी समय पहले की बात है। किसी गांव से अलगू नामक पुत्र को उसके माता-पिता ने तमिल सीखने के लिए किसी विख्यात तमिल पंडितजी के यहां बाहर भेजा था। एक लंबे अरसे तक तमिल का अध्ययन करने के बाद अलगू घर लौटा। घर आते ही प्रसन्नता में भरकर वह अपने माता-पिता को यों पुकारने लगा, "अन्नाय् तातायृ"। (परिनिष्ठित हिन्दी में जननी, तात।) सुनकर मां-बाप के चेहरे का रंग उड़ गया।

---

*श्री टी.के. चिदम्बरनाथ मुदलियार, कम्बरामायणम् के परम-रसिक। साहित्यिक जगत में "रसिकमणि" के नाम से विख्यात। तिरुनेलवेली जिले में कुट्रालम जल प्रपात के समीप बने इनके घर में जो भी सहृदय जाते आतिथ्य-सत्कार के साथ साहित्य चर्चा का आस्वादन भी करते।

वे सिर धुनने लगे। पूछा, "बेटा अलगू, तू क्या बोल रहा है?" उसने फिर उसी तर्ज पर उन्हें पुकारा "अन्नाय्, ताताय् !" और आगे अप्रचलित तमिल में बात सुनाई, "अयर्चि मिक्कदु; अडिसिल् पुक्कि चिरिदे अयनम् कोणर्ग।" (तमिल की यह शैली सहज ही बोधगम्य नहीं है, इसे हम कुछ इस तरह हिंदी में प्रस्तुत कर सकते हैं। —"मैं परिश्रांत हूं, बुभुक्षा शमन हेतु पक्वान्न का आयोजन किया जाए)"

पिता को काटो तो खून नहीं "अरे अलगू के बच्चे! तुझे तो हमने तमिल सीखने को भेजा था। तेरी बात समझ में नहीं आ रही है। लगता है जरूर तू दूसरी कोई भाषा बोल रहा है। तुझे यह क्या हो गया ?"

बात यह है कि कभी उस गांव के समीप डाकुओं ने किसी लाड-संन्यासी को लूटकर उसे मार डाला था। बहुत दूर कहीं उत्तर से आया वह संन्यासी भूत बन गया। उसकी आत्मा कभी किसी पर आवेशित हो जाती। जिस पर लाड-संन्यासी का भूत हावी हो जाता, उसकी बोली किसी की समझ में नहीं आती। मां-बाप को दुख हो रहा था कि उसी लाड-संन्यासी का भूत अपने लाड़ले के सिर पर सवार है, इसलिए उसकी बोली समझ में नहीं आ रही है।

प्रचलित मान्यता के अनुसार आक के तने से आठ दस बार झाड़ने पर आवेशित भूत "चला जाऊंगा, चला जाऊंगा" यों चिल्लाते हुए उतर जाएगा। इसलिए आक का झाड़ लाने को कहा गया।

सारा गांव जमा हो गया। सब दुखी थे। कहने लगे, "बड़ी बड़ी उम्मीदें लेकर पढ़ने गया था। ऐसे होनहार बालक पर हाय, भूत का आवेश हो गया।"

मां को इस बात का अफसोस था कि बच्चा बहुत दूर से पैदल आया है। "हाय, मैं अपने लाड़ले बेटे की भूख तक नहीं मिटा पाई। सुबह से दोपहर तक वह घर का दरवाजा खटखटाता गया और पुकारता रहा—"अन्नाय्, ताताय्।" पुकारते पुकारते थक गया, हार गया।

दिन ढलने लगा। भूख से प्राण निकले जा रहे थे। वह अपने अनजाने में यों चिल्लाया घर की तमिल बोली में : "आत्तोव्, वगुरु पशिक्कि, कंजि ऊत्तु" (अरी मां, बड़ी भूख लग रही है, खाना दो।) बार बार यही बोलने लगा जोर से।

यह वाणी सुनकर माता-पिता को ऐसा लगा, कान में कोई शहद घोल रहा हो। बेटे को आक के तने से झाड़ लगाने की जरूरत नहीं हुई। वे खुशी से फूले नहीं समाए। पुलक में भरकर कहने लगे, "पुरखों का पुण्य प्रताप है, हमारे लाड़ले को फिर अपनी बोली आ गई।" उनके मन को सांत्वना मिली।

भैंस, जिसने यमराज से बचाया

क्रोध अनगिनत प्रकार के होते हैं। इसका एक स्वरूप है रूठ कर गृहत्याग करना। निकम्मेपन से भरे इस बेहूदे गुस्से से किसी को कोई फायदा नहीं पहुंचता। कम-से-कम उस व्यक्ति का तो कोई प्रयोजन इससे सिद्ध नहीं होता जो गुस्से से लाल-पीला होकर घर से भाग खड़ा होता है। यों लड़-झगड़ कर घर छोड़ने वालों में वयस्क पुरुष भी होते हैं। ऐसे "भगोड़े पतियों" को समझा बुझाकर घर वापस लिवा लाने की परंपरा अब भी चली आ रही है।

रूठकर घर छोड़ने वाले ऐसे लोग फौरन कहां मान जाते हैं? जितना ही हम इन्हें मनाते हैं, उतना ही ये तनते जाते हैं। इनके नाज-नखरे देखते ही बनते हैं। (कहेंगे, चाहे जान चली जाए, अब उस घर में कदम नहीं रखूंगा, फिर कहेंगे, चलो कोई बात नहीं, आप इतने बड़े आदमी हैं, खुद बुलाने आए हैं, आपसे "ना" कहते नहीं बनता; आपकी खातिर लौटना पड़ रहा है) यों बातें बनाते हुए आखिरकार ये लोग राजी हो जाते हैं।

हमारे पड़ोस में एक परिवार है—पति-पत्नी दो प्राणियों का छोटा-सा परिवार। यकीन मानिए, इस घर में आए दिन महाभारत मचा रहता है। सूर्य-देवता भले ही निकलना भूल जाएं, किंतु यह दंपत्ति बात-बे-बात पर लड़ने से नहीं चूकते।

अड़ोस-पड़ोस के लोग दीवारों पर कान गड़ाए सुनते रहते हैं। (झगड़ा घर के अंदर होने की वजह से वे लोग देख नहीं सकते थे। अगर यही झगड़ा बीच सड़क पर होता तो देखने में कितना मजा आता !) हर दिन लड़ाई की चरमसीमा में पतिदेव घर से निकल खड़ा होता। घर से बाहर आते आते वह चिल्लाता, "छिः, यह भी कोई औरत है ! भला कौन मर्द ऐसी औरत के संग जिएगा? इसके साथ रहने से बेहतर यही है कि कहीं नदी-तालाब में डूबकर मरा जाए।" यों बड़बड़ाते हुए वह तेजी से कदम बढ़ाता।

सारी पड़ोसिनें—जो इस खटर-पटर को गौर से सुनती रहतीं—तत्काल अपने अपने पति से मनुहार करने लगतीं, "क्यों जी, इस तरह हाथ धरे क्यों बैठे रहते हो? सुना नहीं, वे कह क्या रहे थे? बेचारे कहीं गिरकर अपनी जान न गंवा दें ! चलो न, चलकर उन्हें समझाओ-बुझाओ, किसी तरह घर बुला लाओ।" पत्नियों का अनुरोध मानकर अड़ोसी-पड़ोसी उसके पीछे पीछे चलते और समझा-बुझाकर उसका क्रोध शांत करने के प्रयास में लग जाते। ज्यों ज्यों ये लोग मनाते, वह नए नए नखरे दिखाता दलील पर दलील दी जाती, पर वह टस से मस न होता, अपनी ही जिद पर अड़ा रहता। आखिर हारकर

ये लोग उसका हाथ पकड़कर खींचते। तब वह जो अपने दोनों हाथ इन लोगों को सौंपकर पीछे की ओर तनता-ऐंठता "ना भाई, नहीं, आऊंगा, नहीं आऊंगा" की रट लगाता घर की ओर बढ़ा चला आता, वह "भंगिमा" सचमुच देखने लायक होती है।

आखिर कितने दिन तक पड़ोसी लोग उसे मनाते फिरते?

आए दिन के इस गोरखधंधे से वे लोग ऊब गए। जब पड़ोसियों ने सहारा देना छोड़ दिया, भला मोहल्ले के लोग इसे देखकर कैसे चुप रहते? अब वे लोग नियमित रूप से उसे समझा-बुझाकर खींचते हुए घर लौटा लाते थे। आखिर कब तक? उनके भी तो अपने काम धंधे होते हैं। रोज रोज के इस खटराग से वे भी ऊब गए। गांव के सभी लोगों ने यही तय किया, "छिः, घर छोड़ना तो इसका रोज का काम हो गया। कोई हर्ज नहीं, कहीं भी जाकर मर जाए गधाराम !" सबने एकमत से निर्णय लेकर उसे सहारा देना छोड़ दिया। रोज की तरह उस दिन भी सुबह-सबेरे महाभारत शुरू हुआ। पहले पति-पत्नी में कहा-सुनी हुई, धीरे धीरे बहस में गर्मी आई और फिर झापड़ मारने की आवाज भी सुनाई दी। उसके बाद पतिदेव का पारा यों चढ़ा कि वह घर से बाहर निकल गया, बड़बड़ाता और चीखता-चिल्लाता हुआ। वह इस तरह कह रहा था :

"छिः, कोई आदमी भला इसके साथ रह सकता है? इस घर में रहने से बेहतर है कहीं नदी-तालाब में डूबकर मरा जाए।" लेकिन यह क्या? कोई उसके पीछे नहीं आ रहा, उसे रोकने के लिए एक भी माई का लाल आगे नहीं बढ़ रहा ! आज इन सबको हो क्या गया है? वह सकते में आ गया। क्या करे, क्या न करे, समझ में नहीं आ रहा था।

उसी समय, भगवान भला करे उस भैंस का—हां उसी के घर की भैंस थी वह—कहीं चरने के बाद घर लौट रही थी। उसने लपक कर भैंस की पूंछ कसकर पकड़ ली। भैंस घर की ओर उसे "खींचती खींचती" आने लगी। पीछे की ओर तनते-ऐंठते हुए वह रट लगाता आ रहा था—"मैं नहीं आऊंगा घर, हरगिज नहीं आऊंगा, चाहे मेरा खून कर दो तब भी नहीं आऊंगा।" यों कहते कहते घर के अंदर आ ही गया बच्चूराम।

फैसला ऐसा तिल की फांक-सा

आम जनता की जबान से आपने यह मुहावरा सुना होगा, "फैसला यों दे दिया जैसे तिल के दो फांक कर दिए।" भला, तिल की दो फांक कहीं बराबर बराबर हो सकती हैं? कहने का मतलब यही है, किसी भी झगड़े को तिल की दो फांक की भांति सही सही निपटाया नहीं जा सकता।

किसी भी फैसले से या तो वादी को हर्जा होता है या प्रतिवादी को। आज तक किसी ने ऐसा फैसला नहीं दिया है जिस पर वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों की रजामंदी हो। यूं रजामंदी हो सकती है तो उनके बीच में भला झगड़ा ही क्यों होने लगा?

गांव में जो पंचायतें होती हैं और इनमें पंचों द्वारा जो फैसले दिए जाते हैं वे भी कई बार मजेदार होते हैं।

बाज बाज "बुजुर्ग" अपने बारे में यही ख्याल पालते हैं मानों पंचायत करने के लिए ही उनका "अवतार" हुआ हो। ये लोग गांव के मानद-दंडाधिकारी होते हैं—ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के समान। ये लोग किसी के द्वारा नियुक्त नहीं हैं, इन्होंने अपने आपको इस काम पर नियुक्त कर लिया है। ये "स्वयंभू न्यायाधीश" हैं।

आइए, अब एक दृश्य देखें।

सावन्ना और सिम्मन्ना में किसी बात पर विवाद शुरू हुआ। उनके मुंह से बातें उलटी-सीधी निकलने लगीं। जब वातचीत का ढर्रा अपनी लीक छोड़ देता है तो वाणी की मर्यादा कहां बरकरार रह पाती है!

गांव में सहज ढंग से वार्तालाप में भी गाली-गलौज के बगैर इन दोनों से बात करते नहीं बनता। चाहे स्नेह की नदी उमड़ पड़े, चाहे गुस्से का पारा चढ़ जाए, दोनों ही स्थितियों में इनके मुंह से गाली-गलौज ही निकलता। गाली-गलौज भी खूब हैं ! "चार कोस पर बदले पानी" की तरह हर इलाके में खास किस्म का गाली-गलौज चलता है। इस गाली-विशेष को बीच बीच में जड़कर ही लोग अपनी बात जारी कर सकते हैं। और फिर, कोई भी सुनने वाला इसे गाली के रूप में नहीं लेता। अगर मामूली वार्तालाप का यही ढर्रा है तो जब खुशी का आलम छा जाए तो कहना ही क्या है ! और गुस्से में आग-वबूला हो जाए तो जनाब, कुछ पूछिए नहीं।

सावन्ना और सिम्मन्ना में कहा-सुनी होने लगी, आगे बहस में गर्मी आई और अंत

में हाथापाई की नौबत आ गई। दोनों गाली-गलौज तक ही सीमित रहते तो समान रूप से केवल गाली-गलौज की अनर्गल धारा बहती रहती।

पर जब मारधाड़ शुरू हो जाती तो जरूर दोनों में से किसी एक का हाथ ही तो ऊंचा रह सकता है। सावन्ना अव्वल दर्जे का जिद्दी और बदमाश था। उसी का हाथ भारी पड़ा। मार मार कर कचूमर कर दिया उसने सिम्मन्ना का। अब सिम्मन्ना करे तो क्या करे?

उसके सामने दो ही रास्ते थे :

1. मौका देखकर बदला लिया जाए, नहले पर दहला हो जाए।

2. सरपंच के पास पहुंचा जाए, पंचायत बुलवा कर दंड दिलाया जाए।

सावन्ना हठी और बदमाश जरूर था, साथ ही जरा अक्लमंद भी था। पहले ही पहुंच गया वह सरपंच के घर। उन्होंने पूछा, "क्यों? सावन्ना, मुंह अंधेरे यहां कैसे?" उनके बैठने और बात करने के ढंग से यही लग रहा था कि महाशय उस समय "मूड" में थे।

दोनों बाजुओं को बड़े अदब से छाती पर बांधकर सावन्ना ने विनयपूर्वक निवेदन किया, "चाचाजी, मैंने सिम्मन्ना की पिटाई कर दी।" इस बात को व्यक्त करने का उसका ढंग ऐसा था मानो यही कह रहा हो, "जो भी हुआ, गलत हुआ। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। पर क्या करें? कोई चारा भी तो नहीं था।"

बुजुर्ग पहले चौंक गए। फिर अपनी आवाज में हंसी-मजाक घोलते हुए पूछने लगे, "अरे बेअकल! अहमक! काहे को ऐसी हरकत कर दी?"

उसी तरह विनम्रता की मूर्ति बना सावन्ना बोला, "चाचाजी, आप मेरी यह बात जरूर मानेंगे कि बोलने की भी हद होती है; अदब-कायदा होता है। बीच सड़क पर खड़े होकर उसने मुझे ऐसी चुनिंदा गालियां सुनाईं जिन्हें सुनकर कोई भी इज्जतदार आदमी चुप नहीं रह सकता। सो, मुझ से भी रहा नहीं गया। ... और मैंने दो तमाचे जड़ दिए।"

"क्यों बे पागल गधे ! माना कि उसने उलटी-सीधी बेसिर-पैर की बातें झाड़ दीं। अरे, हम किस मर्ज की दवा हैं? किसने रोका तुझे हमारे पास आने से? हम उसके मुखड़े पर मुक्के नहीं मारते? बड़ा आया मारने वाला ! ... खैर, यह बताओ चोट-वोट तो ज्यादा नहीं लगी? खून कितना निकला ... ?"

"वह सब कुछ नहीं हुआ चाचाजी ! बात सिर्फ इतनी-सी है कि उसमें भी बोलने की तमीज नहीं थी और उस वक्त मुझ पर भी क्रोध का भूत-सा सवार हो गया था। अपने को रोक नहीं पाया। बिना सोचे-समझे ठोक दिए दो-चार। सच्ची सच्ची बता दूं, इसीलिए आ गया आपके दरबार में ...।"

"ठीक है, ठीक है, कोई बात नहीं। आइंदा ऐसी हरकतें नहीं करना, समझे? जानते हो, तुम्हारे दादाजी...क्या नाम था उनका? हां, स्वामी नायकर, वे कितने शरीफ थे! उन्हें गुस्सा करते हुए गांव में किसी ने नहीं देखा है। उनके कुल में पैदा होकर तुम्हें शर्म नहीं

आती यों टंटा करते हुए? ठीक है, चला जा यहां से ! आइंदा किसी पर हाथ उठाया तो।" सरपंच ने यों चेतावनी देकर उसे जाने दिया।

सावन्ना अभी गली के मोड़ तक पहुंचा नहीं होगा कि इधर से सिम्मन्ना हांजिर हो गया सरपंच के सामने।

"आओ भई, अरे क्यों गुमसुम खड़े हो, चेहरा भी उतरा हुआ है। क्या हुआ?" सरपंच ने इस तरह पूछा मानों उन्हें इस हादसे की कोई जानकारी न हो। बेचारे सिम्मन्ना ने अथ से इति तक सारी बातें सुनाईं। पिटाई से लंबे गहरे निशान पड़ गए थे पीठ पर। बदन पर से अंगोछा हटाकर उसने पीठ के निशान दिखाए। बच्चू ने खूब मरम्मत कर दी थी। सरपंच को सचमुच गुस्सा आ रहा था सावन्ना पर।

"अबे, तुम लोगों ने क्या समझ रखा है अपने आपको? कोई अदब नहीं तमीज नहीं... बीच सड़क पर खड़े होकर यूं टंटा खड़ा करते हुए शर्म नहीं आती तुम लोगों को?"

"मेरा कोई भी कसूर नहीं है, ताऊजी ! आप किसी से भी पूछ कर देखिएगा। पहले गाली उसने दी। मैंने बदले में गाली दी। इस पर उसने मेरा यह हाल कर दिया।"

यह सुनकर सरपंच गुस्से में दहाड़ने लगे। "हुम् ... पहले उसने गाली दी न? उसी वक्त मेरे पास आ जाता तू। ...एं? मुझे बताया होता तो जूते-चप्पल से मार मार कर कचूमर न निकालता उसका? खैर, तुमने बदले में उसे गाली दी। क्या कहकर गाली दी उसे?" बुजुर्ग ने सिम्मन्ना से पूछा।

उन बातों को—गंदी गालियों को—बड़ों के सामने कैसे अर्ज किया जाए? और फिर गुस्से में बकी हुई गालियां याद थोड़े ही रहती हैं ! सिम्मन्ना सिर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा।

"देख, गलती तेरी ही है। कोई किसी को बिला वजह थोड़े ही पीटता है? बोल रे, क्या वह पागल था?"

सिम्मन्ना को काटो तो खून नहीं। उसकी बोलती बंद हो गई।

इंसाफ नहीं मिला, ऊपर से कसूरवार भी ठहराया गया। एक तो जमकर पिटाई हुई थी, अब यह जिल्लत भी झेलनी पड़ी। बेचारे की आंखों में आंसू भर आए। आंसुओं को पोंछता हुआ वह चुपचाप खड़ा था।

आंसू देखकर सरपंच को उस पर तरस आ गया। "अरे सिम्मन्ना बेटे, आओ इधर मेरे पास।" आवाज में मिठास भरते हुए उसे बुलाया। पर सिम्मन्ना अपनी जगह से नहीं हिला, मानों अंदर से कोई उसे जाने से रोक रहा हो।

बुजुर्ग उसे समझाने लगे, उनकी आवाज में स्नेह उमड़ रहा था—"अरे, जरा सोचो, अगर हम लोग यूं आपस में मार-पीट करते रहेंगे तो हमें देखकर चार जने क्या सोचेंगे? खैर, आने दो उस बदतमीज को। घूंसे मार दूंगा उसके मुखड़े पर। फिक्र मत करो बेटे!"

फिर घर के अंदर झांकते हुए अवाज दी, "अरे ओ, क्या नाम है यशोदे, अपने बड़े भाई को मट्ठा तो पिलाओ।"

"नहीं ताऊजी ! रहने दीजिए। मैं अभी खाना खाकर ही आ रहा हूं। अच्छा, फिर आऊंगा राम राम !" कहते हुए सिम्मन्ना चला गया।

बड़े से बड़ा अपराध करने पर भी तुरंत बड़ों के पास आकर कोई अपना कसूर मान ले तो उसे न केवल बख्शा जाता है, फैसला भी अक्सर उसी के हक में दिया जाता है। इसका चलन आज तक है।

मामले को निष्पक्ष रूप से सुनकर सही फैसला देना खरगोश का सींग बन गया है। कहीं इक्का दुक्का ऐसी मिसाल मिले तो बहुत है। इसीलिए तो हम आज भी न्यायप्रिय "मर्यादाराम"* को याद करते हैं और उनके फैसलों की तारीफ करते हैं।

---

* तमिलनाडु के प्रसिद्ध न्यायाधीश जिनका न्याय विक्रमादित्य के न्याय के समान निष्पक्ष होता था।

रूढ़ियां, विश्वास और निदान

अपने घर के आंगन में मीठा नीम का एक पौधा रोपने के लिए हमने जी तोड़ कर प्रयत्न किया, पर सब कुछ बेकार। जब भी कुट्रालम* से लौटते, रास्ते में मत्तलमपारै से मीठा नीम का पौधा लाते। घर आकर उसे बड़े जतन से आंगन में लगाते, पर थोड़े ही दिन में वह मर जाता। यह सिलसिला बार बार चला। किसी ने बताया, "माहवारी" वाली कोई औरत पौधे के पास गई होगी, ऐसी हालत में अक्सर मीठा नीम मर जाता है। घर-परिवार हो तो चार जने आएंगे ही। मीठे नीम के पास जाने वाली हर औरत को न तो मना किया जा सकता है न ही जांच-पड़ताल की जा सकती है। यह तो हरगिज मुमकिन नहीं है।

इन्हीं दिनों हमारे यहां एक मेहमान आईं—कोई नानी मां। जब वे आई थीं, आंगन में मीठा नीम का एक पौधा अधमरा-सा खड़ा था। नानी मां ने जब उसे देखा तो वे बड़े अफसोस के साथ बोलीं—"अरे रे, लगता है यह पौधा मर ही जाएगा ...।" फिर कहने लगीं, "बचेगा नहीं।" उसके बाद नानी मां ने एक नुस्खा बताया, "अब की बार पौधा लाओ तो महावारी वाली किसी औरत के हाथों लगवाना। वह 'दोष' इससे खत्म हो जाएगा।" वो हिदायत देकर नानी मां चली गईं। इसे सुनकर हमें बड़ा विचित्र-सा लगा।

नुस्खा बड़ा आसान तो था, अमल में लाने में कौन-सी बड़ी मुश्किल थी? अगली बार जो पौधा लाया गया मत्तलमपारै से, उसे नानी मां के बताए "निदान" के अनुसार लगवाया गया। आश्चर्य की बात ! छोटा-सा पौधा पनपने लगा और बड़ा-सा झाड़ बनकर आंगन की शोभा बढ़ाते हुए खड़ा है। इस तरह की बातों को मैं अब भी अंधविश्वास ही मानता हूं। पर यह अचंभा कैसे हो गया? कोई कृषि-वैज्ञानिक ही हमारी इन शंकाओं का समाधान कर सकता है। किंतु किसी चीज का पूर्ण रूप से पता लगाना उनके भी बस की बात नहीं है। कृषि वैज्ञानिक कहते हैं—"प्रकृति का अजूबा धारावाहिक उपन्यास की तरह लंबा होता है। हम लोग आज कोई नया आविष्कार करते हैं और कल हम ही लोग उसे काट देते हैं।"

"फूलों के पौधे और मीठे नीम का पौधा ही नहीं, नन्हें-नन्हें बच्चे भी, जिन्हें हम "कच्ची मिट्टी" कहते हैं, "तपिश की हवा" बरदाश्त नहीं कर पाते। इस तरह की हवा लगने से

---

* तमिलनाडु में तिरुनेलवेली जिले का प्रसिद्ध जल-प्रपात

वे बीमार हो जाते हैं, मुरझा जाते हैं। ग्रामीण बोली में लोग कहते हैं, बच्चे को "सीर"* लग गया है। शादी-ब्याह या ऐसे ही भीड़-भाड़ और शोरगुल से भरे माहौल में लोगों की उसांसों से कमरे में घुटन-सी पैदा होती है। ऐसी तपिश बच्चों से बरदाश्त करते नहीं बनती। इसे "शादी-ब्याह का सीर" कहते हैं।

जिन औरतों का गर्भपात हो गया हो, उनकी तपिश भी इन बच्चों को पीड़ा देती है। ये मासूम बच्चे फूल से भी कोमल होते हैं। इनको हिफाजत से पालना पड़ता है। इस तरह के "कुम्हलाए" बच्चों को न तो अस्पताल ले जाते हैं न किसी शिशुरोग-विशेषज्ञ के पास। उन्हें ले जाते हैं सीधे धोबी के बाड़े में। वहां जाकर धोबी के गधे के सामने बच्चे को पेश कर देते हैं। राम जाने, डाक्टर गधे (!) को इन चीजों का कैसे पता रहता है। अपने सामने लाए गए बच्चे के मुंह को वह बाकायदा सूंघता है। गधा जब सूंघता है, तब उसकी सांस बच्चे के मुंह पर लग जाती है। यही उस बच्चे के लिए तासीर दवा है।

इस तरह दो दिन बड़े तड़के बच्चे को गधे से सुंघाने पर यह बीमारी दूर हो जाती है।

इसी प्रकार बच्चों की एक दूसरी बीमारी है जो "उरम्" कहलाती है। लोग यही कहते हैं, "बच्चे को उरम् लग गया।" बच्चा एकदम रोने लगता है (भूख के कारण नहीं।) वह ऐसा रोता है मानों किसी ने उसकी जोर से पिटाई की हो। वह लगातार रोता रहता है। रुकने का नाम नहीं लेता। समझ में नहीं आता क्या करें क्या न करें। थोड़ी देर में बच्चे की मां भी उसी तरह रोने लगती है। रोने के सिवा बेचारी कर ही क्या सकती है?

तब वहां आती है नानी मां। वह बच्चे के कान को सहलाकर देखती है, कुछ जांच-पड़ताल करती है। फिर ऐलान करती है—"बच्चे को उरम् लग गया है, उसके मामा की कोई धोती लाओ जल्दी से।" धोती के इस तरफ के दो छोरों को कोई पकड़ लेता है और दूसरी तरफ के छोरों को दूसरा कोई। इस प्रकार धोती जो है, झूले का रूप लेती है। इस झूले में लिटाया जाता है बच्चे को। बच्चे की रुलाई जारी है। समान रूप से एक संतुलन में धरे झूले के एक छोर को नानी मां के निर्देशन में पहला आदमी अपनी तरफ झुकाता है। झुके हुए भाग की ओर बच्चा यों लुढ़कता आता है जैसे किसी गड्ढे में लुढ़क रहा हो। तब वह जल्दी से उस हिस्से को ऊपर उठाता है बच्चा दूसरी तरफ लुढ़क जाता है। यों दो तीन बार जब बच्चा बारी बारी से दाएं-बाएं तेजी से लुढ़कता है, एकाएक उसकी रुलाई बंद हो जाती है। वह चुप हो जाता है। थोड़ी देर में बच्चे को इतमीनान से सोते हुए देखकर मां के चेहरे पर मुस्कान छा जाती है। "उरम्" कहां चला गया, कुछ पता नहीं। इलाज का अजीब तरीका है।

---

* चलते-फिरते बच्चे का अकारण सुस्त हो जाना

आठवां झोंका

भाई साहब शंकर नारायण पिल्लै रंज और अफसोस के साथ लगभग चीख रहे थे, उफनती हुई आवाज में। असल में वे अपने दिल का गुबार निकाल रहे थे "अब की बार उबरेगा नहीं बच्चू। आठवें झोंके की चपेट में जो आ गया।

बच्चू से उनका संकेत सुब्रमणि की तरफ था। सुब्रमणि को "बच्चू" कहने का पूरा हक पिल्लैजी को है। उनके अंदर से तजुर्बा बोल रहा है। पैंसठ को पार किए बुजुर्ग हैं शंकर नारायण पिल्लै।

कोई उनसे पूछकर देखे, "भाई साहब, ऐसा क्यों बोल रहे हैं? एक एक करके गिनाना शुरू कर देंगे ब्यौरेवार, नाम-पता सहित। आंकड़े मानों उनकी उंगलियों के पोरों पर नाच रहे हों।

मैंने जिज्ञासा प्रकट कर दी—"वह क्या होता है भाई साहब आठवां झोंका ...?" व्याख्या मिली : "छोटे बच्चों को तोते पालना अच्छा लगता है। है कि नहीं? आदमी बड़े जतन से उसे पालता-पोसता है। फिर भी वह नन्हीं-सी जान इतनी नाजुक होती है कि बार बार उस पर आफत का झोंका पड़ता है। इससे संभलना उसके लिए बड़ा दुश्वार होता है। छोटे बच्चों को पीड़ित करने वाली सभी बीमारियों को सूचित करने के लिए कुल मिलाकर एक नाम दिया गया है—"बालारिष्ट"। बच्चा हरेक बार बालारिष्ट में पड़कर मरते मरते बचता है। जब उसकी जान की आफत टल जाती है तो लोग अक्सर यही कहते हैं, "उफ... एक झोंका टल गया।"

तोते के बच्चे की जिन्दगी में इस तरह के तीन झोंके आते हैं। तीनों से वह बच जाए तो आगे कोई फिक्र नहीं।

तोता-पालन की तुलना में मैना-पालन सचमुच दुष्कर कार्य है। मैना की जिन्दगी में सात झोंके आते हैं। सातवां झोंका दरअसल बड़ा विकट होता है, अक्सर वह जानलेवा साबित होता है, अमूमन लाइलाज माना जाता है। सातवें झोंके से बेहाल होकर मैना अपनी नन्हीं जान के लिए संघर्ष करती है, उसके चारों ओर खड़े बच्चे, जो उस मैना के पालने वाले होते हैं, लाचार होकर आंसू बहाते हैं। इस नश्वर संसार में कई बार हमारे प्रियजन जिस तरह हमसे बिछुड़ जाते हैं, मैना के बच्चे भी सातवें झोंके में पड़कर सदा के लिए चले जाते हैं।

ऐसे बच्चे सचमुच किस्मत वाले होते हैं जिनकी मैना सातवें झोंके से भी जीवित रह जाती है। परंतु ऐसा अहोभाग्य विरले ही किसी को मिल पाता है।

यह जो आठवां झोंका है, पक्षी-समाज पर आने वाला झोंका नहीं है। यह सिर्फ आदमी के बच्चे पर आता है। सो भी केवल उसी पर गुजरता है, जो शादीशुदा होता है।

एकाध भाग्यशाली पुरुष ऐसे भी पाए जाते हैं, जो इस आठवें झोंके से संघर्ष करके साबुत बच निकलते हैं। भाई साहब शंकर नारायण पिल्लै जी के लेखे-जोखे के अनुसार सौ में से कहीं एक सूरमा इसमें खरा उतरता है। आमतौर पर आठ की संख्या के प्रति लोगों का विशेष सद्भाव नहीं पाया जाता। (न जाने बेचारी ने कौन-सा ऐसा पाप किया है।)

आठवें झोंके में पड़ने से पहले सुब्रमणि बिल्कुल ठीक-ठाक था, अब भी उसकी तबीयत को कुछ नहीं हुआ है। वह भला-चंगा ही है, कहना चाहिए पहले से जरा-सा मोटा ताजा भी दिखता है। शरीर की दृष्टि से ही नहीं, मानसिक रूप से भी वह स्वस्थ और प्रसन्न है। हमारे कस्बे में पहले पहल एक साहित्यिक संस्था स्थापित करने वाले प्रमुख लोगों में से एक है सुब्रमणि। इस दल के द्वारा संचालित हस्तलिखित पत्रिका "कांतल" की संपादक-मंडली में भी वह प्रमुख रहा।

रात के बारह बारह बजे तक मंदिर वाले टीले पर मित्र-मंडली के बीच में बैठकर सरस-साहित्य चर्चा में डूबे रहना, जहां कहीं भी संगीत-समारोह का आयोजन होने पर संगीत-रसिक मित्रों के साथ पहली पंक्ति में बैठकर नाद-सौंदर्य का आस्वादन करना आदि जीवन-चर्चाएं नियमपूर्वक संपन्न हो रही थीं।

उसकी नौकरी लग गई, पूर्वजों के पुण्य के फलस्वरूप (इसे दूसरे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता, कारण यह है कि इस नौकरी को पाने के लिए पूर्वजों द्वारा अर्जित पुश्तैनी मकान बेचकर उसने चयन-समिति के सदस्यों को चढ़ावा समर्पित किया था)।

नौकरी लगने से अच्छी भली तनख्वाह भी मिली। अपने सहकर्मी मित्रों के साथ वह किराए के कमरे में रहने लगा। मां-बाप के लिए हर महीने वह थोड़ा बहुत भेजता भी था।

इधर नौकरी लगी नहीं कि जिस तरह गुड़ को सूंघते हुए चींटियों की कतार उसकी ओर खिंचती चली आती है, उसी तरह सुब्रमणि की तलाश में लड़कियों के बापों का तांता लग गया। एक दिन प्रसन्न मुद्रा के साथ वह अपने परिचितों और मित्रों में विवाह का निमंत्रण-पत्र बांट रहा से था। बड़े धूम-धाम से शादी हुई। सारा का सारा इंतजाम लड़की वालों की ओर से था। सुब्रमणि के आगे-पीछे मंडराते हुए मित्र-मंडली ने भी विवाह-समारोह की शोभा बढ़ाई। शादी के दिन पंक्ति भोजन के अवसर पर, परोसने वालों पर एक जबर्दस्त महिला बुरी तरह हावी हो रही थी। पूछताछ करने पर पता चला कि वह दबंग औरत लड़की की मां थी। इस पर हमारी टोली के चतुर-सुजान लछमन ने टिप्पणी की—"चिंता

न करो, थोड़े ही अरसे में लड़की भी मां जैसी बन जाएगी।"

अलग से एक मकान की व्यवस्था करके लड़की वालों ने सुब्रमणि दंपत्ति को उसमें बसाया। काफी अच्छा, सुविधा संपन्न मकान था। बल्कि वह दो मकानों का एकक था। लड़की वालों ने कहा, "किराए के बारे में चिंता न करो बेटे। दोनों मकानों का किराया हमी ही दे देंगे। मदुरै में भी तो हम किराए के मकान में ही रहते थे। सो यहां दे लेंगे। बेटी-दामाद एक मकान में रहेंगे, उनकी मदद के लिए हम पास वाले मकान में रह लेंगे।" यों कहते हुए वे लोग भी आ गए।

जब से शादी हुई, सुब्रमणि का कहीं अता-पता नहीं। उसका बाहर निकलना "न" के बराबर हो गया। मंदिर वाले टीले पर जब मित्र-मंडली जमा होती, सब को बारंबार उसकी याद आ जाती। भाई साहब शंकर नारायण पिल्लै को उनकी उम्र के कारण नींद कम आती थी, इसलिए वे भी हम जवानों के साथ बातचीत में शरीक हो जाते थे। विवाह के बाद छुट्टी में रहने की वजह से सुब्रमणि दफ्तर में भी मिलता नहीं था। कभी उसके नए घर से होकर गुजरने का मौका मिलता तो वहां उसकी सास खड़ी दिखाई देती।

मित्रों ने एक दिन प्रोग्राम बनाया और सब मिलकर फिल्म देखने के लिए थिएटर चले गए। इत्तफाक से सुब्रमणि भी सपरिवार थिएटर आया था। सबसे पहले लछमन ने उन्हें देखा। सुब्रमणि अपनी बीबी के पास हंसमुख बैठा था। कहने की जरूरत नहीं है कि साथ में सास महोदया भी बैठी थीं। मित्रों की प्रतीक्षा थी कि सुब्रमणि कम से कम "इंटरवल" में उठकर हमारे बीच में आएगा। सिगरेट सुलगाए बिना वह कैसे रह सकता है।

लगता है सुब्रमणि से उठा नहीं गया। वह अपनी नई नवेली दुल्हन से हंस हंस कर बात कर रहा था। मगर दुल्हन तो हंस नहीं रही थी। वह यूं मुंह बनाए बैठी थी मानों चुनौती दे रही हो, "मैं भी देखूं, जरा हंसाओ तो मुझे।"

छुट्टियां खत्म हुईं। उसके बाद भी सुब्रमणि घर और दफ्तर तक सीमित था। उसकी शादी के बाद दो साहित्य सभाएं हुईं, वह नहीं आया। "कांतल" पत्रिका का अगला अंक निकाला जाना था। सुब्रमणि के बिना उसके कई स्तंभ लिखे नहीं जा सकते। पहली बात तो यह है कि उसके जैसा सुलेख किसके पास है? दफ्तर में मिलकर अनुरोध करो तो संक्षिप्त उत्तर मिलता "जरूर आऊंगा", पर नहीं आएगा। वह खुली खुली और हंसी मजाक से भरी बातें बंद हो गईं, मगर ऐसा भी नहीं कि उसने बोलचाल ही बंद कर दी हो।

मंदिर के टीले पर जब उस दिन जमघट हुई, "कांतल" पत्रिका निकालने के संबंध में चर्चा छिड़ गई। भाई साहब ने कहा : "मान लो कि पहली पंक्ति का हलधर चला गया। इसका यह मतलब नहीं है कि जुताई ही बंद हो जाएगी। अरे पागल बच्चो तुम लोगों को जितना आता है, उसी से शुरू करो। सब अपने आप ठीक हो जाएगा।" यों कहकर भाई साहब ने सबको प्रोत्साहन दिया। उनकी बात सही निकली, पत्रिका दुबारा चल निकली।

एक दिन मैं और राजू लछमन के साथ बातें करते हुए बाजार की सैर कर रहे थे। लछमन ने एकाएक पूछा, "दोस्तो, देखना है जेल वार्डन को ...?" पहले तो हमारी समझ में कुछ नहीं आया। फिर हमने मुड़कर देखा, सुब्रमणि की सास जा रही थीं।

मुझे कुछ उत्तर सूझ नहीं रहा था। राजू अपनी हंसी रोक नहीं पा रहा था। शरारत और वाचालता में लछमन सचमुच लाजवाब है। दिन बीतते गए। महीने आए और गए। लेकिन सुब्रमणि के मामले में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह हमसे जो बिछुड़ा, बिछड़ ही गया। एक दिन बजाज की दुकान पर दिखाई दिया पत्नी और सास के साथ मुझे देखकर "हैलो" बोला। फिर "लड़का" होने की सूचना दी। आगे कुछ भी बोल न पाया, माहौल ही कुछ ऐसा हो गया था।

उस रात को मंदिर वाले टीले पर हम लोग बातें कर रहे थे। भाई साहब शंकर नारायण पिल्लै ने अपने दोनों हाथ हिलाते हुए ऐसे कहा, मानो वे अपने सामने सुब्रमणि को बैठे देख रहे हों, जोर जोर से उसे सुना रहे हों, "अरे सुब्रमणि, हमने सपने में भी नहीं सोचा था कि तुम्हें भी यह झोंका आएगा ...।" उस समय भाई साहब का चेहरा देखने लायक था, उससे बनावटी दुख और संताप टपक रहा था।

कुत्ते

1

कुत्ते अक्सर रखवाली के लिए ही पाले जाते हैं, फिर भी बाज बाज कुत्तों को लोग उनकी खूबसूरती के लिए पालते हैं और कुछ लोग "मानसिक संग" के लिए इन्हें पालते हैं।

अपूर्व एवं उत्कृष्ट कोई वस्तु अपने पास होने पर मानव गर्व का अनुभव करता है। इस स्वभाव विशेष के कारण आदमी चाहता है कि अपने पास उम्दा नस्ल का कोई कुत्ता या कुतिया हो जो दूसरों के पास न हो।

मेरे एक दोस्त ने एक कुतिया पाली। उसकी नस्ल का नाम फिलहाल याद नहीं आ रहा है। इसलिए कि वह जुमला ही कुछ अटपटा-सा था। लेकिन हां, कुतिया का नाम जरूर याद है—"लाइका"।

रोमांचक नाम है। यह उस मशहूर कुतिया की नामराशि की है जिसने पहले पहल अंतरिक्ष में उड़ान भरी थी।

"लाइका" नाम के उच्चारण में ही हर बार मेरा दोस्त जितना आनंद पाता था। उतना ही आनंद इस नाम के श्रवण से मुझे भी होता था। कभी कभी लोग मेरे पास आकर पूछते हैं, उनके द्वारा पालित प्रिय-जंतु का अच्छा-खासा कोई नाम सुझाऊं। उस समय मैं एकबारगी चकित-भ्रमित हो जाता हूं। मुझे एकदम कोई भी नाम याद नहीं आता, किंतु न जाने क्यों, राग-रागनियों के नाम स्मृति-पथ पर आ जाते हैं। आप ही कहिए कुत्ते-कुतियों को राग-रागनियों के नाम से कैसे पुकारा जाए? मगर सच मानिए, मेरे एक मित्र ने अपनी कुतिया का नाम "भैरवी" रखा है। (इस बात पर भला हम उससे कैसे झगड़ा कर सकते हैं? जाने भी दीजिए, किस किस को रोका जाए?)

बहरहाल हमारे इस दोस्त के यहां नया नया कोई भी आए, लाइका नहीं भौंकती।

नवागत लोग उसकी शराफत की यों सराहना करते, वाह, कुत्ता हो तो ऐसा हो। मैंने जब कभी लाइका को देखा, वह आलस्य में सोती हुई मिली। यही नहीं, लाइका कभी भी फर्श पर नहीं सोती। मेरे दोस्त की चारपाई पर शान से चढ़ती और उसके मुलायम गद्दे पर निद्रा का आनंद लेती। बेचारा मेरा दोस्त फर्श पर दरी बिछाकर सोता।

जोर की कोई आवाज सुनाई दे—जैसे फर्श पर गिलास का गिरने की तरह—तो लाइका

ऐसे मौकों पर अधखुली आंखों से चारों ओर नजर दौड़ाती और फिर आंखें बंद कर लेती। मैंने लाइका को कभी भौंकते हुए नहीं देखा। उसके भौंकने की आवाज मैंने कभी नहीं सुनी। इसलिए शुबहा हुआ, कहीं यह गूंगी तो नहीं है। इसी शक को दूर करने के लिहाज से मैं एक दिन दोस्त से पूछ बैठा, "क्यों भई, यह कभी नहीं भौंकती?"

"किसने कहा कि यह भौंकती नहीं? ऐसी कोई बात नहीं है।" यों जवाब देने के बाद दोस्त ने अपना मुंह लटका लिया। स्वयं उसे बुरा-भला कुछ भी कहिए वह बर्दाश्त कर लेगा, चूं तक नहीं करेगा, लेकिन अपनी कुतिया की बुराई वह रत्ती भर भी सहन नहीं कर सकता। झट से नाराज हो जाता है।

सर्दी के पूरे मौसम में लाइका दोस्त के कमरे में सुखपूर्वक निवास करती। गर्मी शुरू होते ही घर के आंगन पर नीम तले सीमेंट की बेंच पर हवा खाते हुए नींद का मजा लेती। गांव में अगर कोई आदमी दिन में सोता हुआ मिलता तो उसे लोग अमूमन यों छेड़ते, "क्यों बे, रात में खेत की रखवाली करने गया था?" जिस आदमी को खेत की रखवाली के लिए जाना पड़ता है, उसे पूरी रात जागते रहना पड़ता है। वह पल भर के लिए भी पलक नहीं झपक सकता। जरा-सी आंख लग गई तो इधर गीदड़ या भेड़िया आकर भेड़-बकरियां उड़ा ले जाए। कई बार दुपाए भेड़िए भी आ जाते। फसल पकी हो तो भेड़ बकरे आकर खड़ी फसल को चर जाते। इसलिए "खेत की रखवाली" का मतलब है "पूरा रतजगा"।

दिन में नींद का आनंद लेना गांव वालों की किस्मत में नहीं है। सुखमय जीवन बिताने वाले जमींदार या एकाध धनी भू-स्वामी दोपहर के भोजन के बाद जरा देर के लिए सुस्ता सकते हैं। वे लोग आपसी वार्तालाप में भले ही इस उक्ति को दुहरा लें, "भोजनोपरांत विश्रांति वांछनीय है", किंतु जनसाधारण का इस सूक्ति से कोई वास्ता नहीं। दिवा-निद्रा श्रीमंत जमींदारों को शोभा दे सकती है, लेकिन इस "गधी-कुतिया" का "घोड़े बेचकर सोना" मुझे सरासर अन्यायपूर्ण लगा। फिर मैंने यह सोचकर तसल्ली कर ली, हो सकता है, यह "भद्र-कुतिया" दिन भर विश्राम करने के बाद रात भर जागती हो, कड़ी मेहनत करती हो।

मेरा दोस्त अपनी लाइका के गले में चांदी का पट्टा पहनाने की सोच रहा था। एक दिन कह रहा था "अभी हाल में बाहर गया था। वहां एक कुत्ते की गर्दन में चांदी का पट्टा देखा, बहुत सुंदर लग रहा था। मैंने भी झट उस के सौंदर्य-बोध की दाद दी और कहा "हां दोस्त, बहुत अच्छी बात है। इसके लिए भी ऐसा ही पट्टा चांदी में बनाकर अवश्य पहना दो।"

अगली बार जब मैं दोस्त के घर गया तो देखा, "मिस लाइका" खालिस चांदी का बना चमचमाता पट्टा पहने नीम की छाया में सीमेंट के साफ चबूतरे पर महारानी की भांति शान से लेटी थी। दरअसल वह आभूषण लाइका के गले में फब रहा था। ठीक ही कहा

गया है, "मिट्टी के फर्श को चिकना करके देखो, स्त्री की काया को सजा करके देखो।" दोस्त ने कहा, घर में आने वाले सभी लोग एक स्वर से इनकी तारीफ कर रहे हैं, "बड़ा रास आ रहा है।" मैंने उसे सलाह दी, "चलो, चौराहे से मिट्टी ले आओ और इसकी बलैयां लो, कहीं डीठ न लग जाए।"

गले का पट्टा पहनाने के बाद से लाइका के व्यवहार में बदलाव नजर आने लगा। ऐसा लगा, वह नींद में कोई सपना देखती हो। हो सकता है, कोई मजेदार सपना आता हो, तभी तो रह रहकर वह सुखपूर्ण आलाप निकालती थी। आलस्य के साथ अंगड़ाई लेते हुए बदन दुहरा करके सो जाती थी। बीच बीच में संभव है वह चोर का सपना भी देखती हो, तब वह सोते सोते हल्की आवाज में भौंकती थी।

यार दोस्त जब आएं—अगर उस समय वह जागती होती—तो बड़े लाड़ प्यार से उनकी गोद में आकर लेट जाती और सहलाने को कहती। वह जिस ढंग से हमारी हथेली के अंदर अपना मुंह घुसेड़ लेती, उससे जरूर यह आभास हो जाता कि वह "सहलाना" मांग रही है।

आप सहलाना शुरू कर दीजिए तो वह आपको किसी भी सूरत में नहीं छोड़ेगी। वह आपको यों तंग करती, यों तंग करती कि आप सहलाते ही रहिए। मुझे महसूस हुआ कि इस तरह इसे "हाथ का सुख" देना गलत बात है। लेकिन इसे मैं अपने दोस्त को कैसे बताऊं? बताने पर उसका मुंह छोटा न हो जाएगा? अगली बार जब मैं दोस्त के यहां गया, लाइका के गले में आभूषण नहीं था। उसका गला सूना सूना लग रहा था।

"पट्टा क्यों उतार दिया भई?" मैंने पूछा। दोस्त ने कहा, "कुछ न पूछो यार, कोई निकम्मा-सा चोर का बच्चा उसे उतार ले गया। उफ, कितनी बुरी बात हो गई।" दोस्त ने चोर पर इलजाम लगाया।

गर्मी में दोस्त नीम वाले आंगन में ही सोता, लाइका का "साथ देने" के लिए। तभी यह चोरी हुई थी। मैंने हड़बड़ा कर पूछा, "और कोई चीज तो गायब नहीं हुई है?" पता चला कि घर में ताला लगा था, इसलिए और कोई चीज नहीं गई। चोर केवल लाइका का कंठाभरण और दोस्त के सिरहाने से विदेशी टार्च लाइट उड़ा ले गया।

"टार्च लाइट चला गया, कोई बात नहीं। लेकिन बताओ, कुतिया के गले से चांदी का पट्टा उड़ा ले गया पट्टा। मैं पूछता हूं, कभी उसकी बरकत हो सकती है?" गमगीन आवाज में दोस्त ने पूछा। मैंने लाइका पर नजर डाली। मगर उसे तो रंच मात्र भी चिंता नहीं थी। बेफिक्र होकर सो रही थी।

2

लाइका के बारे में मैंने जो वृतांत लिखा, उसे पढ़कर एक मित्र ने पूछा, "क्यों भाई, क्या यह सच्ची घटना है? भरोसा नहीं आ रहा ...?"

मैंने जवाब दिया, जनाब, अब मैं जो वाकया सुनाने जा रहा हूं, उस पर खुद मैंने विश्वास नहीं किया था, जक्कंणन ने मुझे यह घटना सुनाई थी। जब मैं छोटा था, जक्कंणन हमारे घर की भेड़-बकरियां चराया करता था। रात को खाने के वक्त ही हम फुरसत से उससे मिल पाते थे। उसकी रसभरी बातें सुनने के लिए हम उसके इंतजार में बैठे रहते। खाने के बीच उसके साथ मेरा बतियाना चाचीजी को अच्छा नहीं लगता था। वे हमेशा हमें टोका करती थीं। इसलिए हम लोग हरिकेन लैंप की रोशनी में गोशाला के पास वाले बरामदे में उसकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहते।

खाने के बाद गीले हाथ को अपनी लुंगी से पोंछते हुए वह हमारे पास आता। मेरी जीजी उसे छेड़ती, "जक्कंणन, आज झूठ का कौन-सा पुलिंदा खोलने वाले हो?" झट से वह उसे जवाब देता, "आप चुप रहिए न बड़ी दीदी।" फिर वह ओखली के ऊपर बैठ जाता। वही उसका राज सिंहासन था।

दादी मां का स्थाई आदेश है कि भूलकर भी कोई सिल-बट्टा, ओखली वगैरह पर न बैठे। बैठने पर जिस तरह वे चीजें घिस जाती हैं, वैसे ही बैठने वाला भी घिस जाएगा। लेकिन इस हुक्म की याद दिलाने पर भी जक्कंणन नहीं मानता था। फिर तो हमने भी कहना छोड़ दिया। हमारा क्या नुकसान होने वाला है। घिसने वाला वही तो है न !

किसी बात में मिर्च-मसाला लगाकर उसे कहानी की सूरत में पेश करने में जक्कंणन बड़ा माहिर था। उस दिन उसने जो वाकया सुनाया वह एक चोर की बेवकूफी की कहानी थी। चोर ने कुत्ते को भूल से बकरी समझकर चुराया था।

उसके द्वारा बयान की गई मजेदार बातों में यह कहानी हमें सबसे ज्यादा पसंद आई। आज तक इसे भूल नहीं पाते। कई बार हम जक्कंणन से यही कहानी सुनाने के लिए आग्रह करते। उसके मुंह से सुनने में खास मजा आता था, हम हंस कर लोट-पोट हो जाते थे। संभव है इसे सुनकर आज कोई ऐसा भी कह दे, इस कहानी में क्या रखा है?

यह उस जमाने की बात है जब जक्कंणन वनसमुद्रम के जमींदार के यहां काम करता था। जमींदारनी ने "सित्तु" नस्ल का एक कुत्ता पाल रखा था। लंबा-तगड़ा और काले रंग का वह कुत्ता देखने में बकरे जैसा लगता था। लाइका की तरह वह आठ पहर चौंसठ घड़ी नहीं सोता था, केवल रात में निद्रा का आंनद लेता था। वह भी कैसी निद्रा, श्वान-निद्रा की तरह अध-जगी निद्रा नहीं, बल्कि गाढ़ निद्रा।

दिन भर वह बच्चों की तरह खेलता रहता। जब खेल-कूद से मन ऊब उठे तो पूरे

गांव का चक्कर लगाने के लिए निकल पड़ता। दौड़ की किस्मों में जिस तरह एक "रनर दौड़" होती है, कुत्तों के बीच में एक खास तरह की दौड़ होती है "लोक्क-दौड़"। इसकी गणना न तो दौड़ की कोटि में आती है, न ही "धीमी चाल" की श्रेणी में। इसे आप दोनों की बीच वाली "दौड़ चाल" कह सकते हैं।

गली के प्रत्येक मोड़ पर मुड़ते हुए कुत्ता अपनी पिछली टांगों में से किसी एक को जरा-सा उठा लेता और जिस अदा के साथ कोई डाक्टर इंजेक्शन लगाने से पहले सिरिंज को दबाकर उसके अंदर के द्रव को जरा-सा बाहर निकालता है, उसी भंगिमा से कुत्ता जरा-सा द्रव-पदार्थ जमीन पर मारते हुए भागता। "अक्षय समुद्र" की तरह यह द्रव उसके शरीर के भीतर से निरंतर कैसे निकलता रहता है, यह सचमुच आश्चर्य का विषय है। आज भी ऐसी बलवती मान्यता चली आ रही है कि एकाकी बैठे किसी व्यक्ति पर कोई कुत्ता इस प्रकार का द्रव प्रयोग करे तो उसके भाग्य में राजयोग शीघ्र ही आने वाला है।

किस्मत के मारे निगोड़े लोग चाहे शीर्षासन पर खड़े होकर प्रतीक्षा करें तब भी उन्हें यह सौभाग्य सहज ही नहीं मिल पाएगा।

यों गांव का दौरा करने के दौरान जमींदार के घर के कुत्ते से चुप रहते नहीं बनता, दुनिया भर के कुत्तों से टंटा मोल लेते हुए घर लौटता। रास्ते में तगड़े कुत्ते दिख जाएं तो निश्चित जानिए कि शामत आ गई। अगर यह दुम दबाकर आ जाए तो वे कुत्ते इसे बख्श देते। लेकिन यह जमींदार के घर का कुत्ता जो ठहरा। दुम दबा ले तो इसे खाना खिलाने वालों की "नाक" ऊंची कैसे रहेगी? यह प्रसंग आते ही जक्कंणन अपना जबड़ा खोलकर ओंठों की ऐसी शक्ल बनाता कि ऊपर की दंत-पंक्ति दिखाई देती। इस मुद्रा में वह गर्दन मोड़कर "व् .. व् व्" में शुरू करके एक बार भौंकता कुत्ते की भांति। सुनकर मेरे तीनों छोटे भाई और बहनें खुशी से लोट-पोट हो जातीं।

बस, सारे के सारे कुत्ते मिलकर एक साथ उस पर झपटते और उसका हाल बेहाल कर देते। अपने लाड़ले कुत्ते की "त्राहि, त्राहि" सुनकर जमींदारनी भागी भागी आतीं अपनी भारी भरकम काया को उठाते हुए। आकर उन कुत्तों को गाली देने के बजाए वे उनके "पालकों" को ताबड़ तोड़ गालियां सुनातीं।

सारा गांव एकत्र हो जाता वहां पर तमाशा देखने के लिए। अपनी तरफदारी के लिए स्वयं मालकिन को पधारी जानकर "सित्तु" कुत्ता तब लपक लपक कर जोर से भौंकता। एक बार भीड़ में से किसी ने टिप्पणी कर दी—"शक्ल-सूरत में चूहे जितना है, लेकिन इसकी उछल-कूद तो देखो।" जमींदारनी ने इसे सुन लिया।

"क्या कहा, चूहा? ... हमारा कुत्ता चूहा है, तो अपने कुत्ते को शेर समझ रखा है?" तैश में आकर उन्होंने एक बूढ़े से इस तरह सवाल किया। असल में कुत्ते को चूहा कहने वाला वह शख्स नहीं था। यह भी पता नहीं चला कि "चूहा" किसने कहा था। ऐसे में

कौन आगे बढ़कर मानेगा कि हां, मैंने कहा था। बेचारा जक्कंणन का बुरा हाल हो रहा था। जैसे तैसे बड़ी मुश्किल से वह भौंकते कुत्ते और जमींदारनी को शांत करके घर लिवा लाया।

सारी कहानी सुनकर जमींदार ने दांत भींचते हुए महिला-रत्न से कहा—"आइंदा इसे बांध करके रखो।" लेकिन उसे बांधना सहज नहीं था। जंजीर की झनक उसके कान में पड़े बिना बड़ी एहतियात बरतते हुए बांधना पड़ता था।

बांधने के थोड़ी देर बाद वह ऊंह ... करते हुए ऊंची आवाज में रोदन करने लगता।

कुत्ता भौंके तो कोई बुरी बात नहीं है। उसकी चीख-चिल्लाहट की भी किसी को परवाह नहीं। लेकिन सुना है शास्त्रों के अनुसार कुत्ते का रोना अपशकुन है। (पता नहीं, कौन-से शास्त्र में लिखा है।)

मान्यता यह है कि कुत्ता अगर रोए तो वह इस बात का संकेत है कि उस घर में किसी की मौत होने वाली है।

जमींदारनी की मां उन दिनों मृत्यु-शय्या पर लेटी हुई थी। कब्र में एक पांव रखा होने पर भी उसकी श्रवण-शक्ति बहुत ही तीक्ष्ण थी। दीन-स्वर में वह अपनी बेटी से कहती, "उस कुत्ते को खुलावा दो न" बस, थोड़ी देर में कुत्ते को आजादी मिल जाती। फिर वही "पुराना ढर्रा"। छुटकारा मिलने की खुशी में वह छोटे बच्चों की तरह किलकारी भरता और उछल कूद मचाता, चक्कर काटते हुए घर भर में भगता फिरता। एक एक करके सबको अपनी टांग से सहलाता और हर्षारव करते हुए आसमान सिर पर उठा लेता।

जमींदारनी ने एक बकरी भी पाल रखी थी। उस बकरी को देखकर सहसा एक बार सबको भ्रम हो जाता कि वह कुत्ता तो नहीं है। बकरी और कुत्ते में बड़ी दोस्ती थी। गोशाला में एक टोकरा रखा था। जब देखो, टोकरे के अंदर इन दोनों में से कोई एक लेटा हुआ मिलता। पता नहीं, टोकरे के अंदर लेटने में उन्हें कौन-सा मजा मिलता होगा। हो सकता है उसके अंदर बदन को सिमट-गुमट कर लेटने की सुविधा रहती हो।

रात में एक बार बकरी को भूख लग जाती। उस समय उसे पत्ते चबाने की ललक होती। जब जब बकरी उठ जाती तो कुत्ता टोकरे को आबाद करने के लिए पहुंच जाता। सुबह सुबह कूड़ा उठाने के लिए जक्कंणन को टोकरे की जरूरत होती। उस वक्त "लाड़ला" कुत्ता टोकरे में मजे से लेटा रहता। उसे टोकरे-समेत उठाकर जक्कंणन सिर पर रख लेता और मटक मटक कर चलने लगता। लेकिन तब भी कुत्ता सोया ही रहता। ऐसे समय जक्कंणन के मन में यही विचार आता कि या तो यह पिछले जन्म में कोई जमींदार था या अगले जन्म में जमींदार के यहां पैदा होने वाला है। नहीं तो कोई जीव राशि पौ फटने के बाद इतनी देर तक निद्रा सुख ले सकता है? जमींदारनी इस गफलत में रहती थी कि उनका लाड़ला कुत्ता रात भर गोशाला में बकरी की रखवाली कर रहा होता है।

गोशाला का दरवाजा पक्का नहीं था, बांस की एक टट्टी थी। उसे हटाते हुए कोई भी चोर बेरोकटोक गोशाला के अंदर आ सकता है।

उन दिनों जगह जगह से बकरियां चोरी होने की चर्चा चल रही थी। कहीं से चोर उचक्के आ कर यहां से भी बकरी उड़ा ले जाएं तो ...। यह ख्याल आने पर जक्कंणन डर से कांप जाता। दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद कौन रात भर जागे, वह भी बकरी और कुत्ते की रखवाली में?

न जाने कौन-सा देवता प्रसन्न हो गया, उस रोज सुबह कोई खरीदार आया और उसने बकरी को अच्छे दाम में मांगा। जक्कंणन ने जमींदारनी से कहकर कि इतना दाम और कहीं मिलने वाला नहीं, जैसे-तैसे बकरी को बिकवा दिया। बकरी गोशाला से चली गई। इस जगह पर श्रोता-गण की उत्सुकता बढ़ाने के लिए जक्कंणन ने कहा, "सुबह बकरी बिकी और रात में चोर आ गया।"

रात को खाना खाते ही सो जाने की आदत थी जक्कंणन की। एक बार गहरी नींद—इसे "खुराक-नींद भी कह सकते हैं—पूरी करने के बाद रात में एक बार उसकी आंख खुल जाती। अक्सर वह आधी रात का समय होता। वह उठकर गाय-बैलों को दाना-पानी देता और फिर लेट जाता। नींद को जहां पर छोड़ा होता, उस जगह से सिरा पकड़ते हुए अगले दौर का सिलसिला मिलाता। उस रात को इसी अंतराल में चोर टाट वाला दरवाजा ठाट से हटाते हुए—मानो इसे अपना ही घर समझते हुए—अंदर आया। तारों के धुंधलके में सब नजर आ रहा था।

जक्कंणन ने सोचा, बकरी तो बिक गई। अब देखें, चोर क्या गुल खिलाने वाला है। लेटे लेटे वह गौर से देख रहा था। चुपके से चोर उसके पास आया और स्थिति का जायजा लेने लगा। जक्कणन संतुलित वेग से सांस लेता और निकालता हुआ इस तरह पड़ा था, मानो गहरी नींद में हो।

"उस वक्त डर नहीं लगा तुम्हें?" मेरे छोटे भाई ने पूछा। जक्कंणन ने जवाब दिया, "मैं क्यों डरूं भई? न तो मैं कान में कोई बाली पहने था, न मेरी अंटी में पैसा था। ऐसे में मैं क्यों डरूं?" उसकी बात सुनते हुए मेरी छोटी बहन ने गोशाला के द्वार की ओर सतर्क दृष्टि डाली। द्वार बंद था और ताला पड़ा हुआ था।

तेज चाल भरते हुए चोर ने कुत्ते को टोकरे-समेत उठाकर सिर पर रख लिया और चलने लगा। जक्कंणन अपनी हंसी रोक नहीं पाया। ...कहकहे लगाकर हंसने लगा जोर से। चोर ने सकपका कर टोकरा नीचे डाल दिया और लगा भागने। एकाएक नीचे गिरने से झटका खा कर कुत्ता डर गया और जोर जोर से चीखने लगा। जमींदार दरवाजा खोलकर टार्च लाइट के साथ आ गए और तलब करने लगे, "क्या बात है?" मैंने नीचे पड़ा टोकरा दिखाते हुए पूरी घटना जैसी की तैसी उन्हें सुनाई। सारी बातें सुनकर उन्होंने गुस्से में कहा,

''सुबह उठते ही पहला काम तुम्हारा यही है कि इस कुत्ते को पेड़ पर बांध देना, समझे?"

"और सुबह पहला काम तुमने यही किया होगा। कुत्ते को पेड़ पर बांधा होगा", छोटे भाई ने कहा। इस पर जक्कंणन ओंठ भींचते हुए बोला, "अरे कहां? सुबह होते ही मेरी छुट्टी हो गई।'' मालिकों ने पूछा, "रात को गोशाला में चोर आया, कुत्ते वाला टोकरा उठाकर उसने सिर पर रख लिया, तब तक तू क्या कर रहा था? सो रहा था कि जाग रहा था?'' और फिर मालिक ने मुझे भी खदेड़ दिया ..."भाग जा कुत्ते।" और मैं भी यहां चला आया। जक्कंणन हंसने लगा।

3

उम्दा और गुणवान कुत्तों के बारे में लिखना छोड़कर मैं क्यों बेकार के, निकम्मा-किस्म के कुत्तों की कहानी बयान कर रहा हूं, यह बात उम्दा नस्ल के कुत्तों और ऐसे उत्तम श्वानों के "पालनहारों" को जरूर खटक रही होगी। इसलिए अच्छे कुत्तों के विषय में भी दो बातें बताना आवश्यक हो गया है।

मैंने ऐसे कुत्तों को भी देखा है जिन्हें देखकर लोग कह दें, "कुत्तों में कुत्ता यही है।" ऐसे कुत्ते मैंने पाले भी हैं। हमारे यहां "देशी नस्ल" नाम से खास कोई नस्ल नहीं होती। राजपालयम में वहां का कुत्ता "देशी नस्ल" का है। कोम्बै में स्थानीय कुत्ता "देशी" होता है। चिप्पिपारै में भी यही बात है।

हमारे यहां चिप्पिपारै जाति के कुत्ते ज्यादा मिलते हैं। हमारे लिए यही "देशी नस्ल" है। यातायात काफी ज्यादा बढ़ जाने के इस जमाने में कुत्ते की नस्ल को संकर होने से बचाना और उस वंश-जाति को विशुद्ध रूप में सुरक्षित रखना "खरगोश के सींग" के समान हो गया है। नस्ल की विशुद्धता की सुरक्षा साधारण जनों के लिए दुष्कर है, असंभव ही कहिए। किसी सूरमा से ही यह कार्य साधित होता है।

हमारे यहां ऐसे ही एक सूरमा हुए जिन्होंने "कन्नि" नामक जाति को बड़े जतन से संकरता के महादोष से बचाए रखा। (कहावत है, "बस्ती का नाम भले ही बताओ, मगर व्यक्ति का नाम खोलो न", इस कहावत को मानते हुए मैं उन्हें मूक्क नायकर का कल्पित नाम दे रहा हूं।)

उनके पास एक छल्ला था जिसे वे "मुख-वलय" कहते थे। हम अगर उनकी कोई बात काट दें या उनसे प्रतिवाद करें तो तत्क्षण वे हमारे मुंह पर वह छल्ला लगा देते। बस, हम आगे एक लफ्ज भी नहीं बोल सकते, यही नहीं जब तक वे उस छल्ले को नहीं खोलते। हम न खाना खा सकते हैं, न पानी ही पी सकते हैं।

"भादों" नाम से एक "सीजन" होता है। (कुट्रालम्-जलप्रपात के सीजन से इसका कोई वास्ता नहीं है) इसी "सीजन" में यहां पर कुत्ते-कुतियों में "प्रेम" चलता है।

इस प्रयोजन के लिए कुत्तों ने एक महीना नियत कर रखा है। यह विधि कुत्तों पर ही नहीं, बल्कि "दंष्ट्रा" वाले सभी जानवरों पर लागू होती है।

अनुशासन-बद्ध रूप में स्वामिभक्ति के साथ रखवाली करने वाले कुत्तों में यह "सीजन" गड़बड़ पैदा करता है और उन्हें बिगाड़ देता है। मूक्क नायकर इस मामले में बड़े होशियार रहते हैं। सावन की अंतिम तिथि तक "मुख-वलय" तैयार कर लेते हैं और अपनी दोनों "कन्नि" कुतियों के शरीर पर लगा देते हैं। फिर कहते हैं "अब कौन आकर तुम्हारे साथ क्या कुछ कर सकता है? फिर वे दूसरे किसी गांव में जाते और अपनी जान-पहचान वालों के यहां से नर कुत्ता ले आते। नवागत कुत्ते को कुछ दिनों तक अपने घर में "मेहमान" की तरह रख लेते। (कहने की आवश्यकता नहीं है, उन दिनों में कन्नि कुतियों के शरीर से छल्ले निकाल दिए जाते हैं।)

केवल उनके करीब के यार दोस्त तब हंसी-मजाक में उनसे पूछते, "क्यों नायकर, लगता है घर में "जमाई साहब" आए हैं।"

"भादों सीजन" के ठीक साठ दिन बाद कुतियां पिल्ले जनती हैं। इन पिल्लों को एक नजर देखने के लिए हम रोज बार बार उनके घर के चक्कर काटते। अगर उनकी बीबी काली घर में होती तो हमें अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिलती। वह हमें तुरंत भगा देती।

हम उनके घर के बाहर घंटों प्रतीक्षा में बैठे रहते, नायकर की राह देखते हुए। जब वे दिखाई देते, उनसे गिड़गिड़ाते कि जरा पिल्ले दिखाएं। बारंबार के अनुरोध से वे थोड़ा पसीज जाते और हमें जरा-सा देखने की इजाजत मिलती।

नन्हें से प्यारे-प्यारे पिल्ले! अभी आंखें खुली भी नहीं। पिल्लों का सरकते हुए मां के पास पहुंचना और मुंह से थनों को टटोलकर उनका दूध पीना, यह नजारा देखते हुए हम सुध-बुध खोकर खड़े रहते। उस आनंदमय वेला में उनके मुंह से जो सुखमय गुनगुनाहट निकलती।

अगर हम उस वक्त पहुंचते जब कुतिया अपने पिल्लों के संग रहती है, वह एक खास अदा में अपना मुंह उठाकर हमें यों देखती मानों पूछ रही हो, "अरे यहां कैसे आए हो गधे-बच्चों। तुम लोगों को और कोई काम-धंधा नहीं है?"

अगर घर के लोग साथ में नहीं होते तो वह हमें काट काट कर कुतर डालती। बच्चे जनने के बाद मादा जानवर का आक्रोश कुछ ऐसा ही होता है। नायकर कुतिया के थनों में दूध की सीमा को देखते हुए उसी अनुपात में गिने चुने पिल्ले रख लेते और बाकी पिल्लों को पानी में डाल आते।

पानी में डालने की "नुमायश" देखने के लिए हम बच्चे भी उनके साथ चलते। बच्चे

जनने के उसी दिन वे इस अनुष्ठान का निर्वाह नहीं करते। उनकी मान्यता है, इससे पाप लग जाता है। "पैदाइश के बाद कम से कम दो-तीन दिन इन्हें मां का दूध पीने के हक से वंचित नहीं करना चाहिए। अन्यथा इस पाप के लिए कहां जाकर प्रायश्चित्त करें?" जीव-हनन करने के लिए इन लोगों ने कुछ विधि-विधान बना रखे हैं, जैसे कि भोजन, निद्रा और भोग के लिए विधि-नियम होते हैं। कहते हैं, पिल्लों की आंखें खुलने में दस दिन लगते हैं। उससे पहले उन्हें जल-समाधि दे देनी चाहिए। किसी भी तरह उनसे एक पिल्ला पाने के लिए मैं गिड़गिड़ाता—"चाचाजी, पानी में डालने के लिए रखे पिल्लों में से एक मुझे दे दो न" पत्थर-दिल नायकर चाचा साफ इंकार कर देते। तब हम लोगों का मन बड़ा दुखता। जी करता कि जैसे मेंढक को शिला पर रखकर पत्थर से कुचला जाता है, वही व्यवहार इनके साथ भी करें। पिल्लों को किसी अंधे कुएं में काई से ढके पानी में फेंककर वे पलट कर भी नहीं देखते, उल्टे पांव चल देते। कुएं में उतर कर कम से कम एक पिल्ला उठाना चाहें तब भी यह काम मुमकिन नहीं होता। कारण, यह है कि कुएं में सीढ़ियां नहीं बनी होतीं। लगता है, पिल्लों को फेंकने के लिए ही इस तरह के कुएं खोदे गए हैं। इस किस्म का कम से कम एक कुआं जरूर होगा, हर एक गांव में। पानी के अंदर गिरते ही पिल्ले डूबते नहीं। हाथ पांव मारकर तैरते और सरक कर थोड़ी दूर चलते।

आदमी के बच्चे को छोड़कर और किसी भी 'जीव-जंतु' को पानी में डालने पर वह तैर कर पार निकल जाता है। ये बेरहम लोग आंख खुलने से पहले पिल्लों को इसलिए पानी में डालते हैं कि ये तैर कर कहीं बच न जाएं। कुत्ते की एक नस्ल को संकरता दोष छू न जाए इसके लिए कोई भी जुल्म ढहा कर आदमी का बच्चा, कुत्ते की नस्ल की विशुद्धि तो रखता है, किंतु स्वयं अपनी नस्ल के विषय में वह कैसे बरताव करता है, इसके बारे में क्या कहा जाए।

श्रीमान मूक्क नायकर अब नहीं रहे। उनकी मौत भी बड़ी अजीब हुई थी। कहते हैं मरने से पहले वे अपनी बीबी को देखते हुए पागल कुत्ते की तरह रोये, कुत्ते की तरह 'भौं भौं' करते रहे। सुना कि पागल कुत्ते के काटने से वे भी पागल हो गए। जैसे सपेरे की मौत सांप-काटे से होती है, कुत्ता पालने वाले की मौत कुत्ते के कारण हो गई।

जब वे जिंदा थे, बड़े बड़े लोग, "मिट्टादार", "मिरासदार" और "जमींदार", अपनी अपनी बहुमूल्य कारें लेकर उनके घर आते थे, उनकी प्रतीक्षा में घंटों बैठे रहते थे। पिल्ले के लिए वे लोग सही मायने में "तपस्या" करते थे। उनसे मूक्क नायकर रुपए-पैसे नहीं लेते थे। उनके स्वाभिमान की संतुष्टि इसी ख्याल से हो जाती कि "गण-मान्य सज्जन" मेरी तलाश में मेरे यहां आ रहे हैं।

कन्नि वंश-जाति को संकरता से सुरक्षित रखने के लिए नायकर ने जीवन भर "संघर्ष" किया था, निर्ममता और निर्दयता के साथ।

अगर कन्नि-नस्ल के कुत्तों में बोलने की ताकत होती तो सब के सब मिलकर एक महा अधिवेशन का आयोजन करते और नायकर की स्मृति में उनकी प्रतिमा का अनाच्छादन करवाते। इस नस्ल की जालिम नायकर ने वाकई अहम खिदमत की है।

मेरे पिताजी को उम्दा नस्ल के कुत्ते उतने प्रिय नहीं थे, वे देशी कुत्तों को ही पसंद करते थे। कपास में भी वे देशी कपास ही उगाते थे।

नक्कलमुत्तमपट्टि—यह एक गांव का नाम है, चिप्पिपारै के पास है यह गांव। गाय-बैलों के लिए चारा और दाना खरीदने के लिए हम इस गांव में गए थे बैलगाड़ी लेकर। जिन सज्जन ने पशुओं का चारा बेचा था, वे हमारे रिश्तेदार थे। चूंकि हमारी गाड़ी भर गई थी, उनकी बैलगाड़ी में भी दाना-चारा लादा गया।

उनके यहां एक कुतिया ने पिल्ले दिए थे। उन पिल्लों में से एक मां के थन से दूध पी रहा था, देखने में हट्टा-कट्टा था। उसे अपने साथ ले जाने की इच्छा हुई। मैंने बड़ी ललक के साथ मांगा, "ताऊजी, यह पिल्ला ले लूं?" उन्होंने कहा, "ले जाओ बेटे, खुशी से ले जाओ।"

कुत्ते के मालिक—हमारे रिश्तेदार—जालीदार झोले में उसे डालकर खुद उठा लाए। चारा-दाना लदी हुई उनकी बैलगाड़ी भी साथ में थी। पिल्ले को ले जा रहे थे, इसलिए कुतिया भी साथ में आई।

चारा-दाना उतारने के बाद अपनी गाड़ी लेकर वे जाने लगे तभी वह "तमाशा" हुआ।

कुतिया की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे और क्या न करे, इधर रहे या उधर चले? अपने बच्चे के साथ रहे या मालिक के घर लौटे? वह कुछ तय नहीं कर पा रही थी, बड़ी दुविधा में थी। बैलगाड़ी के साथ थोड़ी दूर तक चलती फिर भागती भागती पिल्ले के पास लौट आती। थोड़ी देर तक बच्चे के साथ बैठी रहती। दूध पिलाकर, जीभ से चाटकर उसे सुलाने के बाद वह मालिक की गाड़ी के पीछे यों भाग जाती कि भूली हुई कोई बात याद आ गई हो।

गाड़ी तक पहुंच कर वह केवल थोड़ी दूर तक उसका साथ दे पाती। बच्चे की याद आते ही फिर से भागी आती। उसका हाल देखकर खुद हम धर्म संकट में पड़ गए। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पिल्ला थोड़ा बड़ा हो गया था, अगर वह मुंह में उठाने लायक होता तो कुतिया उसे दांतों में दबोचकर ले गई होती। अब ऐसा नहीं कर सकती थी।

पालने के लिए पिल्ला उठा लाने वालों को चाहिए कि वे कुतिया की आंख बचाकर ही पिल्ला लाएं। हम यहां चूक गए।

मान लीजिए कि कुतिया के पास दो पिल्ले थे और उनमें से एक गायब हो गया। तब भी वह तसल्ली कर लेती। अगर उसके एक ही पिल्ला हो ... उस जगह को सूंघते सूंघते बेबसी से पैर पटकती। जमीन को सूंघते हुए थोड़ी दूर तक भागती। फिर उसी जगह

लौट आती, बच्चे को न पाकर सकपका जाती। हम लोगों का मुंह ताकती और अपनी नजरों से पूछती, 'बोलो मेरा बच्चा कहां है?'

सदमा खाकर वह हल्की आवाज में कराहती। हमारी झूठी हंसी या सहानुभूति का मतलब उसकी समझ में नहीं आता। गली में भाग जाती और खड़ी खड़ी ऊंह ... करती रोती। फर्ज कीजिए उस पिल्ले का नाम "पप्पी" है।

तब वह मानो रोते रोते यही पुकारती—"अरे पप्पी। ... तू कहां चला गया रे ...?"

सच पूछा जाए तो कुत्तों को जिंदगी में आदमी के बच्चों की यह "दखलंदाजी" बिल्कुल जायज नहीं है, पर क्या किया जाए, आदमी के लिए यह सब करना जरूरी होता है। वह कुतिया, फिर हर तीसरे दिन सात किलोमीटर की दूरी "दौड़ चाल" से भरती हुई तय करके हमारे यहां आती और अपने बच्चे को दूध पिलाकर वापस चली जाती। ऐसा उसने नियम बांध रखा था कि जब सुबह दूसरी बारी का मुर्गा बांग देता होता और मां गोबर-सने पानी से आंगन बुहारने के लिए घर का दरवाजा खोलती, ठीक उसी वक्त वह कुतिया दरवाजे के बाहर हाजिर मिलती। जिनके यहां वह अपना पेट पालती है, नमकहलाली में रात भर उनके द्वार की रखवाली करती है और तड़के ही वह अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए भागी आती है।

फिर तीन दिन में एक बार का क्रम चला, उसके बाद हफ्ते में एक बार। जब कुतिया आ जाती, मां-बेटे को देखने के लिए हम सब इकट्ठे हो जाते, बिस्तर से उठते ही हाथ-मुंह धोए बिना ही। वे दोनों हमारे अस्तित्व को रंच-मात्र की मान्यता नहीं देते, बस अपने में रमे रहते। उनकी दुनिया ही अलग है। दूध पिलाने के बाद मां बच्चे को चाट कर साफ और चुस्त-दुरुस्त करती। फिर उसके साथ खेलने लगती। शिकार करना सिखाती, अपने दांतों से झूठमूठ उसे काटते हुए पुचकारती। हमारी दादी कहती थीं, वे दोनों बात कर रहे हैं। उनकी बातें जानने की मेरी बड़ी इच्छा होती थी। अगर उनकी बोली समझ लें तो हम भी उनके साथ बात कर सकते हैं न।

"दादीजी, आपको कुत्तों की बोली आती है?"

"वह तो बेटे, राजा लोगों को ही आती है", दादी ने बताया। "राजाओं को ही क्यों...?" मैंने पूछा।

बोली कि आदमी आदतन झूठ बोलता है इसलिए अपने राजकाज में जो भूलें हो जाएं राजा आदमी से पूछकर जान नहीं सकता। वेश बदल कर नगर-भ्रमण करते हुए राजा कुत्तों की बोली से सच्ची और खरी बातें समझता था। दादी जो भी बतातीं उसमें रोचकता होती।

अगले हफ्ते में कुतिया अपने बच्चे से मिलने नहीं आई। हमने सोच लिया, बस अब नहीं आएगी। पिल्ला भी अब थोड़ा बड़ा हो गया है न! अगले दिन रात को महसूस हुआ

कि कोई दरवाजे को पंजे से खुरच रहा है। दरवाजा खोलकर टार्च की रोशनी में देखा तो मां कुतिया खड़ी है। इतने में उसका बच्चा भी भीतर से आ गया मां की अगवानी के लिए। कभी भी वह इस वक्त नहीं आती, देर रात को। हमने कहा, "अच्छा ठीक है, मां को एकदम बच्चे की सुध आ गई, सो मिलने आई है।" आपस में यों कहते सुनते हम लोग फिर सोने चले गए।

हमें लेटे अभी थोड़ी देर हुई होगी कि कुतिया के उल्टी करने की आवाज आई। "छिः, यह क्या बला है?" यों सोचते हुए हम उसके पास चले गए। टार्च की रोशनी में देखा... ऐसा एक अजूबा हमने आज तक नहीं देखा है। अपने खाने के लिए गोश्त का टुकड़ा मिला था, उसे बच्चे को प्यार से खिलाने के लिए मां ने यह तरीका ढूंढ़ निकाला है।

पिल्ला बड़े प्रेम से गोश्त का वह टुकड़ा खा रहा है और मां वात्सल्य के साथ उसे निहार रही है, बीच बीच में प्यार से उसकी देह चाटती है ... देखकर मुझे रोमांच-सा हो गया।

हारी हुई बाजी

1

कामरेड पी. एस. से मेरा परिचय कु. अलगिरि सामि के माध्यम से हुआ। ऐसा शख्स मैंने आज तक नहीं देखा है। तभी 45 वर्ष पहले उनकी उम्र साठ साल के करीब होगी। यह भी हो सकता है, जीवन में तंगी के कारण वे अपनी उम्र से ज्यादा बूढ़े दिखे हों। गाल पिचके, चेहरा लंबा, अमेरिकी तर्ज पर कटे हुए बाल, दुबला बदन इत्यादि से युक्त पी.एस. कइयों के लिए एक अनबूझ पहेली थे।

उनके मुंह के अंदर ऊपरी जबड़े पर नाममात्र के लिए चार-पांच दांत लगे रहते। वे सिर्फ अकबरशाह सिगरेट पीते थे, उससे सस्ती कोई सिगरेट ही नहीं थी। उन दिनों रुपए में 192 सिगरेट मिल जाती थीं, यानी दमड़ी में एक सिगरेट।

उस जमाने के लोगों का सिरगेट पीने का ढंग ही निराला होता था। तर्जनी और मध्यमा के बीच में सिगरेट सीधी खड़ी करके, उन दोनों उंगलियों के नीचे अंगूठा लगाकर शंख बजाने की शैली में जब वे सिगरेट का धुंआ खींचते सू ... सू ... की आवाज सुनाई देती।

पी. एस के साथ मेरी पहली मुलाकात तब हुई जब वे इस "भंगिमा" से सिगरेट का कश ले रहे थे। उनकी बातचीत, चिंतन-शैली, दुनिया को देखने का ढंग—सब कुछ हमें अनोखा लग रहा था। वे ऐसे शख्स थे जिन्हें पता नहीं था कि डर किस चिड़िया का नाम है।

एक दिन शाम को मैं और अलगिरि सामी, पी.एस. के साथ उनके गांव के बाहर वाले जंगल में बने मंदिर के पास बैठे बातें कर रहे थे। शाम की झुटपुट के साथ ही सारी जगह एकदम सुनसान हो जाती। उस मंदिर का देवता भी बड़ा भयंकर था। लोगों का विश्वास है, जब देवता "शिकार खेलने" निकला हो उस वक्त कोई सामने दिख जाए तो उस आदमी की शामत आ जाएगी, वह खून की उल्टी करते हुए तड़प तड़पकर मर जाएगा।

बिना अपवाद के हरेक गांव में इस तरह के देवता अवश्य मिलेंगे। अमावस्या अथवा मंगल या शुक्रवार की आधी रात को दूर से घंटा-ध्वनि या पायलों की आवाज सुनकर दादी मां बताती थीं कि देवता "शिकार खेलने" निकला है। मेरी दादी की तुलना में नानी मां

इस तरह की बातों में ज्यादा दखल रखती थीं।

कहते हैं, अरण्य-मंदिरों के बाहर मृत्तिका-निर्मित जो रंग-बिरंगे घोड़े खड़े हैं, वे रात को असली घोड़े बन जाते हैं और देवता को लेकर आसमान में उड़ते हैं। सुबह होते ही वे फिर से मिट्टी के घोड़े बन जाते हैं।

जंगल के इस मंदिर में भी मिट्टी का एक घोड़ा था। अलगिरि सामी और पी.एस. बातों में व्यस्त थे। मैं उठकर उस मंदिर को देखने के लिए अंदर चला गया। हाथ में बड़ा भारी हंसिया धरे आंखें फाड़ फाड़कर अपलक नयनों से देवता हमें यूं घूर रहा था कि पुतलियां बिदक कर अभी बाहर टपक पड़ेंगी।

थोड़ी दूर पर देवता की पादुकाएं एक आसन पर रखी हुई थीं। उन पर बहुत सारी पैनी कीलें ठुकी हुई थीं। लगता था जैसे कीलें उन पर उग आई हों।

जिन लोगों को "भाव आ जाए" ऐसे "स्वामी-नाच" वालों के सामने ये पादुकाएं लाकर रखी जाती हैं। इन पर खड़े होकर वे "स्वामी-नाच" करते हैं। इतनी सारी कीलों में से एक भी उनके पैर में नहीं धंसती, न उनके पैर से जरा-सा खून निकलता। उस समय महिलाएं गले से "उलू-उलू"* की आवाज निकालती हैं। तब स्वामी-नाच वाले का भावावेश तीव्र हो जाता है। वह हाथ के संकेत से चाबुक मांगता है। चाबुक मिलने पर वह उससे पीठ और बदन पर जोर जोर से मार लेता है। लोगों के अपराध के लिए देवता यों अपने आपको दंडित कर लेता ह। प्रत्येक बार उसकी चाबुक से "कनफोड़" आवाज निकलती है।

जब मैं इस पादुकाओं और उन पर लगी कीलों की जांच-पड़ताल कर रहा था, उस समय अलगिरि सामी और पी.एस. वहां आ पहुंचे।

"कीलों वाली इस पादुका पर खड़े होकर "स्वामी-नाच" करते वक्त कील उनके तलुवे में कैसे नहीं धंसती?" हम दोनों ने पी.एस. से प्रश्न किया। फौरन उन्होंने पादुकाएं पहने हुए "स्वामी-नाच" करके दिखाया।

"बहुत पास-पास में लगी होने की वजह से कीलें पैर में नहीं धंसतीं, अगर एक ही कील हो तो जरूर धंस जाती" उन्होंने समझाया। वहां पर रखी चाबुक निकाल अपने बदन पर उसी तर्ज से लगाकर दिखाया जैसे "स्वामी-नाच" वाले करते हैं जोर जोर की आवाज के साथ।

"दर्द नहीं हो रहा?" मैंने पूछा।

"मार बदन पर लगे तब न?" यों कहते हुए पी.एस. हंसने लगे।

"उसके लिए खास ढंग से जरा-सा अभ्यास करने की जरूरत है", पी.एस. ने कहा। फिर उन्होंने एक-एक करके सारे गुण बता दिए कि हथेलियां झुलसे बिना अंगारों का घड़ा

---

* मंगल अवसरों पर उलू-ध्वनि की जाती है। इसे तमिल में 'कुरवै' कहते हैं।

कैसे हाथ में लिया जाता है, जलते अंगारे और घड़े के निचले तल के बीच में कौन-सा रासायनिक पदार्थ लगाया जाता है जिससे कि तल में गर्मी नहीं पहुंचे।

यह भी बताया कि "अग्नि-मुख पिशाच"* किसे कहते हैं। जब कोई प्राकृतिक रासायनिक पदार्थ धरती से ऊपर निकलता है, बाहरी हवा लगने की वजह से जल उठता है। दूर से देखने पर लगता है, खेतों पर अग्नि-मुख पिशाच नाच रहा है।

उस पूरे इलाके में पी.एस. की निडरता, चर्चा और आश्चर्य का विषय थी। लोग जानते थे कि भूत-प्रेतों से उन्हें कोई डर नहीं है। पी.एस. कहा करते थे मंत्र-तंत्र और जादू-टोना अनपढ़ लोगों को ठगने के लिए कुछ लोगों द्वारा की जाने वाली चालबाजी है। एक बार वे शर्त लगाने पर श्मशान में चले गए थे पर जब वहां पर कोई लाश जल रही थी और वहीं उसके पास रात बिताकर सुबह लौटे थे। शर्त उन्होंने जीत ली थी।

इस तरह की खूबियों वाले पी.एस. एक बार बाजी हार गए थे। खुल्लमखुल्ला उन्होंने अपनी हार मान भी ली थी। मैं और अलगिरि सामी कई बार उनसे पूछ चुके थे, इसका कारण क्या था? क्यों वे हार गए बाजी? वे हर बार टालते थे, "बताऊंगा, जरूर बताऊंगा, लेकिन अभी नहीं।" हम उस दिन उनको उस जगह पर इसलिए लेकर गए थे कि आज किसी न किसी तरह उनके मुंह से सच्चाई उगलवा लेंगे। हम तीनों जने सुविधापूर्वक एक स्थान पर बैठ गए। अंधेरा था, फिर भी तारों का धुंधलका था।

"सुनाऊं या न सुनाऊं?" की लंबी दुविधा के बाद पी.एस. उसे सुनाने लगे।

सिगरेट के धुएं का बलगम गले में जो अटका हुआ था, खंखार कर उसे थूकने के बाद उन्होंने शुरू किया।

भूमिका बांधने के तौर पर उन्होंने एक बात की याद दिलाई, "कुछ मसलों पर हमारा फर्ज बनता है कि हम गोपनीयता की भरसक रक्षा करें, इसलिए सीधे तौर पर सही सही विवरण देना उचित नहीं होगा। क्योंकि यह एक औरत से संबंधित कहानी है जिसमें उसका अंदरूनी राज छिपा है। मैं समझता हूं कि आप लोगों के लिए इतना इशारा काफी होगा। अब मैं घटना सुना रहा हूं।" इस भूमिका के साथ उन्होंने शुरू कर ही दिया।

"मेरे निकट के रिश्तेदारों का गांव है वह। जब भी जाऊं कम से कम एक महीना तो रुकना ही पड़ता, उससे पहले जाने ही नहीं देते। वे लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि मैं नास्तिक हूं, और अक्सर इसी बात को लेकर मेरा मजाक उड़ाते थे। इस विषय पर सवाल पर सवाल दागते, लेकिन इस चीज को समझाने के लिए मैं जो भी दलीलें पेश करता, उनकी ओर वे कान ही नहीं देते। यह बात इसी से जाहिर होती कि उनकी तरफ से फिर से वही सवाल आता। उनके कुछ सवाल दिलचस्प होते थे। एक बार किसी बुजुर्ग ने पूछा,

---

* गांवों में दूर दूर तक फैले खेतों के बीच में शोले दिखते हैं, जो कभी इधर तो कभी उधर नाचते हुए लगते हैं।

"छह महीने तक जोर जोर से बहने वाली ऊपरली हवा बाकी समय में कहां जाकर छिप जाती है, बताओ तो।"

शायद उन लोगों का ऐसा विचार है कि भगवान ने बोतल में कोई चीज बंद करने की तरह उपरली हवा को बांध रखा है, जब चाहें उसे वे छोड़ देते होंगे और फिर से उसे बोतल में बंद करके रखते होंगे। उस गांव के बाहर श्मशान के पास "चुडलै माडन"[1] का एक मंदिर है। वहां पर सदियों पुराना बरगद का एक पेड़ है। इन लोगों का पक्का विश्वास है कि दुनिया भर के भूत-प्रेत और "जटामुनि"[2] इसी पेड़ पर निवास करते हैं। दिन ढलने के बाद कोई भी आदमी उस दिशा में जाने की सोच भी नहीं सकता। सिर पर फूल लगाए कुमारी कन्याएं या गर्भवती महिलाएं उस ओर दिन के समय भी नहीं जातीं। इस अंधविश्वास को तोड़ने की बलवती इच्छा मेरे अंदर बराबर उठ रही थी।

इसके लिए मैं मौके की तलाश में ही था कि अचानक एक दिन वह मौका मिल गया।

2

पी.एस. की कहानी जारी थी।

"तालाब के किनारे वृक्ष की छांव पर नौजवान दोस्तों के साथ मैं बातें कर रहा था। उस समय मेरे साले ने मुझे चुनौती दी", "शुक्रवार को आधी रात की वेला में निशान के लिए हम जो चीज देंगे, उसे श्मशान में खड़े बरगद पर चढ़कर उसकी डाल पर बांध आना होगा। हो सकता है यह काम आपसे?"

मेरा उत्तर था : "क्यों नहीं? मैं कहता हूं, तुम निशान की जो चीज दोगे उसे पेड़ के ऊपर बांधूंगा ही, साथ ही साथ उस चुडलै माडन के हाथ से हंसिया और श्मशान से एक खोपड़ी भी लेकर आऊंगा। बोलो, क्या कहते हो?"

मेरा यह जवाब सुनकर साले साहब और दूसरे लोग स्तब्ध रह गए। उस समय मुझे देखने की उनकी निगाह बता रही थी कि वे मुझे इंसान नहीं, बल्कि कोई खूंखार जंगली जानवर समझ रहे हैं। शर्त की रकम का जिक्र हुआ तो उन्होंने कोई बड़ी रकम बताई। तब एक बुजुर्ग ने पूछा, "अबे, बाजी की रकम किससे लेने वाले हो? क्या उससे लोगे जो दुहरा होकर मुंह बाये, जमीन पर मरा पड़ा होगा?" उसी समय उन लोगों ने निश्चय कर लिया था कि मेरा दुर्मरण यानी अपमृत्यु अवश्यंभावी है।

मैंने ही फिर जोर देकर उन्हें इस बात के लिए राजी किया कि यदि शर्त लगाई जाती है, तो बाजी के तौर पर कोई रकम भी तय हो जानी चाहिए।

1.एक ग्रामीण देवता

2.भूतगण में एक

उन लोगों ने शायद महसूस किया होगा कि अगर घर में औरतों को इस बात का पता चल जाए तो वे रो-धो कर या अनुनय विनय करके येन-केन-प्रकारेण शर्त वाली इस बात को पूरा नहीं होने देंगी। इसलिए उन सबने अपने आपस में कसम खा ली कि "यहां पर उपस्थित लोगों को छोड़कर" दूसरे किसी को यह बात मालूम न होने पाए।

नियत दिन अर्थात शुक्रवार के लिए अभी दो दिन बाकी थे। दोपहर के भोजन के बाद मैं पढ़ने के लिए एक पुस्तक लेकर बरगद के पेड़ के नीचे पहुंचा। तपती दुपहरी में उस तरफ दूर दूर तक एक पंछी तक दिखाई नहीं दिया। वृक्ष की शीतल छाया में मैंने अपना गमछा बिछाया। गजब की हवा चल रही थी, आरामदेह .... लेटते ही सो गया।

जब नींद खुली तो देखा, दिन ढल रहा था। किताब उठाकर पढ़ने लगा, पढ़ने में मन नहीं लगा। दूर कहीं कोई स्त्री रो रही थी। वनानी से निर्गत उस करुणामय गीत की स्वर-लहरी ने हृदय को निचोड़ कर रख दिया। हाय, उस आवाज में कितना शोक भरा था।

नारी को सिर पर चढ़ाकर उसकी महिमा गाने में हम बेजोड़ हैं। उसी तरह नारी को पैरों तले कुचलने में भी हम दुनिया में बेजोड़ हैं।

गीत का शोक हवा में छन कर मेरी ही तरफ आ रहा था। इसलिए पढ़ना मुमकिन नहीं हो रहा था। किताब को बंद करके मैंने बरगद का अध्ययन करना शुरू कर दिया। बहुत पुराना पेड़ ... का ... फी उम्र हो गई है इसकी। इसलिए शाखाओं से निकली जड़ों को छड़ी की तरह जमीन पर टेकते हुए खड़ा है।

भांति-भांति के पंछी आकर उसकी डालों में रैन बसेरा करते हैं। निशान के रूप में पंछियों की वीठ डालों पर और जमीन पर सब कहीं बिखरी पड़ी थी।

अभी थोड़ी देर में वे सारे पंछी फिर से इस वृक्ष पर आ जाएंगे और इन डालों को आबाद करेंगे। हर डाल पर बैठकर अपने कलरव से सारे वातावरण को गुंजायमान कर देंगे। ऐसे आनंदमय वातावरण में किसी भूत-प्रेत की इसमें बसने की संभावना ही नहीं है। फिर भी लोगों का ऐसा विश्वास था।

श्मशान के पास जाकर मैंने चुडलै माडन के मंदिर का भी जायजा लिया। यही लगता था कि वहां कोई आता-जाता ही नहीं है। साल में केवल एक बार मंदिर के देवता की पूजा के दौरान वहां पर मानव के पैर पड़ते होंगे। हो सकता है, कभी-कभार इक्का-दुक्का कोई उधर आता भी हो।

चौकोर छत के नीचे बसा था मुख्य मंदिर। छत बाद में ही डली होगी। गारे-चूने से चुडलै माडन की मूर्ति निर्मित थी, नीचे का फर्श सीमेंट का था। मूर्ति एकदम सुगठित लगी। सुन्दर चेहरा, गोल चमकती आंखें, अंग अंग में स्फूर्ति कुल मिलाकर उसके एक एक अवयव से क्रोध टपक रहा है। क्रोध-मुद्रा में देवता खड़ा है, हाथ में तीक्ष्ण हथियार भी हैं, तब भी दुनिया में निर्भयता के साथ अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं। अचरज की बात है न?

देवता-मूर्ति के एकदम पीछे वाली जगह साफ-सुथरी लगी, धूल या कूड़ा-कर्कट कुछ भी नहीं था। वहां थोड़ी देर बैठने का मन हुआ। मूर्ति के पीछे बैठकर मैंने महसूस किया, मैं एकदम दुनिया की नजरों से छिप गया हूं। चारों ओर उगी घास और झाड़-झंखाड़ की वजह से कोई भी बता नहीं सकता मंदिर के अंदर कोई आदमी बैठा है। बढ़िया जगह है यह ....

यहां पर रुक कर पी.एस. ने अपनी अंटी टटोली, अकबरशाह सिगरेट निकाल कर सुलगाई और शंख बजाने के तर्ज पर कश खींचने लगे। तब सिगरेट के अग्र भाग में आग की चिनगारियां तेज हुईं और उस रोशनी में पी.एस. का चेहरा साफ नजर आया। कहानी का खास अंश शायद अभी आगे आने वाला है। उन्होंने शुरू में बताया था कि यह "एक औरत का अंदरूनी राज" है। तब तो दिलचस्प होना चाहिए, लेकिन वह वाकया अभी तक नहीं आया।

पी.एस. ने एक गांव का नाम लेकर पूछा, "दोस्तो, ... तुम लोग उस गांव में गए हो कभी?" हम दोनों ने नकारात्मक उत्तर दिया।

"ठीक है, कोई बात नहीं। रहने दो। फिर कभी उसकी चर्चा होगी। अब हम इस कहानी को देखेंगे "पी.एस. फिर शुरू हुए।"

"उस जगह से वापस आने से पहले, चूंकि मुझे शुक्रवार की आधी रात को फिर वहां से लौटना होगा, इसलिए मैं उस जगह के भूगोल से भली भांति परिचित होना चाहता था। सारी चीजें देख-समझ कर रास्ते का खाका मन में बिठा लिया। अब 'आंख मूंदकर' भी यहां आ सकते हैं। वे निशान के लिए जो चीज देंगे उसे कौन-सी डाल पर बांधना है, यह भी मन में तय कर लिया। मैं अपनी तरफ से आश्वस्त हो गया। मन में तब तक यही सोचा था कि वे लोग ही हारने वाले हैं जब तक कि मैंने 'उसे' नहीं देखा था ...." पी. एस. ने यहां थोड़ा विराम लिया।

"किसे?" उत्सुकता से हमने पूछा।

वे कहानी आगे सुनाने लगे :

"वह शुक्रवार भी आ गया।"

"जैसे बात तय हुई थी, क्या आप तैयार हैं? उन लोगों ने पूछा।"

"हां, तैयार हूं" मैंने जवाब दिया।

निर्धारित स्थान पर हम सब लोग इकट्ठे हो गए, वह मेरी ससुराल वालों के खलिहान पर बना झोंपड़ा था। यह एकदम गांव के पिछवाड़े की तरफ था। वहां रखवाली करने के लिए एक आदमी तैनात रहता था। इत्तफाक से वह उस दिन नहीं आया था, सो हमें और भी सहूलियत हो गई।

साले ने आकाश की ओर देखा। तारों की गणना करके उसने कहा "आधी रात का

वक्त हो रहा है। जीजाजी प्रस्थान कर सकते हैं।" यह उस जमाने की बात है जब लोगों की कलाई में न घड़ी होती थी न हाथ में टार्च। मेरे हाथ में उन लोगों ने निशान की कोई वस्तु दी। उसे छोड़कर मेरे हाथ में कुछ नहीं था।

वह निशान क्या था, एक पुराना-सा चिथड़ा था। उन्होंने सोच-समझ कर इसे गुप्त रखा था। पहले से ही इस चीज का अंदाजा मुझे हो जाए तो मैं ही ऐसा निशान तैयार करके पहले ही पेड़ पर बांध देता और वहां गए बिना ही उन लोगों को सुबह बता सकता था कि आधी रात को ही मैंने उसे पेड़ पर बांधा था। इसलिए आखिरी मिनट तक निशान की चीज का पता नहीं होने दिया। वह चिथड़ा हाथ में लेकर जब मैं चलने लगा साले ने मुझ पर रहम करके इतनी रियायत की, "जीजाजी, यह जरूरी नहीं है आप पेड़ पर चढ़कर इसे डाल पर ही बांधें। पेड़ से लटकती हुई किसी जड़ से बांध आएं तब भी हम मान जाएंगे।"

"चलो हटो, कायर लोगों?" यों उन्हें ताने देकर मैं चल दिया।

थोड़ी दूर तक मैं पीछे मुड़कर देखे बिना आगे चला। इस तरह बहाना करने के बाद मैं चुपके से लौट पड़ा और झोपड़े के पीछे आकर खड़ा हो गया। मेरे मन में यह जिज्ञासा थी कि उनकी आपस में मेरे बारे में क्या बात हो रही है।

"क्या वह आदमी लौटेगा?" कोई पूछ रहा था।

3

श्मशान के पास वाले बरगद की ओर मुझे भेजने के बाद उनकी आपस में खुसर-फुसर होना स्वाभाविक था और उसे जानने की मेरी इच्छा भी स्वाभाविक थी।

"क्या वह आदमी लौटेगा?" किसी के इस प्रश्न के उत्तर में—

"न मरुदप्पन वैद्य दवाई देगा, न लाश जी उठेगी।" किसी ने कहा। इस पर दबी आवाज़ में सबकी हंसी की लहरें।

चोक्कु कोनार जरा तीखे स्वर में उन्हें लताड़ रहे हैं :

"अरे, तुम लोगों को हंसने की सूझ रही है, इधर मेरे पेट के अंदर खलबली मची हुई है। हंसी मजाक में जो बात शुरू हुई है, इसका अंजाम कहीं विधि का क्रूर मजाक न बन जाए।" कोनार की इस आशंका को सुनकर सभी आवाजें एक साथ मूक हो गईं। उनके मन की आंखों के सामने ऐसा एक दृश्य आ गया होगा, बड़े सबेरे श्मशान के बरगद के नीचे खून की उल्टियां करने के बाद मैं मरा पड़ा हूं। मेरी पीठ पर पैशाचिक पंजे का मोटा निशान है, पांचों उंगलियों का निशान ! मेरी पत्नी और दूसरे संबंधी चिल्ला चिल्ला कर रो रहे हैं।

"ठीक है, इन लोगों को यहां पर डर से कांपते रहने दो। तब तक मैं इस कपड़े को बरगद की डाल पर बांध आऊंगा और इनकी खिल्ली उड़ाऊंगा।" यह सोचकर मैं वहां से चल पड़ा।

वह जगह गांव से एक मील की दूरी पर होगी। ऊपर देखा था तो खेत में फूटे कपास के फलों की तरह अनगणित तारे आकाश पर बिछे थे। इसके अलावा कहीं कोई रोशनी नहीं थी। आंखें अंधेरे के लिए अभ्यस्त हो जाएं, इस विचार से मैं वहीं पर एक छोर पर बैठ गया।

अंधेरे में मैं केवल सांपों से डरता हूं। मुझे और कोई भय नहीं लग रहा था। नहर पर उतरने के बाद ऊपर चढ़ते हुए मुझे लगा कि मेरे आगे कोई काली-सी शक्ल खड़ी दिखाई दी। जरा रुककर यह जानने की कोशिश की, क्या वह शक्ल खड़ी है, या आगे बढ़ रही है अथवा मेरी तरफ आ रही है ...?

उस "कालिमा" और मेरे बीच में लगभग चालीस हाथ का फासला रहा होगा। मैं उसी को देखते हुए जरा रुक गया। लगा कि वह आगे ही बढ़ रही है। बहुत धीमे से उसका पीछा करने लगा। तब तक आंखें अंधेरे की आदी हो गई थीं। मुझे निश्चित हो गया कि वह कोई आदमी ही है। उसकी चाल की दिशा देखने पर लगा, वह भी श्मशान मंदिर के रास्ते पर ही बढ़ रहा है। इस वक्त उसका वहां पर कौन-सा काम हो सकता है?

मैंने सुन रखा है कि "कालवीरन" और "राप्पाडी" जैसे तांत्रिक लोग इसी वेला में साधना के लिए श्मशान मंदिर जाते हैं।

मेरी नासा-ग्रंथियों ने अचानक फूलों की सुगंध-सा अनुभव किया। कहते हैं, ऐसी कोई सुगंध आए तो वहां पर काले नाग आ सकते हैं। मैंने जमीन की तरफ गौर से देखा। ऐसा कुछ दिखाई नहीं दिया। एक एक कदम बड़ी सावधानी से रखता चला गया।

सुना है, तांत्रिक लोग पहली प्रसूति के शिशु की खोपड़ी ढूंढ़ते हुए श्मशान आया करते हैं। पिछले दिन एक ऐसा शिशु वहां दफनाया भी गया था। हो सकता है यह तांत्रिक उसी के लिए वहां जा रहा हो। देखें क्या होता है ... यों सोचते हुए मैंने पीछा किया।

सांपों के ख्याल से मेरी चाल में जरा हिचक-सी थी। लेकिन उसकी चाल में न कोई हिचक थी न धीमापन। लग रहा था कि उसके पांव इस रास्ते के लिए खूब अभ्यस्त हैं। वह जल्दी जल्दी बढ़ रहा था।

मेरा यह अंदाज था कि कम से कम श्मशान तक जाने के बाद वह एक बार मुड़ेगा, चौकन्ना होकर चारों ओर देखेगा कहीं कोई आ तो नहीं रहा है। इस ख्याल से मैं जरा तेज चलकर बरगद के पेड़ से लटकती घनी जड़ों में छिप गया।

मेरे अनुमान के खिलाफ वह श्मशान की ओर न जाकर मंदिर की ओर बढ़ता गया। अभी चल ही रहा था कि अचानक कहीं अदृश्य हो गया।

पल भर के लिए मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ गया। संभव है छुटपन में मन के अंदर घुसी हुई भूत-प्रेतों की कहानियां ... या उनका अवशेष मेरे अंतर्मन में कहीं रह गया हो। फिर भी मेरा मन कह रहा था ... वह आदमी ऐसे गायब नहीं हो सकता, मंदिर के पीछे सीमेंट के उस फर्श पर बैठा होगा।

अब मुझे क्या करना है—जिस काम के लिए आया हूं उसे पूरा करके—कपड़े को किसी जड़ के साथ बांध कर लौट जाऊं या यह देखने के लिए रुकूं कि वह आदमी जो मंदिर में चला गया है, क्या कर रहा है, यही सोचते हुए मैं पेड़ के नीचे खड़ा था, तभी थोड़ी दूर पर उलू-ध्वनि सुनाई दी।

"स्वामी-नाच" वाली स्त्रियों को जब "भाव आ जाता है" इस तरह की उलू-ध्वनि उनके गले से निकलती है। थोड़ी देर में वह उलू-ध्वनि पास में सुनाई दी। वृक्ष के साथ सटकर मैं भी वृक्ष बन गया था।

वह मेरे पास से होकर मुझे पार करते हुए आगे बढ़ी, फिर भी उसने मुझे नहीं देखा। मैंने गौर से देखा। हां, वही स्त्री है।

मायम्मा नामक उस औरत के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। उस गांव में वैभव और प्रताप के साथ रहने वाले खानदानों में से एक परिवार की है वह। सुना है, यह उनके कुल-देवता का मंदिर है।

बूढ़े मामा से उसकी शादी* हुई थी जब वह बालिका थी। वयस्क होने से पहले ही विधवा हो गई थी।

जब वह गांव के कुएं से पानी भर रही थी, लोगों ने संकेत से उसे दिखाकर बताया था कि वही मायम्मा है। मायम्मा को "अपूर्व सुंदरी" तो नहीं कह सकते, लेकिन देखने में वह अच्छी थी। किसी मर्द की ओर आंख उठाकर नहीं देखती थी, किसी स्त्री के साथ भी हंस कर बात नहीं करती थी। लेकिन उसकी आंखों को देखने पर लगता था कि उनमें एक उल्लास की छाया है, भीतर सो रहे उत्साह की झलक है। पता नहीं सदा दैवी ध्यान में मग्न रहने के कारण ऐसी दिख रही हो .... कोई कह नहीं सकता कि कब उसके "भाव आएगा", निद्रा में, भोजन के समय या कुएं में पानी भरते वक्त? वह खुद नहीं जानती।

एक बार मेरे सामने यह घटना हुई। उसकी कमर पर पानी भरा घड़ा रखा था। उलू-ध्वनि अचानक सुनाई पड़ी। बगल से कोई औरत भागी हुई आई और उसके पास से घड़ा ले लिया। एक और महिला ने उसे संभाल लिया ताकि वह गिर न जाए। "भाव" आ गया था मायम्मा को। ऐसा एक "भाव" मैंने पहले कभी नहीं देखा था। ऐसी कोई शक्ति उसके अंदर आवेशित हो गई कि दुनिया को तहस-नहस कर दे, जो भी सामने आ जाए उसे चूर चूर कर दे। उसे शांत करने के लिए आसपास जुटी औरतों ने उसके सिर पर दर्जनों घड़े

---

* तमिलनाडु में मामा से या मामा के लड़के से विवाह की प्रथा है

पानी उंडेल दिए। वह अपने बालों को खोलकर नाचती जा रही थी। ऐसा नाच मैं पहली बार देख रहा था। हट्टी-कट्टी महिलाएं उसे संभालने की कोशिश में हैं और वह है उन्हें धक्का देती जाती है। गजब का धक्का ! मोटी तगड़ी औरतें टिक नहीं पातीं। दूर जाकर गिरती हैं। इस छोटे से बदन में न जाने इतनी शक्ति कहां से आ गई।

मायम्मा की "भाव-दशा" की बात सुनकर घर के लोग भागे हुए आए—औरतें, मर्द सभी लोग। उसे अपने हाथों में उठाकर ले गए वे लोग। घर में भी उसे बिठाए रखना उनके लिए बड़ा दुष्कर हो गया था। वे मायम्मा को काबू में नहीं कर पाए। उसके साथ कोई कितनी दूर भागेगा? कितनी देर उसे हाथ से दबाए रखेगा .... घर वालों और गांव के लोगों को झख मारकर उसे अपनी मर्जी पर छोड़ना पड़ा।

उससे किसी को किसी भी तरह की तकलीफ नहीं हुई। भाव-दशा समाप्त होने तक वह नाचती-कूदती रही, और अपने आप शांत हो गई। फिर उस दिन उसने घर में दुगुना काम किया, अपने परिवार वालों की सेवा की। उसके बाद मायम्मा के मौन, विनय और सेवा भावना ने सबका हृदय जीत लिया। घर वाले भी उसे एक तरह की आदर सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

उसके बाद जब भी मायम्मा पर "भाव-दशा" का आवेश होता उसे कोई नहीं छूता। उलू-ध्वनि करते हुए वह मंदिर तक भागती। वहीं थोड़ी देर बैठकर शांत हो जाती और घर लौटती। इस तरह का "भाव" उस पर कब आएगा, किस जगह आएगा कोई नहीं कह सकता। लोगों ने तय कर लिया चूंकि उस पर देवता का अनग्रह है और उसे दैवी सहायता प्राप्त है इसलिए किसी मानव की सहायता की जरूरत नहीं।

उस घुप्प अंधेरे में मायम्मा मुझे पार करके बड़ी तेजी से गई, कहना चाहिए भागती गई। वह सीधे मंदिर के पीछे चली गई। वहां जाकर क्या कर रही है वह? अंधेरे में मैं कुछ नहीं देख पाया। मेरे मन ने कहा, "दाल में कुछ काला है, गौर से देखो।" चूंकि मेरे आकलन के अनुसार पहले ही वहां पर एक आदमी मौजूद था। इसलिए सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अब वहां पर क्या चल रहा होगा। फिर भी यह देखना जरूरी था कि अपना अंदाजा सही था कि नहीं। इस काम में और विलंब करने का सब्र नहीं था। जो भी हो देखा जाएगा, मैं साहस करके चल पड़ा। बहुत धीमे से एक एक कदम बढ़ाता आगे गया ताकि पैरों की आहट न सुनाई दे और चौकन्ना होकर गौर से देखा। घुप्प अंधेरे में आंखों को कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मैंने तब अपनी श्रवण-शक्ति से काम लिया। फावड़े से जमीन खोदते समय निकलती जोर जोर की सांसों की आवाज जैसी श्वास-उच्छ्वास ध्वनि सुनाई दी। जैसे द्वंद्व-युद्ध में दो जानवर एक दूसरे से परस्पर गुत्थमगुत्था होकर लुढ़क रहे हों और फिर आकाश में कोई पतंग हवा के रुख पर, झोंके के खींचने के मुताबिक जहां तहां भटकने के बाद धीमे से जमीन को स्पर्श कर रही हो ...

अब वहां ठहरना मुनासिब न मानकर मैं जिस ढंग से गया था उसी तरह पेड़ तले लौट आया। मेरा बदन भी काफी गरम हो गया था उस वक्त। यों कहते हुए पी.एस. जोर से हंसे।

अब वाकई मुझे पेड़ के ऊपर चढ़ना ही होगा। अब उनके निकलने के बाद ही मैं यहां से जा पाऊंगा। गौर से देखना चाहिए कि वह मर्द कौन था।

इंतजार करने के जैसा मुश्किल काम और कोई नहीं होता, समय था कि सरक नहीं रहा था। वे भी बाहर आने का नाम नहीं ले रहे थे।

हल्की-सी एक प्रकाश रेखा पूरब में दिखाई दी। चांद अपना आधा अंग खोकर आकाश में प्रकट हुआ। दक्षिणी हवा मंद मंद चलने लगी। नींद पलकों को छू छूकर भाग रही थी।

पेड़ पर चढ़ा। थोड़ी-सी हिचक हुई। पंछी आराम से सो रहे हैं। पेड़ पर कौए होते तो कांव-कांव करके उन्हें मेरी उपस्थिति जता देते। कौआ दूसरे पंछियों की तरह नहीं है, कपटी और दगाबाज है। पंछियों की तरह मानव-जाति में भी कौए होते हैं।

यह वृक्ष बहुत पुराना है। इसके कोटरों में ऊदबिलाव व गंधमार्जार रहते होंगे। जिस पेड़ में ऊदबिलाव बसे होते हैं कौए वहां रैनबसेरा नहीं करते।

चांदनी फैल रही थी। अब सोचने या अंदाज लगाने का कोई मतलब नहीं है। चढ़कर सुविधाजनक एक ऐसी शाख पर बैठ गया जहां से मैं उनका सुविधापूर्वक निरीक्षण कर सकूं।

पहले मायम्मा आई अपने बालों को सहेजते-संवारते हुए। चांद की ओर उसने गौर से देखा। लग रहा था, उसका चेहरा हासपूर्ण है। चाल में था एक उल्लास। गांव की तरफ तेजी से कदम बढ़ाती चली जा रही थी।

थोड़ी देर बाद वह निकला। जाना-पहचाना ही था। उस जोड़े पर, खास करके मायम्मा पर मेरा आदर-भाव जगा। उसी क्षण ! वह मामूली-सी औरत कितना ऊंचा उठ गई। पूरे समाज को उसने बड़ी आसानी से किस तरह जीत कर दिखा दिया।

अपने प्यार को—प्यार की जिंदगी को—साधने और बनाए रखने के लिए उन दोनों ने जो रास्ता अख्तियार कर रखा था, इस पर सोचते सोचते मैं हैरान होने लगा। तथाकथित ऊंची जाति में जन्मी एक औरत जातियों में सबसे निम्न जाति के एक मर्द के साथ जिंदगी में कैसे एकीभूत हो गई। इस पर मुझे एकसाथ विस्मय और आनंद हो रहा था।

जब भूत-प्रेत गण ऐसे प्रेमी-जनों की इतनी बड़ी सहायता करते हैं, मैं अगर उन्हें नकार दूं, लोगों के सामने ऐलान कर दूं कि भूत-प्रेत, देवता आदि कुछ नहीं होता सब मिथ्या है तो इसके बराबर कोई दूसरा पागलपन होगा?

पेड़ से उतरकर, ग्राम-समाज के मठ में जहां कतारों में राहगीर आकर सोते हैं, मैं भी उनके बीच में आकर लेट गया। लेटते ही शरीर की सुध खोकर सो गया।

कब का सबेरा हो चुका था। इससे बेखबर सोते हुए मुझे किसी ने झकझोर कर जगाया। आंख खोल कर देखता हूं सामने साले और दूसरे मित्र खड़े हैं।

अपनी अंटी से वह चिथड़ा निकालकर मैंने उनके सामने फेंक दिया। "क्या हुआ, क्या हुआ?" वे लोग पूछने लगे। आंखें अभी उनींदी थीं। ऊबन और निराशा के साथ मेरे ओठों से "प्...त्सो" निकला। तब उनके चेहरे देखने लायक थे, फूल कर कुप्पे हो रहे थे सब, जीत गए वे लोग, मैं हार गया। पूछने लगे, "अब तो मानते हो न, भूत-प्रेत होते हैं।" मेरे मुंह से जब, "मानता हूं" निकला वे लोग खुशी से नाच उठे। इस तरह मैंने उनसे बाजी हारी, पी.एस. ने कहा।

जब कभी मौका आता है किसी को चुप कराने के लिए वे लोग यों कहते, जो पी. एस. भूत-प्रेतों को एकदम नकारते थे, उन्हें मिथ्या कहते थे, उन्हीं को आखिर मानना पड़ा। "हां भूत-प्रेत होते हैं, मैंने अपनी आंखों से देखा।" ऐसे में तुम कौन बड़े तीसमारखां बनते हो? इस तरह अगले आदमी को वे निरूत्तर करते हैं। उन भूत-प्रेतों, जटामुनियों और पिशाचों का अस्तित्व अब भी आवश्यक है।

हैवानियत

"आदम का बच्चा" जब हद से ज्यादा खुश हो जाता है, अपनी खुशी जाहिर करने का उसका तरीका भी अजीब होता है। इस विषय में सभी एक समान नहीं होते। मसलन, मेरे एक दोस्त हैं, जब उन्हें खुशी होती है तो पास में बैठे हमें वे जोर से चिउंटी काटते हैं। उस समय हम जान लेते हैं कि वे खुशी के आलम में हैं।

एक और मित्र हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो हमारे सिर पर "ठन" से मुक्का मारते हैं। चूंकि पहले ही जान लेना मुश्किल होता है कि कब उन्हें खुशी आएगी, इसलिए जब भी इनके पास जाएं एहतियात के तौर पर हेलमेट पहने रहना ही उचित है।

मेरे एक अन्य मित्र हैं, उनके घर में किसी को खुशी आ जाए या केवल मन की तुष्टि ही आ जाए—उसे प्रकट करने के लिए उन लोगों ने एक युक्ति बना रखी है। उनके यहां "मादु" नाम से एक लड़का रोज ही आता है। मेरा पूरा यकीन है कि भगवान ने मादु को इसी परिवार के लिए गढ़कर धरती पर भेजा है।

उस घर में कुल नौ बच्चे हैं—चार लड़के और पांच लड़कियां।

उन चार लड़कों में से एक के साथ मादु स्कूल में पढ़ता है। वह उसी गली में रहता है, उन्हीं के साथ उनकी ही गाड़ी में स्कूल जाता है। स्कूल के कार्य दिनों के अलावा छुट्टी वाले दिनों में भी आप मादु को उसी घर में देख सकते हैं। एक दिन की बात है। ... उस दिन मैं जरा खाली था। समय बिताने के लिए उन बच्चों के बाप के साथ बैठकर गप-शप कर रहा था। तब अचानक किसी का दीन रोदन सुनाई दिया। कोई चिल्ला रहा था, "बचाओ बचाओ।"

हां, किसी की जान निकली जा रही है, तभी वह ''त्राहि-त्राहि'' मचा रहा है।

मैंने देखा, उस गृहस्वामी पर मेरी बेचैनी या घबराहट का रत्ती भर भी असर नहीं पड़ रहा था। वे बड़े इत्मीनान से बैठे दिखाई दिए। वह दयनीय पुकार लगातार सुनाई दे रही थी, बल्कि और अधिक तीव्रता के साथ। मैंने भय-मिश्रित स्वर में पूछा, "भाई साहब, यह क्या हो रहा है?" तब तक बच्चों की मां भी वहां पर आ गई। बच्चों के बाप ने कहा, "अरे, घबराने की कोई बात नहीं, यों ही ... ।" उस महिला के मुंह पर खेल रही मुस्कराहट इस बात का सबूत दे रही थी कि पतिदेव की बात एकदम सच है।

लेकिन मुझसे वहां पर शांति से बैठा नहीं जा रहा था। उठकर इस इरादे के साथ

अंदर गया कि देखूं, क्या हो रहा है? अंदर बच्चों के पढ़ने के कमरे में मादु फर्श पर औंधा लेटा हुआ है। एक लड़का उसकी बाजुओं को पीछे से मोड़कर दबोचे हुए है। दूसरा लड़का उसकी पीठ पर चढ़ा बैठा है। वह लड़का मादु की जांघ पर जोर से चिउंटी काट रहा है। तीसरा लड़का मादु की टांगों को पकड़कर कार के स्टियरिंग की तरह घुमा रहा है, और कह रहा है "औंधा क्यों लेटा है? सीधे क्यों नहीं लेटता?" उन सब में आखिरी लड़का—घर का कनिष्ठ बालक—मजे से ताली बजाता हुआ उनकी परिक्रमा कर रहा है। मादु बेचारे का बुरा हाल है, लगता है आंख की पुतलियां अभी बिदक कर बाहर निकलेंगी। निश्चय ही उसे दिन में तारे नजर आ रहे हैं। इस "हास्य-नाटक" को देखकर लड़कों की बहनें खुशी से नाच रही हैं, हंस हंस कर उनके पेट में बल पड़ रहे हैं। जब मैं मौके पर पहुंच गया लड़कियों ने अपनी किलकारी बंद की और वे वहां से हटीं।

मुझे अंदर जाते देखकर गृहस्वामी भी वहां पहुंच गए। औंधा लेटा होने पर भी मादु ने उन्हें देख लिया। वह गिड़गिड़ाने लगा, "चाचाजी, चाचाजी, देखिए न ...!" मैंने सोचा कि पिताजी को देखकर बच्चे अपना यह "हास्य-नृत्य" बंद कर देंगे। मादु की वेदनापूर्ण पुकार ने उनके चेहरे पर केवल एक मुस्कुराहट खिला दी। उनके पुत्र-रत्न मादु का वह हाल कर रहे थे जैसे कोई धोबी कपड़े को पत्थर पर पटकता है, फिर उसे निचोड़ता है।

पति-पत्नी इस चीख-पुकार को, मादु के चीत्कार को, दैवी संगीत समझकर उसका आस्वादन कर रहे थे। उनका हाव-भाव और व्यवहार कुछ ऐसा था कि यह सब रोजमर्रा की आम बात हो, मामूली-सी बात जिस पर गौर करने की कोई जरूरत नहीं हो। भोजन का समय हो गया। मेरे लिए भी पत्तल बिछाई गई। मेरे मित्र के चारों सपूत मादु को घसीट कर ले आए और उसे भी एक पत्तल पर बिठा दिया।

मादु ने बचने की कोशिश की, मैंने अभी खाना खाया है, भूख नहीं है। पर वहां कौन सुनता था? कोई चारा नहीं था।

"चाचीजी, दो इडली रखिए, बस काफी है" मादु ने कहा। "क्या? क्या कह रहा है दो इडली ... दो इडली ...?" बच्चों ने उसकी पीठ पर अपनी हथेली धर उसके ऊपर झूठमूठ की मार लगाई। धम्म ... धम्म की आवाज आ रही थी। "चार इडलियां रखो इसकी पत्तल पर", एक लड़का बोला। मां ने चार इडलियां रख दीं। अगल-बगल की पत्तलों से एक एक इडली मादु की पत्तल पर आ गिरी। सहमा-सा मादु असहाय दृष्टि से सबके चेहरों को देखने लगा। उसे चौंकाना ही तो उन लोगों का मकसद था। जब जब उनका यह लक्ष्य सिद्ध होता, तो वे जोर से हंसते। उसी तरह अब भी हंसे।

सबने इडलियों से मादु की नाक में दम कर दिया। "खा नहीं पाऊंगा, चाचाजी, बचाओ बचाओ।" मादु गिड़गिड़ा रहा था। उसे अपनी पत्तल बंद करने से रोकते हुए सबने और दो इडलियां उस पर डाल दीं और उसे जबर्दस्त चेतावनी दी, "ये इडलियां भी खानी पड़ेंगी,

नहीं तो तुम्हें यहीं मार डालेंगे और गड्ढा खोदकर दफना देंगे।" शायद उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि ये लोग ऐसा कर भी सकते हैं। सो बेचारे ने बड़ी मुश्किल से इडलियों को पेट में ठूंस लिया।

भोजन के बाद दूसरा खेल शुरू हो गया। मादु, जो लुंगी पहने था, वह जरा-सा फट गई थी। बीचों-बीच एक छेद था, पेंसिल घुसेड़ने लायक छेद। एक ने उस छेद में अपनी उंगली घुसेड़ते हुए मादु को धमकी दी, देखो, "अब मैं इसे फाड़ने वाला हूं।" मादु तड़फड़ाते हुए गिड़गिड़ाने लगा, "हाय, मेरी लुंगी ! मत फाड़ो, मत फाड़ो। जो भी कहोगे तुम लोग, सब मानूंगा। लुंगी मत फाड़ो।" अपनी उंगली निकाले बिना ही वह लड़का बोला, "ठीक है, उठक-बैठक करो।"

दो बार उठक-बैठक करने के बाद मादु ने पूछा, "और कितनी लगाऊं?"

"तीस" उस लड़के ने एक संख्या बताई जो तब उसके मुंह में आई थी। मादु ने मान लिया।

वह उठक-बैठक करने लगा। शुरू करते हुए उसने अनुरोध किया, "पहले वाली दो को गिनती में शामिल कर लेना।"

"मैं कहता हूं, यह काम नहीं चलेगा। पहले जो लगाई थीं, उनमें एक भगवान के लिए, दूसरी शास्ता* के लिए। अब जो लगाओ हमारे लिए।"

मादु क्या प्रतिवाद करे? जो ये लोग कहें वही मानना होगा। बेचारा चुपचाप उठक-बैठक करने लगा। लड़कों में से एक ने गिनना शुरू किया, "एक .... पहला भैया, दो .... दूसरा भैया, तीन .... तीसरा भैया ...." वह इस तरह गिनता गया। इस गिनती के मुताबिक मादु द्वारा की जाने वाली उठक-बैठकों की संख्या साठ होगी। फिर भी क्या किया जाए? उठक-बैठक की गिनती ऐसे ही करते हैं लोग। ओखली में सिर दे दिया, अब मूसलों से डरने से क्या फायदा?

मादु बड़ी कठिनाई से साठ उठक-बैठकें पूरी कर पाया। उसकी सांसें फूल रही थीं। खाई हुई इडलियां अब तक करीब करीब हजम हो गई होंगी।

आश्वस्त होकर मादु एक लंबी सांस भी ले नहीं पाया, तब तक एक लड़का पहले वाले का छुट-भैया—उसी छेद में अपनी उंगली घुसेड़ते हुए बोला, "मेरा भैया ऐसा कौन-सा खास है जिसके लिए तुमने अब तक 'उठक-बैठक' अदा की? अब मेरे लिए भी अदा करो। हो जाओ शुरू।"

"तुम लोग कुल चार हो, हरेक के लिए साठ के हिसाब से 240 उठक-बैठक लगाऊं तो मेरा क्या हाल होगा?" कुछ अनुनय-विनय से, कुछ हंसी-मुस्कान के साथ अनुरोध किया मादु ने। यह अनुरोध उनके दिल को छू नहीं सका।

---

* एक देवता का नाम, जिन्हें धर्मशास्ता, अय्यनार या हरिहर-सुत कहा जाता है।

"अब करोगे या नहीं करोगे?" उसने पूछा। मादु दीन स्वर में बोला, "अब नहीं हो सकता हाय राम ... जाने दो। मुझे घर जाना है। ठीक नहीं लग रही है तबीयत।" वह जाने लगा। तब उसकी लुंगी "सर्र...र्र्र..." फट गई। छेद काफी बड़ा हो गया।

मादु रुआंसा हो गया "तुमने ऐसा क्यों किया? मैं क्या करूं—मेरे पास एक ही लुंगी है, क्या तुम लोग इस बात को नहीं जानते?" सिसकते हुए उसने पूछा। "अरे चल बे, बड़ी लुंगी है। यह भी लुंगी है? फेंक दो कहीं" खींचा सबने। लुंगी जगह जगह से फटकर उसका चिथड़ा चिथड़ा बन गया। एक लड़का पिताजी के पास भागा हुआ गया। उनसे अलमारी की चाबी ले आया। अलमारी खोलकर एक नई धोती—अच्छे मिल की बनी कीमती धोती—ले आया। मादु के हाथ में देकर बोला, "लो, पहन लो।"

"अपनी जिंदगी में ऐसी धोती तुमने देखी तक नहीं होगी ... जाओ, पहन लो।" दूसरे ने कहा। "पहले उस पुरानी लुंगी को उतार कर दूर फेंको" तीसरे ने कहा। मादु को एक तरफ हिचक हो रही थी, दूसरी तरफ खुशी। वह जिस अदा के साथ पहनी, उसे देखने पर लगता था, "मैं क्यों गरीबों के यहां पैदा हो गया" मादु की उस मैली-कुचैली फटी-पुरानी लुंगी को एक लड़के ने स्केल से उठाया और परे ले जाकर सामने बहने वाले गंदे नाले में फेंक दिया।

मादु ने नई धोती पहन ली है, इसलिए उसके सिर पर ताबड़तोड़ मुक्के पड़ने लगे, नए कपड़े को मनाने के लिए।

"अरे भाई, तुमने तो मुक्का मार दिया। अब फिर से क्यों आ रहे हो मुट्ठी बांधकर?" मादु ने अपनी दोनों हथेलियां सिर पर धरते हुए उससे पूछा।

"यह कैसे हो सकता है, एक मुक्के से क्यों रुकूं? तुमने "कोडि"*-धोती पहनी हो। "कोडि" (करोड़) मुक्के मारने जो हैं।" यों कहते हुए वह सिर पर जगह बनाते हुए बारी बारी से मुक्के मारता चला गया। हथेलियों से ढंकने की वजह से मुक्के नहीं पड़ रहे थे।

"अरे, यह कहां की चालाकी है, सिर ढंकने की ... हटाओ हाथ ... बोल रहा हूं न, पहले हाथ हटाओ ... कहता हूं ..." झूठमूठ के गुस्से के साथ किसी लड़के ने कहा। यही वह लड़का था जो मादु के लिए नई धोती निकाल लाया था। इसलिए उसका कहना मानना ही होगा। हथेली निकालते ही "ठन" ... से मुक्के मारने के बाद "अब हाथ से बंद कर लेना" कहते हुए वह ओंठों के अंदर हंसी रोक रहा था।

"यह कहां का न्याय है भई, उसके लिए तुमने हाथ हटा लिया। वह कौन-सा बड़ा धन्ना सेठ है? उसने तुम्हें धोती ला दी, इसलिए हाथ हटा लिया था। वह जो धोती लाया, क्या वह उसकी अपनी है? उसमें हमारा भी तो हिस्सा है। हटा लो हाथ, हमें भी मारने

---

*कोडि : इस शब्द के दो अर्थ हैं—एकदम नया वस्त्र और करोड़

दो मुक्के। हाथ हटाओ।" जबर्दस्ती उसकी हथेली हटाकर बाकी तीनों लड़के ताबड़तोड़ मुक्के मारने लगे।

"हाय, ये लोग मार डालेंगे मुझे ... मार ही डालेंगे .... हाय, हाय ...." मादु चीख उठा।

उस जगह से वे सब उसे घर के भीतर घसीट लाए, "पिताजी, मादु ने नई धोती पहनी है, कोडि-धोती। इसे कोडि-मुक्का मारिए।" उन्होंने रस्म पूरा करने के लिए हल्का-सा मुक्का मारा। "अरे यह भी कोई मुक्का है, आवाज ही नहीं आई"—किसी ने पिता को उलाहना दी। फिर वे मादु को मां के पास रसोई में ले चले। "मां, मां ! ... मादु ने कोडि-धोती पहनी है, कोडि-मुक्का मारो"—कहकर मां से फूल की तरह मुलायम मुक्का दिलवाया। उसके बाद उनकी बहनों की बारी आई ...। अपने कोमल हाथ दुखे बिना पांचों बहनों ने भी मादु के सिर पर मुक्के मारे। उस समय मादु को देखने पर लगता था कि वह बड़ी खुशी महसूस कर रहा है।

फिर उसे घर के बाहर गली में घसीट लाया गया। वहां बाहर की ड्योढ़ी पर बिठा कर अपने जान-पहचान के लोगों से, जो गली में इधर-उधर आ जा रहे थे, मुक्के मरवाने लगे। अपनी हथेली से सिर ढंकते हुए ऐरे-गैरे सबके हाथों मुक्के खाता हुआ मादु, दयनीय दिखाई दे रहा था। पर क्या किया जाए?

आदमी के बच्चे को मानसिक आह्लाद नहीं आना चाहिए। उस पर भी मानसिक रूप से कम विकसित क्रूर जनों को खुशी नहीं आनी चाहिए। इसे प्रसन्नता न कहकर "क्रूर विनोद" कहना उचित होगा। (दुखी रहने की स्थिति में मानव को क्रूर विनोद नहीं सूझता)। बस में हमें आराम से सफर नहीं करने देते। ये लोग क्यों इतने जोर की आवाज में "टेप" बजाते हैं? क्या उनका ऐसा ख्याल है कि उनकी बस में सफर करने वाले सारे के सारे बहरे हैं? नहीं, नहीं .... उनका क्रूर विनोद है यह ! कानों को फोड़ देने वाली ऊंची आवाज में पटाखे छोड़ने के बाद वह नौजवान बड़ी शान से क्यों देख रहा है अपने चारों ओर? उस समय उसके अंदर का हैवान बाहर निकलता है। वह हैवान उसे प्रेरणा देता है, इससे भी जोरदार पटाखे छोड़ो। इसी तरह आदमी के भीतर बैठा हुआ नरकासुर ही बस में यों जोर से टेप बजाने को उकसाता है; ड्राइवर से इलेक्ट्रानिक हार्न को बजवाता है। स्पीकर-सेट की आवाज को और बुलंद करवा देता है। ये तो बेकसूर हैं, इन पर नराज होने का कोई प्रयोजन नहीं है। तीरंदाज तो कोई दूसरा ही है, अंदर बैठा हुआ हैवान है, जो इनसे यह सब काम करवाता है। ये तो बेचारे मात्र तीर ठहरे !

वह जमाना

मैंने कहा "उस जमाने में कॉफी-पाउडर नहीं होता था, कॉफी के टिकिये होते थे।"

सुनने वालों को अचरज हुआ। पूछने लगे, "क्या कारण था टिकिये बनाकर देने का?"

"पता नहीं, क्या कारण था? शायद पैसे में एक टिकिया बेचने में सहूलियत रही होगी। यही नहीं, कॉफी पहले पहल आई थी। लोगों को क्या मालूम था प्रति कप कितना पाउडर डालें, इसलिए भी हो सकता है।"

श्रोताओं ने मुझसे आग्रह किया, "आपके गांव में पहले पहल काफी का प्रवेश कैसे हुआ, उसकी कहानी जरा बताइए तो।"

पहले जमाने में सुबह उठते ही जल-पाक या "नीराहारम्" पीने का दस्तूर था। आज भी कहीं कहीं लोग इसे कायम रखे हुए हैं। "नीराहारम्" के लिए कई नाम प्रचलित थे। हर इलाके में इसका अलग अलग नाम चलता था—हमारे यहां "नीच्चुत्तणि" कहते हैं।

चावल पकाते हुए उससे जो लप्सी (गाढ़ा-सा द्रव-पदार्थ) छानी जाती है उसे मिट्टी के कलश में रखते हैं। उसमें नमक और पानी मिलाने पर वह "नीराहारम्" बन जाता है। जब जब लप्सी मिलती है उसे कलश में जमा करते जाते हैं। तीन-चार दिन तक वह ठीक रहता है। बासी होते होते उसमें खटास आने लगती है उसी अनुपात में पानी और नमक मिलाकर समीकृत कर लेते हैं। गर्मी के लिए एकदम बढ़िया पेय है यह, खेतों में काम करने के लिए, थके-मांदे घर लौटने वालों के लिए जीवनदायक पेय।

चावल की लप्सी को गरम गरम पीने की भी प्रथा है। चावल के किस्म के मुताबिक उसमें वही स्वाद आता है। चावल के कितने ही किस्म होते हैं—कुदिरैवालि, वरगरिसि, तिनैयरिसि, काडैकण्णि वगैरह वगैरह। इन सबमें "नैल्लरिसि" की लप्सी बहुत ही जायकेदार होती है। चावल के इस स्वाद के लिए तेलुगु में एक शब्द प्रचलित है—"कम्मंग"। तमिल में इस भाव को व्यक्त करने वाले शब्द का पता मुझे भी नहीं है।

जोर की भूख से जो थकान होती है, उसे नीराहार ही दूर कर सकता है। कितना उत्तम पेय-पदार्थ है यह ! इस पर कोई खर्चा नहीं और तंदुरुस्ती के लिए एकदम बढ़िया ! आज तो चाय-कॉफी ने इसका स्थान ले लिया है। जब पहले पहल चाय कॉफी चल पड़ी, अमीर लोग ही उसका प्रयोग कर सकते थे। आम आदमी यही कहता था, "हम लोग चाय-कॉफी कैसे पी सकते हैं? इतनी औकात हमारे पास कहां हैं?"

आज तो आपको एक भी घर ऐसा नहीं मिलेगा जहां कॉफी-चाय न चलती हो। हमारे गांव में जिस घर में पहले पहल कॉफी-पान किया गया, बड़ी प्रतिष्ठा के साथ आज भी उस खानदान का जिक्र होता है। जब चर्चा आगे चलती है, कॉफी और चाय के लोकप्रिय पेय के रूप में बदलने के दौरान जो दिलचस्प घटनाएं हुईं, उनका भी जिक्र आता है। श्री मेयन्ना के यहां कॉफी-पान का ढंग यह था कि खाना खाने के तुरंत बाद ही उसी "कुंबा" (भोजनपात्र) में—उसे साफ किए बिना ही—कॉफी डलवा कर पिया करते थे। उस "कुंबा" में दो लिटर से ज्यादा कॉफी आ सकती है। इस तरह "कुंबा" भर पीने से ही उनका मन भरता था। "हमारे यहां रोज दो दो बार कॉफी बननी ही चाहिए", ऊपर से यह बड़ाई अलग।

श्री कीयन्ना के घर कॉफी-पान का ब्यौरा इस प्रकार है : कीयन्ना बरामदे के पास वाले कमरे में बैठे हैं। उनकी गृहणी एक लोटे में (तमिलनाडु का "लोटा" पीतल या कांसे का बड़ा-सा गिलास होता है, पंजाबी गिलास जैसा, इसमें 600 से 700 मिलीग्राम तक आता है) कॉफी लाकर रखती है, पौन लोटा कॉफी। साथ में एक और लोटे में ठंडा पानी भी रख जाती है। अंगूठे और तर्जनी के बीच में दबाई सुंघनी को कीयन्ना नथुनों पर रख लेते हैं और उसे एक बार इतमीनान से खींच लेने के बाद, वे कॉफी वाले लोटे में अपनी उंगली धरकर देखते हैं। कॉफी अभी गरम है। उसे ठीक करने के लिए थोड़ा ठंडा पानी मिलाकर(!) फिर उसके अंदर उंगली डालते हैं।

लगता है, अब भी कॉफी गरम है। फिर से थोड़ा पानी मिलाते हैं उसमें। अबकी बार उंगली डालकर देखने पर सही लगता है। हाथ में कॉफी लेकर उसका पान करते हैं।

गरम कॉफी को पानी से ठंडा करने की उनकी आदत उन्हें स्नान के लिए रखे गरम पानी में ठंडा मिलाकर गुनगुना करने की क्रियाविधि से लगी होगी।

खाना खाते समय पत्तल खाली होने की देर है कि उस पर फिर से चावल परोसा जाता है। उसी तरह हमारे यहां उन दिनों कॉफी का भी यही हिसाब चलता था। आप पीते जाइए और वे डालते जाएंगे। आप कह रहे हैं, "बस कीजिए, अब नहीं हो सकता", लेकिन वे कहां मानने वाले हैं? जैसे दुबारा चावल खाना अनिवार्य माना जाता है, मना करने पर इसे अतिथि द्वारा आतिथेय का अपमान समझा जाता है। (यह कहानी अलग है कि होटलों में "सीमित भोजन" की प्रणाली पहली बार जब अमल में आई और उसके बाद ऐसे लोग शहर के होटल में खाने पर बैठे, थाली में चावल का गोलाकार पिंड—गरम चावल से भरे गोलाकार बर्तन को उलटने पर अन्न "शिवलिंग" के आकार में होता है—देखकर एक बार चौंक गए थे। वह ऐसा जमाना था जब जमकर खाने वालों को प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। आजकल इडलियों में भी तिकोने आकार की इडलियां मिलने लगी हैं।) शायद तिकोने-आकार की इडलियां "एक ही बस है, दो के बाद कभी नहीं" वाला संदेश दे रही हैं।

उन दिनों "फिल्टर कॉफी" का चलन नहीं था। एक ठेला ताड़ का गुड़ लेते थे, उसे फर्श पर ठोककर दो तीन टुकड़े कर देते थे, फिर उसे गर्म पानी के भगोने में डाल देते। उसमें पर्याप्त मात्रा में कॉफी पाउडर या चाय का चूरा मिलाकर उबालते। वह भगोना सुबह से रात तक अंगीठी पर ही "बैठा रहता है।" (बीच बीच में बारी बारी से पाउडर और गुड़ मिलाते जाते) आवश्यक मात्रा में उसमें से चाय-कॉफी निकालकर दूध मिलाते और आने वालों को पिलाते। ताड़ के गुड़ और दूध का कोई मिला-जुला स्वाद होता था उस पेय का। साथ में कॉफी या चाय की हल्की-सी गंध।

घर में अड़ोसी-पड़ोसी, दोस्त या रिश्तेदार जो कोई आ जाए तो उसके सामने यही कॉफी पेश की जाती। आने वाले को यों तंग करते, "पिओ और थोड़ी-सी पी लो।" कहिए कि फलां के यहां अभी अभी कॉफी पी चुका हूं, मगर वे नहीं छोड़ेंगे। कहेंगे, "अरे पी लेना भई। क्या बड़ी बात है, एक बार बैठो और उठो ठीक हो जाएगा।" अगर यह मानकर चुप रह जाएं कि घर आने वालों को क्यों इस तरह तंग करें तो बाद में और किसी के द्वारा यह फरियाद सुनने को मिलेगी, उसके यहां गया था, एक घूंट कॉफी के लिए किसी ने नहीं पूछा।

घर घर में यों अनिवार्य मद बन चुकी कॉफी और चाय को पहले पहल जनता के बीच में लोकप्रिय बनाने के लिए कॉफी और चाय बगानों के मालिकों को न जाने कौन कौन सी कलाबाजियां करनी पड़ी थीं, यह बात आज की पीढ़ी के लिए अज्ञात है। मैं जब छोटा था, एक बार अपनी दादी अम्मा के साथ पास वाले नगर कोविलपट्टी गया था। जब भी हम लोग वहां जाते कृष्णन कोविल (मंदिर) से लगी रथ वीथी में अपने रिश्तेदारों के यहां ठहरते।

उस दिन दोपहर बाद कोई एक बजे का समय रहा होगा। मैंने देखा, उनके यहां किसी ने आकर पूछताछ की, "क्या आपके यहां कोई मेहमान आए हैं?" घर के मालिक (हमारे रिश्तेदार) ने कहा, "हां, दो जने आए हैं।" पूछताछ करने वाले इस बात को नोट करके ले गए। मुझे यह अजीब-सा लगा। साथ में हंसी-मजाक में कही जाने वाली कोई लोक-कथा याद आई, "मेहमान को काटो और 'करी' बनाओ।"

दोपहर के भोजन के बाद बुजुर्ग लोग विश्राम कर रहे थे, साथ में बातें भी हो रही थीं। उस समय वही व्यक्ति, जो पूछताछ के लिए आया था, एक बड़ी-सी हांडी में गरम चाय लाकर दे गया।

जीवन में पहली बार मैंने उसी दिन चाय की चुस्की ली थी। चाय-पान करके बहुत अच्छा लगा। दादी मां ने अपने हिस्से की चाय का त्याग कर दिया। उन्होंने नियम-सा बना रखा है, कि बाहर जाने पर किसी के यहां हाथ गीला न किया जाए (भोजन न किया जाए)। यह उनका व्रत था। केले और भुने चने से उनका गुजारा हो जाता है। मट्ठा मिल जाए

तो अति उत्तम !

रिश्तेदारों ने उनसे बहुत अनुनय-विनय किया, थो ... ड़ी-सी चाय पी लें, चख कर तो देखें।

उन्होंने साफ मना कर दिया, "उस बला को छुऊंगी भी नहीं।" अंततः उनके हिस्से की चाय भी मुझे प्राप्त हो गई।

चाय पीने के बाद रिश्तेदारों ने चाय का किस्सा विस्तार से सुनाया। शाम को ठीक चार बजे रोज गरम गरम चाय आ जाती है मुफ्त में। सुना कि इसी तरह तीन महीने तक ला लाकर देते रहेंगे। चाहें मूसलाधार पानी बरसे तब भी वह चाय ऐन वक्त पर घर पहुंच जाएगी।

हालांकि मैं वहीं बैठे बैठे गली में बच्चों द्वारा खेली जा रही कांच की गोलियों का खेल देख रहा था, पर मेरा ध्यान तो "गांव जाने वाली मोटर-बस" पर था।

मैं बेसब्री से शाम का इंतजार कर रहा था। शाम होते ही बस स्टैंड पर जाकर उन्हें खबर कर देना मात्र काफी है .... हमें ले जाने के लिए हमारी जगह पर बस आ जाती। यह सुविधा केवल हमारे लिए नहीं थी .... चाहे कोई भी हो, बस उनके घर पहुंच जाती। अपने गांव में जाने के बाद आपको जिस ठौर उतरना हो, अगर वहां पर बस जाने लायक रास्ता हो, तो उसी जगह में आपको उतार कर जाते। आपको यकीन नहीं आ रहा है न? मगर बात सच्ची है। उस जमाने की बसें हमें बस स्टैंड पर अनाथों की तरह नहीं छोड़ जातीं जैसे आजकल की बसें किया करती हैं।

जनता-जनार्दन को बस में चढ़ने और उतरने का आदी बनाने के लिए बस कंपनियों के मालिकों ने जी-तोड़ प्रयास किए। पैदल चलने वाले लोगों को किसी न किसी तरह बस में सवार कराने की लगातार उनकी कोशिश रहती थी। उस जमाने में सड़क पर कहीं कोई भी खड़ा मिल जाए, उसी के पास बस रोककर अनुरोध करते, "चढ़िए न।" उसी बस को रोकने के लिए आज हम अपने दोनों हाथ उठा उठा के दिखाते हैं, लेकिन वह रुकने का नाम नहीं लेती। तमिलनाडु में चलने वाली तिरुवल्लुवर* बस, यदि स्वयं तिरुवल्लुवर ही आकर हाथ दिखाएं तब भी नहीं रुकेगी।

मैं अभी जिक्र कर रहा था, लोगों को चाय और कॉफी मुफ्त में पिलाकर उन्हें इनका आदी बनाया गया। उन दिनों खूबसूरत डिब्बों और टिनों में उम्दा चाय सस्ते दामों में मिलती थी। उस जमाने की चाय का जायका अब की पत्तियों में नहीं है, कारण दरियाफ्त करने

*प्राचीन युग के विख्यात तमिल कवि जिन्होंने "तिरूक्कुरल" ग्रंथ की रचना की। यह पांचवां वेद माना जाता है। अब तमिलनाडु सरकार ने अपने एक परिवहन निगम का नामकरण तिरुवल्लुवर के नाम से किया है।

पर पता चला कि उम्दा चाय विदेशों को निर्यात की जाती है। यही तो बड़ा जुल्म है। "पिओ पिओ" करके जिस पेय का लालच दिखाया उसे आंखों से ओझल करते हैं। "चढ़ो-चढ़ो" करके अनुरोध करने के बाद अब जगह होने पर रुके बिना गाड़ी भगाए चलते हैं। यह भी समय समय की बात है।

गुंडे और देवता

पता नहीं, "मोप्पय्यन" नाम कैसे आया। यह उसका असली नाम नहीं था।

जन्म के समय मां-बाप कोई नाम रखते हैं। लड़कपन में गली के दूसरे बालकों के साथ खेलते समय वे लोग उसे दूसरा नाम देते हैं। नौजवान होने पर कुमारी कन्याओं द्वारा उसका तीसरा नामकरण होता है।

जो लोग उसे नहीं चाहते, उसका विरोध करते हैं, ऐसे लोग आपसी बातचीत में उसके लिए एक नाम-संकेत का व्यवहार करते हैं। उसकी मातहत में काम करने वाले कर्मचारी-गण फिर उसका एक नया नाम रखते हैं। गांव वालों द्वारा उसकी पहचान के लिए दिया गया नाम अलग ही होता है। इस नाम को लेकर पूछने पर ही कोई उसका अता-पता बता सकता है।

इस तरह एक आदमी के कितने ही नाम हो जाते हैं। इनमें कई नाम तो उसके कानों तक नहीं पहुंचते, पहुंच जाएं तो उनका मजा ही क्या रह जाता है।

मोप्पय्यन नाम उसके अल्हड़, कुछ फूहड़ स्वभाव के कारण पड़ा होगा। उसे किसी की परवाह नहीं है, अपने ही काम से मतलब है। वह अपने काम में किसी तरह की कोई अड़चन बरदाश्त नहीं कर सकता।

उसका बाप कहा करता था : "पता नहीं यह क्या कुछ बनेगा, किसी काम के लायक नहीं है। परोस दो तो खाएगा .... वजन चढ़ा दो तो ढोएगा।"

उसके सिर पर एक "पोदि" (सवा क्विंटल) कपास लादा जाए तो खेल खेल में ही वह उसे ले जाकर दूसरे गांव पहुंचा देगा। जो इस तरह वजन ढोता है, उसे भूख भी खूब लगती है। भूख लगे तो पेट भर खाए बिना कैसे उठेगा? यों डटकर खानेवाला कैसी नींद सोएगा, यह भी कोई पूछने की बात है? लेकिन उसकी नींद "रामायण वाली नींद नहीं", चेतना-युक्त निद्रा ही है। हां, मैं आपका प्रश्न सुन रहा हूं, "रामायण वाली नींद? वह क्या होती है?" घिसी-पिटी पुरानी कहानी है। फिर भी उन लोगों के लिए सुना रहा हूं जिन्होंने सुनी नहीं है।

मोप्पय्यन-किस्म का एक आदमी कोई मोटूराम था; वह रामायण की कथा सुनने चल पड़ा। उसने इसके पहले रामायण नहीं सुनी थी। कई बार मन में आया था कि कथा सुनी जाए, लेकिन कैसे जा सकता था? उसके पास समय ही कहां था? दिन भर बैल की तरह

काम करता; रात में नहाकर खाना खाते ही लट्टू की तरह सो जाता। इस दिनचर्या में कथा सुनने के लिए फुरसत कहां हैं?

ऐसा आदमी अगर कथा-श्रवण के लिए चला जाए तो उसे नींद तो आएगी ही। वैसे भी कहानी सुनते सुनते किसी को भी नींद आ सकती है। कहानी सुनाना आसान है, सुनना महाकठिन काम है।

जिस दिन मोटूराम कथा सुनने चला था, श्रोताओं की अपार भीड़ थी। कहीं बैठने को जगह नहीं मिल रही थी। "निगोड़ी चली गई हाट, वहां भी मर्दों की किल्लत" वाली कहावत उसे याद आ गई। जैसे-तैसे एक छोर पर दीवार से सट के बैठ गया।

सुनते सुनते कथा में बड़ा रस आ रहा था। मन में सोचा, "कथा इतनी रोचक होती है? अरे, बड़ी गलती हुई। अभी तक क्यों नहीं आया?" गाढ़ी नींद में सोते हुए कुंभकर्ण को जगाने के लिए राक्षसों ने क्या क्या करतब किए, इसका मजेदार वर्णन कर रहे थे कथावाचक।

कह रहे थे, एक हजार हाथी मंगाए गए। उनसे उसका शरीर दबाया गया। नींद में ही कुंभकर्ण को मजा आया होगा कि हां भई, "चंपी" हो रही है। उसकी नींद और भी गाढ़ी हो गई, पहले से भी जोरदार हो गए उसके खर्राटे। खर्राटों के जोर से सारे के सारे हाथी नथुनों से होते हुए अंदर चले गए। उनमें से दो महावत बड़े होशियार थे।

जब हाथी नाक के भीतर जा रहे थे, नाक के बालों को कस के पकड़ लिया था दोनों महावतों ने। बरगद की डाल से नीचे गिरने वाली जड़ों जैसे उन बालों को पकड़कर वे लटके रहे। सांस लेते समय अंदर को और छोड़ते समय बाहर को झूलते रहे थे। यह वर्णन सुनकर बच्चे खुशी से उछलकूद मचाने लगे। सुनने वाले 'वाह ! वाह !' कर रहे थे।

जैसे तैसे कुंभकर्ण को तो जगा दिया। उधर कहानी में कुंभकर्ण जाग उठा, इधर सुनते सुनते यह मोटूराम सो गया। जगह की तंगी की वजह से खड़े रहने वालों में से दो आदमी उसके दोनों कंधों पर दाएं बाएं बैठ गए आराम से। अब अगर वह जाग भी जाता तो कहानी के रस में पता नहीं चलता कि दो आदमी मेरे कंधे पर सवार हैं।

उस दिन की कथा समाप्त हो गई। सब लोग उठकर चले गए, कंधे पर बैठने वाले भी घर चले गए। वहां पर सिर्फ मोटूराम सो रहा था, कुंभकर्ण की तरह।

सुबह उठकर घर आया मोटूराम, "बोलो कैसी लगी कथा?" घर के लोगों ने पूछा। "अरे क्या कहूं, कथा तो बहुत ही मजेदार थी लेकिन ढोते ढोते परेशान हो गया। बांहों में गजब का दर्द हो रहा है" उसने जवाब दिया। मोप्पय्यन की नींद मोटूराम जैसी "रामायण वाली निद्रा" नहीं थी।

एक दिन मोप्पय्यन अपने औजार बरमा वगैरह लेकर पास वाले गांव में कुआं खोदने

के काम पर जा रहा था। कड़ी मेहनत का काम होता है, कुआं खोदना।

दिन भर काम करने के बाद घर लौटते हुए रास्ते में कहीं वह जरा विश्राम लेने के लिए बैठा। थकान की वजह से तंद्रा-सी आ गई। वहीं पर जरा लेटने का मन हुआ। जमीन पर सिर रखते ही आंख लग गई। उधर दिन ढला और रात का अंधेरा छाने लगा, लेकिन मोप्पय्यन इन सब से बेखबर सो रहा था, गाढ़ी नींद।

जिस तरफ को मोप्पय्यन अपनी टांगें पसारकर सोया हुआ था, वहीं ठीक सामने करुप्पण्ण-स्वामी का मंदिर था। मोप्पय्यन का ध्यान इस ओर नहीं गया था। माना कि इसने ध्यान नहीं दिया, लेकिन करुप्पण्ण-स्वामी ध्यान दिए बिना कैसे रह सकते थे? मंदिर के देवता ने सोचा, अरे यह कौन फूहड़ आदमी है, जो मंदिर की मर्यादा का पालन किए बिना हमारे सामने टांगें पसार कर सो रहा है। उनको क्रोध आ गया। उसे आवाज लगाई, एक जबर्दस्त घुड़की दी।

मोप्पय्यन के बच्चे पर कोई असर नहीं हुआ। देवता स्वयं मंदिर से उतर आए, उसकी टांगें खींच कर दूसरी दिशा में कर दीं और अपनी जगह चले गए।

मोप्पय्यन जरा-सा चेता। फिर भी, नींद के जोर में फिर से पहले जैसे लेट गया, देवता के सामने टांगें पसारते हुए इधर देवता के गुस्से का पारा चढ़ गया। वे फिर उतर आए और तपाक से टांगें खींच कर उस तरफ पटक दिया। इस झटके से मोप्पय्यन की नींद खुल गई। उसे बड़ी खीझ आई। पता चल गया कि मेरी टांग खींचने वाले स्वयं करुप्पण्ण-स्वामी हैं। वह अपने बरमे को उठाकर अंदर गया और अंधा-धुंध मारकर मूर्ति को चकनाचूर कर दिया। देवता जान बचाकर भागे और उसकी आंख बचाकर "नोच्ची"* झाड़ के पीछे छिप गए।

मोप्पय्यन फिर उसी स्थान पर लेट गया। उसी दिशा की ओर टांगें पसारे आराम से उसने अपनी नींद भर ली। सुबह उठकर इस अदा के साथ घर चला गया जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो।

उस दिन पूजा-आराधना के लिए आए पुजारी ने देखा कि देवता की मूर्ति टूटी हुई है, चूर चूर हो गई है। "भाव में आकर" वह नाचने लगा। गांव वाले इकट्ठे हो गए। सबने मिलकर मंदिर में आवश्यक अनुष्ठान का प्रबंध किया और दूसरी मूर्ति लाकर स्थापित कर दी।

अगले दिन पुजारी आकर देखता क्या है, मूर्ति का रुख कल पूरब की ओर था और आज तो पश्चिम की ओर मुंह किए है। उसने स्वयं मूर्ति को उठाकर पूर्ववत पूरब की ओर कर दिया। पूजा-आराधना संपन्न करने के बाद वह चला गया। अगले दिन आकर देखा तो फिर वही कहानी थी, देवता का रुख फिर पश्चिम की ओर।

---

*"नोच्ची" एक फूल का पौधा

देवता को पूर्वाभिमुख होते डर लग रहा था। पूरब की ओर होते तो उनकी दृष्टि उस स्थान पर पड़ जाती जहां मोप्पय्यन लेटा हुआ था। फौरन उसकी याद आ जाती।

पुजारी के बार बार प्रार्थना करने पर देवता ने शर्त लगाई, "मैं तभी पूर्वाभिमुख होऊंगा, यदि मोप्पय्यन स्वयं आकर कह दे कि कोई बात नहीं, देवता पूरब की ओर रह ले।"

बेचारा पुजारी क्या करता? जब स्वयं देवता मोप्पय्यन से इतना भय खाए तो पुजारी की क्या हस्ती? सुबह सुबह मोप्पय्यन कुआं खोदने के काम पर उधर से निकल रहा था। उसके कंधे पर बरमा था। पुजारी भागा आया और उसके पैरों पर गिर पड़ा।

"क्या बात है।" मोप्पय्यन ने पूछा। पुजारी गिड़गिड़ाया "भैया, देवता के पास आकर बोलें, कि वे पूरब की ओर देख लें।" बस, इतनी कृपा करो। मोप्पय्यन ने साफ इंकार कर दिया "अरे, मुझे देर हो रही है। काम पर जाना है। मैं नहीं आ सकता।" पुजारी दुबारा उसके पांव पड़ा।

मोप्पय्यन ने सोचा, "छिः.... यह क्या आफत आ गई। वहीं खड़े खड़े उसने देवता की तरफ मुंह किया। खीझ के साथ दांत पीसते हुए इतना भर कहा, "ऐसे ही रह लो....।" और वह तेज कदम भरते हुए काम पर चला गया।

देवता की जान में जान आई। फिर बड़े साहस के साथ हंसिया उठाकर पूरब की ओर देखते हुए खड़े हो गए। यह कहानी सुनाने के बाद बलराम नायकर भरत वाक्य के रूप में बोले, "गुंडे-बदमाशों से तो खुद देवता लोग डरते हैं।" उनकी यह टिप्पणी मुझे ठीक नहीं जंची। मैंने अपनी आपत्ति जता दी।

इसके उत्तर में उनका कहना था, "अभी तक एक भी मिसाल ऐसी देखने को नहीं मिली है कि देवता ने अपने बल बूते पर बुराइयों पर विजय पाई हो। उसका साथ देने के लिए किसी मानव का होना जरूरी है चाहे वह छोटा ही क्यों न हो ....।" मैं अब बैठकर विश्लेषण कर रहा हूं कि उनकी बात ठीक है या गलत।

अजूबे गांव के

अपने एक शहरी मित्र को उस दिन गाड़ी में बिठाने जा रहा था। जन्म से लेकर महानगर में ही रहने की वजह से इन सज्जन को गांव की हरेक चीज अजीब लगती थी। यहां की प्रत्येक वस्तु पर कौतूहलमय जिज्ञासा उठती थी उनके मन में इसलिए छोटे बच्चों की तरह हरेक के बारे में सवाल पर सवाल किए जा रहे थे। पूछने लगे : "क्या आपके गांव में सब लोगों ने दाढ़ी बढ़ाने का व्रत ले रखा है?"

"नहीं, ऐसा कोई व्रत या संकल्प नहीं है। लोग दाढ़ी तभी बनाते हैं जिस दिन उन्हें गांव से बाहर जाना होता है।" मैंने जवाब दिया। इसे सुनकर उनके चेहरे पर अचरज भरी मुस्कान खिल उठी।

"लगता है, आपका भी कुछ ऐसा ही हिसाब-किताब है।" उन्होंने मुझे छेड़ा।

"मेरा ही क्यों? दादा-परदादा के जमाने से यही दस्तूर चला आ रहा है।" मैंने समझाया।

"हमारे यहां तो रोज दाढ़ी बनाने के दस्तूर हैं, चाहे हम अपने शहर में रहें या बाहर जाएं। इसकी आदत-सी पड़ गई है।" उन्होंने कहा।

मैंने भी तब चुटकी ली, "आपके शहर में अड़ोस-पड़ोस भी परदेस जैसा ही है।"

पेड़ों की छांव में या नदी-तालाब के किनारे ग्रामीण लोगों को आराम से बैठकर बातें करते हुए देखकर मित्र ने अगली टिप्पणी की "देखो, ये लोग मानों समय की कीमत जानते ही नहीं, सारा काम छोड़ कर इतने आराम से कैसे बातें कर रहे हैं। लगता है काम करने में भी धीमे ही होंगे।"

"ऐसा न समझिए। जब भूसे के ढेर में या किसी घर में आग लग जाए तब देखिए इनकी चुस्ती।"

मैंने गांव वालों की वकालत की।

इसी तरह बातें करते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। एक घर में "मुरूंगै"* पेड़ से बहुत सारी फलियां लटक रही थीं। हमारे शहरी मित्र सेंजनी की इतनी सारी फलियां देखकर विस्मित खड़े रह गए। 'यों देखो ना, देखो तो भी यों अचरज करो ना, दिस्मय आवे तब भी बखानो ना', इस अंदाज के साथ मैंने उसके चेहरे को घूर के देखा और किसी तरह

---

*सहजन या सेंजनी की फली

उन्हें वहां से सरकाता हुआ ले चला। थोड़ी दूर चलने के बाद उन्होंने बखान कर ही दिया, "बाप रे। खूब सारी फलियां थीं उस पेड़ पर।"

अगर उस घर की महिला कहीं यह "बखान" सुन लेतीं तो इनकी शामत आ जाती।

सहजन के उस पेड़ पर इतनी सारी फलियों का लटकना हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। कभी कभी तो इतनी ज्यादा फलियां हर डाली पर होतीं कि सारे पत्तों को छिपा कर फलियां ही फलियां नजर आतीं।

इस तरह फलियां बहुतायत से होने की वजह से घर में जो कलह और रगड़े उठ खड़े होते हैं बड़े दिलचस्प होते हैं।

पति भोजन के लिए चौके पर बैठा हुआ है। थाली में भात परोसा गया है। फिर सब्जी ला रही है उसकी घरवाली। देखकर पति का पारा चढ़ जाता है, गरम घी में पड़े गुलगुले की तरह वह उछल कूद करने लगता है, "यह क्या मुई-सी सब्जी? सुबह शाम एक ही सब्जी बनाती है, जब देखो सेंजनी सेंजनी, भाड़ में जाए सेंजनी की फली साथ में तू भी। खड़ी खड़ी क्या ताक रही है, मैं अब उठूंगा तो सब्जी का बर्तन उठाकर तेरी खोपड़ी पर दे मारूंगा।" गुस्से से वह दांत किटकिटाते हुए बोलता है।

"कहां से लाऊं बताओ रोज एक नई सब्जी .... बगीचे में जो उगता है, उसी से काम चलाना होता है।"

उसी तरह दांत भींचते हुए पति कहता है, "हूं, बड़ी आई काम चलाने वाली। ले, इसे भी तू ही खा ले।" अपनी थाली उसकी ओर सरका कर वह उठ जाता है।

कहानी सुनकर मित्र ने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की उससे यही लगा कि सेंजनी की फलियां उन्हें जान से भी प्यारी हैं। फलियां देखकर खीझे पति की नासमझी पर उनका कहना था, "कैसा निकम्मा है? रोज रोज सेंजनी की फली ही मिले, मैं तो मजे से खा लेता।" उसके बाद पूछने लगे, "फिर क्या हुआ?" मैंने उस कहानी के लिए वहीं पूर्ण विराम दिया और उन्हें दूसरी कहानी सुनाने लगा।

इसी तरह का एक और पति था। उसकी घरवाली रोज साग बना बनाकर परोसती थी। देसी साग में बड़ा जायका होता है। रागी धान का भात खाते जाओ साथ में साग का मजा लेते जाओ। स्वाद ही अनोखा होता है। चाहे देवों का अमृत ही क्यों न हो, उसी को तीनों जून कैसे खाया जाए?

एक दिन उस व्यक्ति को बेहद खीझ आ गई। रागी-भात के ऊपर जो साग रखा था उसे हाथ में उठाकर दे मारा। साग सामने खड़ी घरवाली के मुंह पर गिरने के बजाय, दीवार पर जा गिरा और वहीं चिपक गया। दीवार पर चिपका वह साग टुकर टुकर ताकता रहा कि आगे क्या होने वाला है?

उसे तो गजब की भूख लगी हुई थी। पत्नी की समझ में नहीं आ रहा था, देर इतनी

हो गई अब कौन-सी सब्जी बनाऊं। पति के जेहन में भी नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए। थोड़ी देर वह चुपचाप बैठा रहा। पत्नी भी उसी भांति खड़ी रही।

''और कोई सब्जी नहीं है घर में?''

सिर हिलाया उसने—नकारात्मक अंदाज में।

''ठीक है, ठीक है। जो है उसी को लाकर परोसो ....।'' लाकर परोसने के लिए घर में साग भी कहां था? जितना था, पहले परोस चुकी थी। उसी को उसने उठा के फेंका था।

बेचारी अंदर गई और साग की खाली हांडी लाकर उसे दिखाई। अब क्या किया जाए? भूख से जान निकली जा रही थी, बोला : "अरी जडमति, बेहया औरत ! बेलाग खड़ी क्या देख रही है? दीवार पर चिपके साग को खुरच कर परोस।"

मित्र ने पूछा, "यह 'हया' और 'लाग' क्या चीज है?" (गए का ... म .... से। मजा किरकिरा कर दिया भले आदमी ने। लफ्ज पकड़ लिया और कहानी छोड़ दी।)

"हया" और "लाग" को किस तरह समझाएं, मैं सोचने लगा।

जिस प्रसंग में रोष आना चाहिए, संवेदनहीन होकर खड़े रहने वाले व्यक्ति को देखकर यों पूछा जाता है, "अरे तुझे जरा भी लाज-शर्म नहीं आती? रोष नहीं आता? मान-अपमान की गर्मी छू तक नहीं गई है?"

यह "हया" और "लाग" भी उसी ग्रुप के शब्द हैं। "लगना" क्रिया से बना हुआ शब्द है "लाग"। उसे बात लगती नहीं। किसी की कमर, बगल या पीठ छू कर देखिए, वह अगर उस गुदगुदी से उछल पड़े तो आप कहेंगे, "बाप रे, खूब लाज वाला है।"

बाज बाज बैल ऐसे होते हैं जो अपनी पीठ पर किसी को हाथ रखने ही नहीं देते। गाड़ी में जुते हैं और चल रहे हैं। आपको और तेजी की तलब है। अगर आप उनकी पीठ को जरा-सा छू दें तो हवा से बातें करने लग जाते हैं। ये जन्म से ही तेज तबियत के होते हैं। इन बैलों को "संवेदनशील" या "हया-रोष" वाले बैल कहते हैं।

जिसने कहा था कि दीवार पर चिपके साग को तो खुरच कर परोसो, वही पति निर्लज्ज और बेहया है, मानहीन ओर रोष रहित है। खुद की कमजोरी को रोकने के लिए वह अपनी घरवाली को "बेहया और बेलाग" कहता है।

जब मैंने शब्दार्थ और व्याख्या प्रकरण यों समाप्त किया तो मित्र का ध्यान कहानी पर आ गया। पूछने लगे, "फिर क्या हुआ?"

फिर क्या होना था? जैसे साग वैसी सेंजनी। पहले घुड़की लगाना, फिर चुपचाप भोजन करके उठ जाना। कभी कभी घुड़की रगड़े का रूप लेती है, हाथ में कुल्हाड़ी लेकर वह "उछल-कूद" करने लगता है, "अभी मुझे उस सेंजनी के पेड़ को काटना है, नहीं तो तेरे दो टुकड़े करने हैं।"

फिर अपने आप वह शांत हो जाता, "किसी को भी मारूं-काटूं? क्या फायदा होने वाला है जब अपने सिर पर सेंजनी खाना ही बदा है।"

इस तरह लगातार फलती जाने वाली सेंजनी की फलियों को कैसे खत्म किया जाए? अड़ोस-पड़ोस में बांटते। शुरू शुरू में दो तीन दिन तो फलियां ले लेते, बेहिचक और बेरोक टोक। फिर उनको भी ....।

"छिः, रोज रोज यही सेंजनी की मुई फली? हमें नहीं चाहिए यह बला?" इस तरह मन में सोचने पर भी, बाहर यही कहते, "बहनजी, बहुत हैं फलियां आप ही की दी हुई। राजम्मा के यहां भी बीस-पच्चीस आई हैं, मुत्तम्मा के घर से भी भेज रखी हैं। रंगम्मा बोल के गई है कि वह अभी लाने वाली है।" सच पूछा जाए तो यह भी "मुझे न चाहिए कद्दू ...." वाली कहानी है।

"ये लोग क्यों इतनी तकलीफ उठाते हैं? शहर में हम लोग एक एक फली 75 पैसे, एक रुपए में खरीदते हैं। शहर के हाट में ले जाकर बेच आते, इन्हें खूब पैसा मिलता।"

अच्छा हुआ, उनकी यह बात किसी ने नहीं सुनी। तंजाऊर के मित्र प्रकाश से मैंने जो कहानी सुन रखी थी, वही इन्हें सुना दी ज्यों की त्यों।

तंजाऊर के पास एक गांव में ऐसी ही एक बात हुई। वहां पर किसी के आंगन में आम के चार बड़े बड़े पेड़ खड़े थे। खुशबूदार बढ़िया किस्म के आम। मौसम आने पर हर बार सैकड़ों की तादाद में फलते थे। शहद की तरह मीठे आम। घर में जो आम लगे हैं, वे तो अपने लिए होते हैं। (बाग वाले आम बिक्री के लिए हो सकते हैं।)

मनुष्य को "साथी" की तलब होती है। वह साथी दूसरा इंसान हो या भले ही कुत्ता, बिल्ली, बकरी वगैरह पालतू जानवर भी हो सकते हैं, अथवा पेड़-पौधे या लताएं हो सकती हैं। कहीं से कोई पौधा लाकर आंगन में लगाता है, उसे जतन से पालता है। रोज सुबह बिस्तर से उठते ही उसी का मुंह देखना पसंद करता है वह। बार बार देखता है, घूर घूर कर देखता है। खाद और पानी देकर प्यार से बड़ा करता है। उसमें नई-सी एक कोंपल आ जाए तो वह खुद उछलता है। कली आ जाए तो स्वयं भी हंसता है। जब उसमें फल आते हैं, वह कभी यह नहीं सोचता कि मैं अकेले इसका उपभोग करूं, वह चाहता है कि स्वयं को जो आनंद आया वैसा ही आनंद अपने साथी-संगी, नाते-रिश्ते के सभी लोग पाएं। इसलिए वह उन्हें सब में बांटता है।

तंजाऊर का वह ग्रामीण भाई भी इसी तरह आम के "सीजन" में अपने मित्रों, अड़ोस-पड़ोस के लोगों और रिश्तेदारों के यहां आम की टोकरियां खुद ले जाकर बांटा करता था।

उसके द्वारा आम बांटे गए किसी घर में एक मेहमान आए मद्रास शहर से। आम की टोकरी देखकर वे सहज भाव से पूछ बैठे, "क्या भाव हैं?" घर के लोगों ने कहा, "ये

दाम पर नहीं आए हैं, यों ही मिले हैं।"

भोजन का वक्त हुआ। मेहमान को भी आम की फांकें परोसी गईं। एक टुकड़ा उठाकर मुंह में रखा, मुग्ध हो गए मेहमान। अमृत सरीखा मीठा लगा। उन्होंने कहा, "इस तरह के उम्दा और बढ़िया आम मद्रास शहर में पहुंच जाएं तो खूब दाम मिलेंगे। वह आदमी जरूर पागल होगा जो इस तरह के आम मुफ्त में बांटता है, सो भी खुद लाकर बांटता है।"

अगली बार टोकरी-भर आमों के साथ जब वही पड़ोसी आया, इस घर के लोगों ने मद्रासी मेहमान की बात उन्हें सुनाई।

आम की टोकरी वाले का प्रसन्न मुख गुस्से से तमतमा उठा।

तैश में आकर पूछने लगा "अब कहां है वह आदमी?" उसके पूछने का ढंग इन लोगों को ठीक नहीं जंचा।

"वह अगर दुबारा आए तो मुझे बुलाइएगा, ऐसे लोगों को बांधकर कोड़े लगाने चाहिए, कोड़े !"

शहर में व्यापारिक मनोवृत्ति व्याप्त है जो छल-कपट से रहित ऐसे प्रेम को समझ नहीं पाती, उसका मूल्य नहीं आंक पाती। कहानी सुनकर मेरे शहरी मित्र स्तब्ध रह गए।

हमारे "करिसल काडु" (काली माटी अंचल) में समुद्र के पास वाले तंगम्मालपुरम में जमीन के नीचे समुद्र-जल का खारापन फैलता जा रहा है। वहां के मीठे जल वाले कुएं धीरे धीरे खारा पानी वाले कुंओं के रूप में बदल रहे हैं। इसी तरह नगर की "रुपये-आने-पैसे" वाली दृष्टि हमारे गांवों में भी अब धीरे धीरे फैल रही है, कड़ुए स्वाद के साथ।

घनघोर वर्षा ऋतु में

उस जमाने में आज जैसी छू कर भागने वाली बारिश नहीं होती थी। वर्षा ऋतु का मतलब है असली बारिश का मूसलाधार अहोरात्र वर्षा का मौसम ! पानी बरस बरस के बेहाल कर देता। इस मौसम के कई नाम होते थे, जैसे तीस-दिनिया बंद, सठ-दिनिया बंद वगैरह वगैरह। रात और दिन, चौबिसों घंटे पानी पड़ता रहता, कभी रिम-झिम तो, कभी छप-छप। घर से बाहर झांक भी नहीं सकते। वर्षा थमने के कई दिन बाद तक जमीन के अंदर से पानी रिस-रिसकर निकलता और गलियों में बहता रहता। "चढ़ती मछली" का जमाना भी यही होता है, खेत और जंगल में मछलियां दिखाई देती हैं। "चढ़ती मछली" के बारे में जो कहानियां चलती हैं, उन पर कभी कभी कहते हैं, ताड़ के ऊपर भी मछली पड़ी मिलती।

वर्षा ऋतु जब सन्निकट रहती लोग बड़ी अस्त-व्यस्तता के साथ भागादौड़ी करते दिखाई देते .... मतलब है, बारिश के मौसम की अगवानी के लिए पूरी मुस्तैदी से जुट जाते। उन दो-तीन महीनों के लिए आवश्यक ईंधन जमा करके खूब सुखाकर अंगीठी के ऊपर झूलते ताकों पर रख लेते।

तरह तरह के नमकीन तथा उड़द-मूंग-लोबिया-चावल वगैरह भूनकर बनी "वरगरसी" "कुदिरवालि अरिसी" आदि तैयार रख लेते।

बारिश का मौसम शुरू होने के बाद घर के अंदर बेकार पड़े पड़े जी ऊब जाता है। इस ऊबन को टालने के लिए गुजारने के लिए भांति भांति के खेल होते हैं, जो घर के अंदर खेले जा सकते हैं, जैसे "तट्टांकल", "तायम्", "ओत्तया रट्टया", "ओरूच्चंपा", "इरुच्चंपा", "पतिनंचाम् पिल्लै", "इरुवत्तंचाम् पिल्लै", "नामुक्कु चात्तिरम्"* "पल्लांकुषि"....वगैरह वगैरह। इन खेलों में से कुछ केवल महिलाओं द्वारा खेले जाते हैं, कुछ बुजुर्गों के होते हैं, कुछ केवल बच्चों के लिए होते हैं। इनके अलावा कहानी सुनाना, गप्पें लड़ाना, दूसरों की बुराई करना आदि कितने ही मनोरंजक शगल हैं, आदमी जिनसे कभी नहीं अघाता।

दुपहरी में एक बार पानी जरा देर के लिए छंट जाता—इसे "उच्चि वेरिप्पु" कहते हैं।

---

*.."चौरस" "चौपड़" जैसे खेल। जमीन पर लकीरें खींच कर खेल के नाम के अनुसार अलग आकार दिया जाता है। पल्लांकुषी महिलाओं का खेल है जिसमें लकड़ी के फलक पर कटोरियां जैसी खुदी होती हैं। इमली के बीज, छोटे छोटे शंख या सीपियां उनमें बारी बारी से भरकर खेला जाता है।

उस समय सूर्य देवता ठीक "उच्चि" पर अर्थात सिर से ठीक ऊपर आ जाते। लेकिन बादलों की वजह से दिखाई नहीं देते। लोग उस समय घर से बाहर निकलते हैं और शरीर के लिए अनिवार्य नित्य-कर्मों से निवृत्त होते हैं। बारिश कृपापूर्वक उन्हें इतनी मोहलत देती है।.... इस अंतराल में एक दूसरे से मिलकर लोग बारिश को चार गालियां सुनाते और आपस में दो बातें कर लेते।

इस तरह के 'बंद' के दौरान ही बड़े बुजुर्ग "प्रस्थान" करते हैं, अर्थात "महाप्रयाण" पर निकलते हैं।

लोग अक्सर कहते, "इस बंद में बहुत मुमकिन है यह बुड्ढा "सुन लेगा।"* इस उद्‌गार को अक्सर ऊंचे स्वर में व्यक्त किया जाता है ताकि "वह बुड्ढा" भी सुन ले। कई बार उन्हीं से! पूछा जाता है, "क्यों दादा जी, इस बंद में चलने का इरादा है ... या अगले बंद में?"

इस पर वे लोग पोपले मुंह से हंसते हुए जवाब देते, "हमारे हाथ में क्या रखा है, पोते? 'वह' आकर बुलाए और हम मना करे, तब भी कहां छोड़ेगा?" ('वह' से तात्पर्य महिष-वाहन पर सवार यमराज से है।)

साधारणतया यमराज हर एक को ले जाने के लिए स्वयं नहीं पहुंचता, अपने दूतों को भेज देता है। केवल इस तरह के 'बड़े-बड़े मामलों पर' वह खुद हाजिर होता है।

उस जमाने में कहते हैं, यमराज का आगमन सबको दिखाई देता था हां, सबकी आंखों में।

जब वह आकर बुलाता, सुनते हैं लोग तरह तरह के बहाने करने लगते। कोई न कोई बहाना निकाल कर उसे टाल देते थे। कोई कहता ''अब नहीं आ सकते। सुविधा नहीं है। दो महीने बाद आना।'' कहते, "पोते का विवाह तय हुआ है इन आंखों से विवाह-मंगल देखूं, आसीस दूं, तब आऊं।" फिर कहते, "पोते के एक पुत्र हो जाए। पड़पोते को हाथ में लेकर पुचकारूं, फिर आऊं।"

"अच्छा ठीक है" कहते हुए यमराज हर बार लौटता। इन लोगों के लिए उसके हृदय में भी बड़ी दया थी। बैठकर दिया कर्जा चल कर वसूल कर लो, "खड़े हुए कर्जे को फिर लौटकर वसूल करो" वाली कहावत के अनुसार यमराज भी फिर लौटकर आने लगा और फिर पैर दुखने से परेशान होकर भैंसे पर सवार होकर आने लगा। इसका यह मतलब नहीं कि उसे घुड़सवारी नहीं आती थी। इसके पीछे कारण था घोड़े पर सवार होता तो घोड़ा जल्दी न पहुंचता?

लोगों के लिए मृत्यु जल्दी न आवे, बल्कि भैंसे की गति से धीरे धीरे आए, यह सोचकर वह भैंसे पर आता। लोग काल को समझ नहीं पाए। वे झुंझला कर कहने लगे, देखो यह

*"सुन लेगा"—ऊपर वाले के बुलावे को सुन लेगा।

कर्जा वसूल करने वाले की तरह आ गया है। यम को लोग "वसूलिया" कहने लगे।

यमराज ने देखा, "ऐसे काम नहीं चलेगा" उसने तय कर लिया।

रोज उसे वहां पर बड़े साहब से गाली सुननी पड़ती थीं।

ब्रह्माजी अपनी "मूसल" सरीखी लेखनी से सबके सिर पर "फलां की आयु इतनी है और फलां की इतनी" लिखकर भेजते रहते और उधर "मुनीम जी" चित्रगुप्त यमराज को बुलाकर अपना रोना रोते, "क्यों जी, उस आदमी का हिसाब-किताब पूरा हो गया, लेकिन तुम तो वहां जाकर भी खाली हाथ लौट आते हो, यहां 'बड़े साहब' मुझ से पूछते हैं, बताओ मैं क्या करूं।"

"मैं ही क्या करूं मुनीमजी, मैं जाकर बुलाता तो हूं वे लोग नहीं आ रहे हैं। उनके पास बहानों की कोई कमी नहीं है। उसकी परवाह किए बिना प्राण लेकर आ भी जाऊं तो घर की औरतें जार जार रोने लगती हैं, पत्थर जैसे दिल को भी पिघलाने वाला रोना!"

"अच्छा एक काम करो यम-भाई। आइंदा तुम उनकी आंखों के लिए दिखो ही नहीं। हां ...., तुम दिख जाते हो, तभी तो सौ बहाने निकालते हैं। आज से तुम लोगों की आंखों के लिए अदृश्य रहोगे .... उनका रोदन-स्वर तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंचेगा।" चित्रगुप्त ने यमराज को यह वरदान दे दिया। "उस दिन से न यमराज हमें दिखाई देता है न हमारी रुलाई उसे सुनाई देती है।" बलराम नायकर ने बताया।

सुना है कि अंतक यम आंखों से अंधा है, उसे दिखाई नहीं देता। लेकिन वह कानों से बहरा भी है, यह मेरे लिए नई सूचना थी।

इसके मूल में कल्पना का विलास भी है।

मृत्यु होने पर जो क्रंदन होता है और बिछोह से जो दुख होता है ये इतने दारुण होते हैं कि कानों से सुने नहीं जाते। यदि यमराज भी सुन ले तो कभी न कभी उसे दया आ ही जाएगी। इसलिए ऐसा विधान बना दिया गया कि यम को सुनाई भी न पड़े। घनघोर बारिश से बचने के लिए मैं गांव की धर्मशाला की ओट में खड़ा था। तभी यह सारा संवाद मेरे कानों में पड़ा। इस प्रसंग में चिदंबरमपट्टि नायकर ने बलराम नायकर की बात को यों संशोधित किया, ''ब्रह्माजी कभी यों नहीं लिखते कि फलां की आयु इतने वर्ष इतने महीने और इतने दिन की है। वे तो बस यही लिखा करते हैं कि फलां आदमी इतने वजन की खुराक खाएगा। उतनी मात्रा की खुराक वह चाहे जितने सालों के लिए खींच ले, वह तब तक जिंदा रहता है। उसे चाहे तो वह सौ साल तक आराम से खा कर खत्म करे चाहे जल्दी जल्दी तीस साल में खाकर प्रस्थान भी कर जाए।"

दिनों के हिसाब को काटकर उसे वजन के हिसाब में बदलने के लिए चिदंबरमपट्टि नायकर को तथा साथ ही ब्रह्माजी को भी बधाई देने का मन हुआ।

"सुनते हैं कि यमराज कभी अपने ऊपर दोषारोपण नहीं लेता, इसका क्या आधार

है?" किसी ने बलराम नायकर से प्रश्न किया। इस पर उनका कहना था : "जब यमराज का कार्यभार बढ़ गया तभी उसने अपने अधीन दूतों को नियुक्त कर लिया। उसके बाद जब देखा कि इससे भी काम का बोझ नहीं घटा तो रोगाणुओं का—इसके अनंत प्रकार हैं, सहारा लिया। उसके योगदान के अलावा अपने आप मरने वालों की संख्या शामिल नहीं है।"

"सो कैसे?" अगला सवाल उठा। "अरे, तुम्हें यह भी नहीं पता, भय नाम की एक चीज है न?" यों पूछते हुए नायकर ने अपनी अंटी में खोंसी सुंघनी की पोटली निकाली।

बलराम नायकर ने यदि सुंघनी की पोटली पर अपना हाथ रखा तो इसका मतलब है एक नई कहानी आने वाली है।

गंगा नदी में एक मुनिश्रेष्ठ नहा रहे थे। उस रास्ते से कुछ यमदूत कहीं जा रहे थे, वे उनकी आंखों में दिख गए। मुनिवर ने ताली बजा कर उन्हें अपने पास बुलाया। जब वे लोग आकर खड़े हुए—

"अभी सुबह हुई नहीं, कहां निकले जा रहे हो सब के सब?"

"काशी जा रहे हैं, बड़ी जल्दी है।"

"जल्दी? क्यों क्या काम है?"

"एक हजार लोगों के प्राण निकालने हैं।"

"क्यों, कहीं कोई लड़ाई छिड़ने वाली है?"

"नहीं, अतिसार ...."

"अच्छा, ठीक है .... चले चलो।" मुनिवर ने उन्हें जाने दिया।

शाम को उनके कानों में यह खबर सुनाई दी, "काशी में अतिसार के कारण दो हजार लोग मर गए।

अगले दिन मुनिवर पुनः गंगा में स्नान कर रहे थे। वे यमदूत लौट रहे थे। ताली बजाकर बुलाया।

"क्यों दूतों, बड़ा अन्याय हो गया न !.... तुमने कहा था एक हजार जानें निकालनी हैं और निकाली हैं दो हजार जानें। क्यों?" मुनिश्रेष्ठ ने पूछताछ की।

"स्वामिन, इसके लिए हम क्या करें? .... हमने तो एक हजार ही जानें ली थीं। इसे देखकर डर के मारे मरने वालों की संख्या अतिरिक्त एक हजार हो गई।" दूतों ने कहा। (मैंने समझ लिया, हां यह बात है !....इसी कहानी से "डर डर कर मरना" वाला मुहावरा चल पड़ा होगा।)

कहते हैं, यमराज बड़ा भला होता है। वह बड़ा सावधान रहता है कि मौत का इल्जाम उसके सिर न मढ़ा जाए।

"बुखार आया, मर गया।"

"छाती में दर्द हुआ, चल बसा।"

"पैर फिसल कर गिरा, प्रस्थान कर गया।"

"अपने को भूलकर दुनिया में अंधाधुंध नाचा, 'आउट' हो गया।"

इस तरह के जुमले सुनाई देंगे, पर कोई नहीं कहता, यम आया इसलिए मृत्यु हो गई।

"समय कुसमय" में किसी की दृष्टि में पड़ जाने से जो बवेला उठ खड़ा हुआ उसका वृत्तांत चिदंबरमपट्टि नायकर ने भी सुनाया, अपनी उंगलियों की चिउंटी में इत्ता-सा तंबाकू का चूरा लेकर उसे अपने दांतों तले दबाते हुए।

वह कहानी इस तरह है। एक संन्यासी था, भिक्षा के लिए किसी घर के द्वार पर खड़ा था। घर के अंदर प्रसूति हो रही थी। "हट जाओ, रास्ता छोड़ो" यह आवाज सुनकर संन्यासी ने फिर कर देखा। हाथ में लेखनी लिए ब्रह्माजी खड़े थे।

"रास्ता नहीं दे सकता" संन्यासी ने मना कर दिया।

"यह सब खेल-तमाशा बाद में, पहले रास्ता छोड़ो। अभी बच्चा होने वाला है। उसका 'शिरोलेख' लिखकर अभी आ जाता हूं।" ब्रह्माजी ने व्यस्तता दिखाई।

"एक शर्त है.... तुम जब लौटोगे, मुझे अवश्य बताओगे कि उस शिशु के सिर पर तुमने क्या लिखा? तभी मैं रास्ता छोड़ूंगा।" संन्यासी ने जिद पकड़ ली। ब्रह्माजी शर्त मान गए और भीतर हो आए।

"यह लड़की अपने शरीर से परिश्रम करके नहीं खाएगी, अपना शरीर बेचकर जीवन-यापन करेगी, ऐसा मैंने लिखा है" यों कहते हुए ब्रह्माजी वहां से उस जगह की ओर भागे जहां अगला बच्चा पैदा होने वाला था।

संन्यासी के मन में सदमा हुआ, जब लिखते ही हैं, सोच-समझ कर अच्छे ढंग से क्यों नहीं लिखते? यो जल्दी जल्दी में और कुलच्छन भरे ढंग से लिखकर क्यों भाग रहे हैं ब्रह्मा .... इनके साथ कुछ भी किया जाए कम ही होगा। संन्यासी ने दांत पीस लिए, उनके मन में बदले की भावना जग गई।

उस घर के लोग इतने व्यस्त थे कि प्रसूति के बाद ही उनकी दृष्टि संन्यासी पर पड़ी। अंदर से कोई महिला भिक्षा का अन्न लेकर आई। संन्यासी ने पूछा, "मां। अभी जो बच्ची पैदा हुई है, उसकी तुम कौन लगती हो?"

वह महिला विस्मित रह गई .... "इन्हें कैसे पता चला कि हमारे यहां नवजात शिशु 'बालिका' है। अवश्य ही ये कोई बहुत बड़े महापुरुष हैं।" यों सोचते हुए महिला ने उत्तर दिया, "स्वामिन, अभी जो बच्ची पैदा हुई है उसकी मैं नानी लगती हूं।"

"क्या मैं शिशु को देख सकता हूं?" संन्यासी ने पूछा। वह उन्हें अंदर ले गई और नवजात शिशु को दिखाया। संन्यासी ने उसे देखकर सोचा, बालिका अभी से इतनी लक्षण-संपन्न है, जब वह बड़ी हो जाएगी तो सर्वांग-सुंदरी के रूप में ध्वजा फहराएगी।

किंतु ऐसी लक्षण-युक्त कन्या क्यों अपना शरीर बेचकर जीवन-यापन करे? संन्यासी को लगा कि यह बड़ा अन्याय है।

उस महिला को एकांत में ले जाकर संन्यासी ने बात खोल दी और इसकी एक प्रतिविधि भी सुझायी। संन्यासी ने कहा, "बड़ी होने पर ऐसा ऐलान कर दो, जो व्यक्ति टोकरी भर असली मोती लाएगा, वह एक दिन के लिए इसे पा सकेगा।"

टोकरी भर असली मोती कहां से लाया जाए?

विश्व विश्रुत पांड्य-महाराज स्वयं चला जाए तब भी चलने वाली बात नहीं है। रोज एक एक टोकरी मोती के लिए वह भी कहां जाएगा? संन्यासी ने यही हिसाब लगाया था कि इस वृत्ति में किसी न किसी रूप में विघ्न आ जाए।

लेकिन जो वृत्तांत हुआ, वह कुछ दूसरा ही था।

यों कहकर चिदंबरमपट्टि नायकर ने उपस्थित सभी लोगों पर विजय भरी मुस्कान के साथ दृष्टिपात किया। उनकी दृष्टि मानों चुनौती दे रही थी, "कौन सी बात आगे घटित हुई होगी, उनमें से कोई इसका अंदाजा लगा सकता है?" सब लोग चुप। नायकर ने आगे की कथा सुनाई :

"ब्रह्माजी के लिखे लेख को ब्रह्माजी भी नहीं मिटा सकते। अनेक वर्ष बीत गए इस घटना को, संन्यासी भी इसे भूल गए थे।

एक दिन तूत्तुकुडी* के समीप सागर तट पर वही संन्यासी हवा खाते हुए टहल रहे थे। उस समय उनकी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी जो बार बार समुद्र में डुबकियां ले रहा था। वह कौन हो सकता है जो इस वक्त समुद्र में डुबकी लगा रहा है। उन्होंने गौर किया तो ....

वह साक्षात ब्रह्माजी ही थे। पास में जाकर पूछा, "क्यों जी, इस समय यहां क्या कर रहे हैं?" संन्यासी ने यह प्रश्न सहज ढंग से ही पूछा।

मालूम हुआ, ब्रह्माजी गुस्से से बावले हुए जा रहे हैं।

"अबे संन्यासी, तुम्हें यह संन्यास कहीं शोभा देता है? अपना आदमी जान कर मैंने उस दिन तुम्हारे सामने एक अंतरंग बात खोल दी तो तुमने उसे उन लोगों को बताकर.... अब नौबत यह आ गई है, मुझे स्वयं प्रतिदिन टोकरी भर मोती जमा करने पड़ते हैं और मुझे स्वयं ही .... प्रतिदिन .... अपनी लेखनी की सच्चाई साबित करने के लिए .... इस हालत में पहुंचा दिया है तुमने मुझे .... चलो हटो यहां से .... अपना यह काला मुंह लेकर। कुछ भी हो जाए मेरे .... सामने मत खड़े रहना ...." यों कहकर टोकरी भर मोती उठाते हुए जल्दी जल्दी निकल गए ब्रह्माजी।

बलराम नायकर और हम सब लोग इतना हंसे, इतना हंसे कि हमारे पेट में बल पड़ गए।

---

* तमिलनाडु का प्रसिद्ध नगर जहां के समुद्र तट से हजारों वर्षों से मोती निकाला जाता है।

बातें अजीब अजीब!

1

बाहर से जब कोई व्यक्ति हमारे घर आए या हम लोग बाहर जाएं, तो अभिवादन के बाद पहला प्रश्न होगा, "बाल बच्चे सब ठीक हैं?" इसके बाद ही मौसम और वर्षा-पानी के प्रश्नों की बारी आती है।

परिवार-नियोजन पर इतने सारे विज्ञापनों के बावजूद इस देश के जन-साधारण की यही धारणा है, "संतान का होना अपने हाथ में नहीं है, यह तो भगवान की देन है।" मेरी जानकारी में उस जमाने में ऐसी माताएं हुई थीं जिन्होंने 'कोट्टै' संतानें जनी थीं। चौबीस की संख्या 'कोट्टै' कहलाती है। (हम लोग यह भी जानते हैं कि श्रीमती सुदामा ने इस रिकार्ड को भी तोड़ा था।)

उन दिनों महिलाएं यों डींग हांकती थीं, "मैंने एक 'कोट्टै' बच्चे जने हैं, समझे?"

सात कोट्टै* बच्चों की जननी के संबंध में सुना है। देखने का सौभाग्य नहीं मिला है। गांधारी के रिकार्ड को भी इस महिला ने तोड़ डाला है। इस पर आजकल के लोग यही कहेंगे, "बाप रे, ऐसी बातों की कल्पना नहीं हो सकती, यह सब पुराण की बातें होंगी।"

उन दिनों घर में शिशु के जन्म पर, यदि वह बालिका हो तो इस तरह की "पूतों पली" महा-महिला को ही "चेनै" रखने के लिए निमंत्रित करते थे। यदि वह पुरुष-शिशु हो तो गांव के कीर्ति-संपन्न सज्जन को इस कार्य के लिए आमंत्रित करते।

"चेनै" का संस्कार इस प्रकार होता था : नवजात शिशु को नहलाने के बाद, एक छाज पर मुलायम घास से बुनी चटाई पर कपड़ा बिछाकर शिशु को उस पर लिटा के ले आते थे। मां की कोख के गुनगुने वातावरण में सुख-चैन से सोये पड़े शिशु के शरीर में एकदम बाहर की हवा लगने की वजह से उसे कंपकंपी सी महसूस हो रही है। गर्भ की "नाल" कट जाने की वजह से उसे अजीब तरह के एकांत का भी अनुभव हो रहा है। "देख लेना, मैं आप लोगों का क्या करने वाला हूं?" की मुद्रा में बंधी नन्हीं मुट्ठियां ...

---

*"सात कोट्टै" बच्चे - उन दिनों महिलाओं द्वारा द्रुत गति से बच्चे जनते जाने का वर्णन करते हुए तमिल के संत कवि पट्टिनत्तडिगल् गाते हैं : "भूतल का वक्ष चीर कर निकलते कीड़ों के समान, रे...." कुलबुलाते अनगिनत बच्चे जन लो रे....।"

सहम सहम कर उसका रोना ....।

"चेनै संस्कार" के लिए आगत व्यक्ति अपना अंग वस्त्र (दुपट्टा) कमर पर बांधे भव्य-मुद्रा में है। उनके सामने कांसे की एक कटोरी में ताड़ का गुड़ और एरंडी का तेल का एक मिश्रण रखा जाता है। इसी को "चेनै" कहते हैं। उनके हाथ में लेखनी दी जाती है। वैसी लेखनी न मिलने पर आधुनिक समय की कलम दी जाती है। कलम की मूठ या लेखनी के नोक से वे उस "गुड मिश्रण" को स्पर्श करके बच्चे की जीभ पर छुआ देते हैं, साधारणतः तीन बार। प्रत्येक बार जीभ पर "चेनै" लगाते समय उपस्थित व्यक्तियों में से एक महिला प्रत्येक बार एक आशीर्वचन बोलती है : "श्वान जैसी बुद्धि मिले", "राजपुरुष जैसा वैभव हो," "भैंसे जितना बल मिले।"

व्यापक रूप से संस्कार यही होता है, किंतु आशीर्वचन में प्रदेश के अनुसार अंतर पाया जाता है। जैसे, "भैंसे के बल" के स्थान पर "हाथी जितना बल" कहा जाता है। लोगों की मान्यता है कि आगे चलकर वह बच्चा चेनै रखने वाले सज्जन के समान गुणवान और कीर्ति संपन्न होता है।

किसी किसी परिवार में जच्चा से ही पूछा जाता है कि चेनै रखने के लिए किसे बुलाया जाए। शिशु की मां अपनी पसंद के किसी व्यक्ति का नाम लेती है। (कहानी के लिए अच्छा मसाला है न?) यह कहना मुश्किल है कि हमारे देश में सरकार की कौन-सी योजना कितनी सफल हुई है? लेकिन मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि परिवार-नियोजन का कार्यक्रम काफी सफल हो गया है। इसे छोड़कर सरकार की कोई अन्य योजना गांवों के छोर तक पहुंच कर लोगों को स्पर्श नहीं कर पाई है।

किसी भी योजना को लें, जब वह पहले पहल गांव के अंदर प्रवेश करती है, उसे जनता की अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास से जूझना पड़ता है।

पुरुषों के लिए जो शल्य-चिकित्सा "वासेक्टेमी" की जाती है उसे गलती से "मर्दानगी हटाना" समझ कर कितनी ही औरतों ने आंसू बहाए।

छब्बीस साल पहले अपने गांव में पहले पहल मैंने "वासक्टेमी" करवा ली थी। इस घटना ने उस समय मेरे परिवार में हलचल-सी मचा दी। उन दिनों सरकार का नारा था, "बच्चे हों तीन ही : उससे ज्यादा कभी नहीं।" किंतु मैंने मान लिया, "अपने लिए दो ही बस हैं, और आगे बढ़कर मैंने शल्य-चिकित्सा करवा ली थी। इस पर मेरे मित्र भी मुझ से नाराज हुए थे।

उसके बाद सरकार भी यही कहने लगी "बच्चे दो काफी हैं।" (हम दो हमारे दो : संपत्ति के लिए एक, दुलार के लिए एक) अब सरकार का कहना है : "एक ही काफी है" (एक मां एक शिशु का नारा जोरों पर है।)

मेरे एक मित्र विनोद में कहते हैं, यही ढर्रा जारी रहा तो संभव है, थोड़े दिन बाद

सरकार हम से यह भी पूछ सकती है "आपको यह एक बच्चा भी क्यों चाहिए?"—फिर यह कहा जाएगा, "अनाथ आश्रमों में सुंदर सुंदर बच्चे मिलते हैं। वहीं से एक बच्चा खरीद लें। जो अनाथ आश्रम से बच्चा या बच्ची खरीदेगा उसे एक लाख रुपए का इनाम ! यही नहीं, उस बच्चे के लिए नर्सरी से लेकर आई.ए.एस. तक की शिक्षा का खर्चा भी सरकार के जिम्मे ! और सरकारी नौकरी में तरजीह ! आइए, शीघ्रता कीजिए।"

मित्र ने आगे जोड़ा "इसके सौ साल बाद .... बच्चों का अकाल (!) पड़ जाएगा। नौबत ऐसी आ जाएगी कि दुलारने-चुमकारने के लिए एक भी बच्चा कहीं ढूंढ़े नहीं मिलेगा। उसके बाद ऐसा जमाना भी आ सकता है जब सरकार जनता के सामने घुटने टेककर प्रार्थना करेगी, माताओ, बच्चे जनो ! बच्चे जनो !!"

यद्यपि इस कल्पना में अतिशयोक्ति है, किंतु इसमें रोचकता है। और बातों को जाने दीजिए, आजकल गांव की अनपढ़ औरतें भी इस विषय में अगुआ बन गई हैं। गाय चराने वाले उच्चिमलैयान के चार-पांच बच्चे हैं। उसकी घर वाली मरुदानी अम्मा को लगने लगा कि इतने बच्चे काफी हैं, इनसे ज्यादा नहीं चाहिए। उच्चिमलैयान को इन चीजों की चिंता या परवाह नहीं है। वह तो बस सुबह उठता है, हांडी में लप्सी(कंजी) लेकर गाएं हांकते हुए जंगलों-चरागाहों में दिन-भर घूमता है, और शाम तक तलैया के किनारे पहुंच जाता है। गायों को तलैया के अंदर हांकने के बाद वह किसी पेड़ की छांह में थकान उतारने के लिए बैठ जाता है अपने पांव पसारते हुए। गाएं भी उथले पानी में लेटकर थकान मिटाती हैं। यही वह समय होता है जब उच्चिमलै को गांव और देश की दो चार खबरें सुनने को मिलती हैं। उसे बोलने की भी जरूरत नहीं पड़ती, दूसरों की बातचीत अपने आप उसके कानों तक पहुंचती है। उस दिन उसके कानों में जो बात पड़ी, वह उसकी घरवाली के संबंध में थी।

"मरुदानी अम्मा" का नाम सुनते ही उच्चिमलै ने कान खड़े कर लिए। उसे इस बात की जानकारी मिली .... "मरुदानी अम्मा ने आज कोविलपट्टी जाकर "लूप" लगा लिया है। अब उच्चिमलै के बच्चे पैदा नहीं होंगे।" यह समाचार सुनते ही उच्चिमलै एकदम चौंक गया।

"अरे बड़ी चंट निकली वह। .... गजब कर दिया न ! .... रहने दो .... घर जाकर देख लूंगा उसे" यों सोचते हुए गायों को उसने जल्दी जल्दी घर की ओर हांका।

मालिक की गोशाला में गायों को बांधने के बाद, घर जाकर वह मरुदानी पर पिल पड़ा, "किससे पूछकर ऐसा काम किया तूने?"

मरुदानी को ऐसा नहीं लग रहा था कि उसने कोई गलत काम किया हो। फिर भी पति की नाराजगी देखकर अब उसे महसूस होने लगा कि पहले ही उससे पूछ लेना चाहिए था। मान लें कि वह पूछना चाहे, लेकिन वह घर में कहां बैठा था, सुबह सवेरे मवेशी लेकर

चला गया था। उसके बाद गांव में मुख्य सेविका आई। उसने बात समझाई, सही लगी। गांव की दूसरी औरतों के साथ वह भी चली गई थी, और वापस आ गई। ऊपर से पैसे भी मिले, खर्चे के लिए अलग से।

क्या हो गया है इस मर्द को? चिल्ला चिल्ला कर आसमान सिर पर उठा रहा है। मर्द क्या जाने प्रसव की पीड़ा? सारी परेशानी औरत को उठानी पड़ती है। मुर्गे के पेट में दर्द कहां होना है, हाल तो मुर्गी का बेहाल होता है।

"मैंने ऐसा कौन-सा नया काम कर दिया .... जो दुनिया में चार जनों में नहीं चलता? जैसे सबने किया, मैंने भी कर लिया .... चुपचाप चल के अपना काम देखो ....।" बस, इतना सुनना था कि उच्चिमलै का क्रोध अंड-बहिरंड में टकराकर प्रतिध्वनित हुआ। "साधु आदमी का क्रोध बरदाश्त के बाहर हो जाता है" वाली कहावत को सच बनाते हुए उसने घरवाली की खूब मरम्मत कर दी। बेचारी मरुदानी चीखती-चिल्लाती गलियों में भागती हुई उच्चिमलै के मालिक के यहां पहुंच कर उनके सामने रोने लगी, "मालिक ! आपके उच्चिमलै को पता नहीं क्या हो गया है, देखिए मुझे इस तरह से पीट दिया है, देखिए मुझे इस तरह से पीट दिया। बुलाकर पूछिए न !"

जब वह अपना दुखड़ा रो रही थी, इत्तफाक से मैं उनके यहां मौजूद था। इसे पति-पत्नी के बीच कोई झगड़ा समझकर मैं वहां से उठकर चला आया।

अगले दिन कुएं के पास मुझ से मिलते ही मित्र हंसने लगे, "भाई साहब। कल शाम को आप मेरे यहां से क्यों उठ कर चल दिए? और थोड़ी देर रहते तो आपको भी मजा आता। सच्ची में मजेदार बात है उच्चिमलै की।" कहते कहते हंस रहे थे और हंसते हंसते बोल रहे थे, "मैंने उच्चिमैले से जब पूछा, "अबे, क्यों पीटा था अपनी जोरू को?" कहने लगा, "मालिक, आप ही बताइए न? आपको भी पता है मैं दूसरों की तरह ऐसा-वैसा घूमने वाला आदमी नहीं हूं। मैं तो यही मानता हूं मालिक, मेरे लिए वह है और उसके लिए मैं हूं .... चुड़ैल की बच्ची आज ऐसा काम करके आई है, देखिए न ...." आंसू बहाते हुए वह रोने लगा।

"अरे पगले ! इससे तो तेरे लिए और पूरे परिवार के लिए फायदा ही हुआ।" मैंने उसे समझाया। "सो कैसे मालिक .... आपकी बात समझ में नहीं आ रही ....। बताइए मैं अब क्या कर सकता हूं ....? औरों की तरह मैं ऐसा-वैसा घूमने वाला होता तो किसी तरह सम्हाल लेता। मैंने आज तक उसे छोड़कर और किसी भी औरत पर नजर नहीं उठाई है मालिक ! .... अब मैं क्या करूंगा! शैतान की बच्ची ऐसा करके चली आई है .... अब हालत ऐसी हो गई कि कुछ नहीं हो सकता ...." दुख से उच्चिमलै की बोलती बंद हो गई।

मैं अपनी हंसी नहीं रोक पाया। मित्र भी हंस रहे थे।

फिर मित्र उसे एकांत में ले गए थे और विस्तार से बात समझाई। तब जाकर उसका दिमाग सुलझा था। कहने लगे, जाते समय उच्चिमलैयान बहुत खुश नजर आया। बोला, "मुझे पता नहीं था न? मैं क्या जानूं .... उस गधी ने भी ठीक से नहीं समझाया।" लज्जा व शर्म के मारे उसका चेहरा लाल हो रहा था, बोल भी रहा था, "जाने दीजिए मालिक, शर्म वाली बात है।"

उच्चिमलै खुशी के मारे कैसे लजाते हुए चला, मित्र ने स्वयं उसकी नकल करके बताई।

2

सुना है न "किसी का अंत किसी का जहर होता है।" इसी तर्ज पर किसी के लिए सुगंध दूसरे के लिए दुर्गंध भी होती है। अगर कोई धनिये की पत्ती, पुदीना और बादाम खीर सूंघकर मुंह बनाते हुए बोले कि इनसे "खटमल की बू" आती है तो आप उसके बारे में क्या सोचेंगे?

करिसल काडु का रहने वाला तो धनिया-पत्ती की चटनी पर मरता है। मदनपल्ली के आरोग्यवरम सानटोरियम में जब मैं बीमारी की हालत में कुछ समय रहा था—यह 1950 की बात है—यहां से इरुलांडी नामक रसोइया साथ में ले गया था। (पाठकों के मनोरंजन के लिए इरुलांडी के बारे में बाद में विस्तार से लिखूंगा, बड़ी दिलचस्प कहानी है।)

उस दिन इरुलांडी बाजार से लौटते हुए खूब सारी हरी हरी धनिया-पत्तियां ले आया। ताजी पत्तियों को देखकर वह खुश था, साथ साथ मुझे भी खुशी हो रही थी। कितने दिन बाद ऐसी हरी-ताजी धनिया-पत्तियां देखने को मिली हैं।

अमूमन जब यह बाजार में आती है, कुम्हलाई-सी रक्ताल्पता से ग्रस्त लड़की-सी हल्के पीत वर्ण में दिखाई देती है। लेकिन यहां पर यह इतने गहराए हरे रंग में, रोग के आघात के बिना, करिसल काडु जैसी ही मिलती है, यही हमारे आश्चर्य का कारण था

दोपहर के भोजन में धनिया-पत्तियों की चटनी थी। यह भोजन में शिखर बन गई थी ब्रह्मानंद आ गया। पास वाले वार्ड में शिवाजी राव नामक कन्नड़भाई थे। ये अच्छी अच्छी चीजें खाने के लिए अपनी जीभ तराशते रहते। इसलिए मैंने उनके लिए थोड़ी-सी चटनी भेजी थी। मैंने सोचा, इस जन्म में ऐसी चटनी चखी तक नहीं होगी। मैंने प्रतीक्षा की जब वे शाम को इधर आएंगे, जरूर धनिया-चटनी की तारीफ में कन्नड़ में एक कविता बनाकर जाएंगे।

पधारे शिवाजी राव शाम को, मुंह बनाते हुए।

"अजी, कैसी चटनी भेजी आपने? .... खटमल की बू आ रही थी ....।"

उस समय इरुलांडी वहां पर नहीं था।

"मैं कल पुदीना चटनी बनवाकर भेजूंगा, चखकर देखिए ...." यों कहते हुए शिवाजी राव चले गए। हालांकि मेरी नाक और जीभ पुदीना का स्वागत करेंगी ही, फिर भी उनके द्वारा धनिया-पत्ती की चटनी का यह जो अपमान हुआ, उससे मन खट्टा हो रहा था। फिर भी उन्हें "बीमार आदमी" मानकर मैंने माफ कर दिया।

अगले दिन दोपहर के समय मैं कुछ लिख रहा था सिर झुकाते हुए .... "देखो यह मैं आई" कहते हुए पुदीना की सुगंध आई। शिवाजी राव के रसोइये ने प्रसन्नमुद्रा में पुदीना चटनी लाकर मेज पर रख दी। उसे तमिल नहीं आती, यदि हंसते हुए गाली भी दी जाए तो समझेगा कि तारीफ हो रही है।

कटोरी का ढक्कन उठाकर देखा। पुदीना की सुगंध ही अनोखी होती है, एकदम क्षुधा-वर्धक। वह सुगंध वाकई बेमिसाल है। मेरे एक मित्र कहा करते हैं कि छिलका उतारने के बाद कटे पपीते के टुकड़े थाली में भरकर खाते समय उसमें से जुही की सुगंध आती है। इसी तरह और किसी वस्तु के माध्यम से ही पुदीने के स्वाद का वर्णन हो सकता है। चटनी में उंगली डालकर मैंने चख के देखा।

"पट्ठे ने कमाल कर दिया है!" यों मन ही मन राव के रसोइए की तारीफ करने लगा। तभी इरुलांडी ने प्रवेश किया। उसने नाक सिकोड़ते हुए पूछा, "यह क्या है?" मैंने कटोरी उसकी तरफ बढ़ाई। "छिः मुझे पसंद नहीं है .... खटमल को कुचलकर सूंघने जैसी दुर्गंध ...." वह नाक सिकोड़ता गया।

अब बादाम-खीर की बारी है ....

अलगिरि सामी जब पहले पहल मद्रास गया था, एक बड़े विवाह-समारोह में शामिल होने का मौका मिला। भोजन के समय बादाम-खीर परोसी गई। लोगों ने "लाओ, और लाओ।" करते हुए बादाम खीर खाई थी।

"पता नहीं कैसे छक रहे थे लोग। .... खटमल की बू आ रही थी।" अलगिरि सामी ने मुझे बताया।

(इसके बाद कितनी ही बार संध्या समय मद्रास गोविन्दप्पनायकन गली के "आर्य भवन" होटल में बैठकर हम दोनों ने बड़े प्रेम से बादाम हलवा खाया है। लेकिन बादाम खीर के साथ प्रथम परिचय में उसकी राय कुछ वैसी ही थी।)

यह सब कोई बात नहीं है, कुछ लोगों को मट्ठा पसंद नहीं होता। "दूध मिली-कॉफी? हटाओ, नहीं चाहिए" कहने वाले लोग भी मिलेंगे। दुग्ध-परिवार से उसकी शत्रुता-सी है। विवाह के बाद मेरी पत्नी जब मेरे यहां आई थी, शुरू शुरू में वह दूध नहीं पीती थी। भात के साथ दूध मिलाकर खाने की मेरी आदत उसे अजीब लगती थी। इस आश्चर्य से मुक्त होने में उसे एक अर्सा लगा।

मेरे घर आने वाले मेहमानों में कुछ लोग भात के साथ घी पसंद नहीं करते। उनका

मुंह देखकर लगता, मानो सोच रहे हों "यह क्या बला है?"

पैंतालीस साल पहले मैं और अलगिरि सामी दोनों ने तिरुवनंतपुरम के एक होटल में बैठकर इडली मंगाई। बैरा ने इडली पर नारियल का तेल डाल कर अचंभे में डाल दिया।

मट्ठे को मना करने वालों को देखकर हमें जितना अचरज होता है, उससे भी ज्यादा अचरज उन लोगों को देखकर होता है जो खटास-भरे कुछ बदबूदार मट्ठे को भात में मिलाकर प्रेम से खाते हैं। कितने कितने किस्म की जीभें हैं !

मेरी जान-पहचान में एक शिकारी हैं। कहते हैं .... किसी जानवर को मारने के बाद बाघ एकदम उसे नहीं खाता। पहले खून पीकर सिर्फ जिगर खाता है, फिर प्रतीक्षा में बैठा रहता है, जैसे कि हम फल को खूब पकने के बाद खाने के लिए बैठे रहते हैं। जब उसमें से "बू" आने लगती है तभी बाघ उसे प्रेम से खाता है।

अलगिरि सामी कहता है .... "मलेशिया के एक खास वर्ग के लोग घोंघे, सीपी वगैरह खाते हैं। कहता है, घोंघे पकाते हुए उसमें से जो 'बू' निकलती है वह हम लोगों के लिए असहनीय होती है। अलगिरि ने सलाह दी, और थोड़ी देर पकाओ तो यह बू खत्म हो जाएगी। इस पर उन लोगों ने समझाया, नहीं ऐसा नहीं करना चाहिए। यही तो इसका सही पाक है ....।" जब मैं भूमिगत जीवन* व्यतीत कर रहा था—मेकाडु के एक गांव में किसी परिवार के साथ मुझे रहना पड़ा था—उनके यहां बहुत सी गाय-भैंसें थीं। भैंसों से उनके खेत के लिए आवश्यक खाद मिल जाती थी। गांव उनके खेतों को जोतने के लिए पर्याप्त संख्या में बैलों का उत्पादन करती थीं। घर के आंगन में ही विशाल गोशाला बनी थी, उसमें गाएं खड़ी रहती थीं, ताकि सुबह उठते ही उनका मुंह देख कर "शगुन" करने में सुविधा हो। जब दुधारू गाएं गो मूत्र देती थीं उसे ये लोग अंजुली में भरकर सिर पर छिड़क लेते, उसे घर भर में छिड़क कर पवित्र बनाते थे। हर शुक्रवार को गाय के गोबर से घर लीपते थे, सफाई और पवित्रता की दृष्टि से। लेकिन उस घर का कोई भी सदस्य दूध, मट्ठा, घी इत्यादि को "छूते" तक नहीं थे।

अपने बच्चे के लिए दूध मांगते हुए द्वार पर आने वालों को वे (मुफ्त में ही) दूध देते थे। फिर गाय-भैंसों को दुहकर बड़े बड़े भगोनों में दूध उबालते। गुनगुने दूध में "जामन" डालकर उसका दही बनाते थे।

बड़े तड़के दही मथने की आवाज सुनते हुए मेरी आंख खुल जाती। थोड़ी देर बिस्तर पर लेटे हुए उस पर गौर करता रहता।

आजकल इस तरह की बड़ी मथनी देखने को भी कहां मिलती है? मुझे अपने बचपन

---

*"भूमिगत जीवन" - जब कुमार स्वामी राजा तमिलनाडु के मुख्यमंत्री थे, "कोविलपट्टी तहसील साजिश" के नाम से पुलिस ने एक नया मुकदमा रचा था। उसमें लेखक एक प्रमुख प्रतिवादी थे। पुलिस के हाथ में फंसे बिना भूमिगत रहते हुए वे पार्टी का काम कर रहे थे।

के दिन याद आए, अपनी दादी मां द्वारा दही बिलोने का दृश्य मन में उभरा। (यहां पर भी दही बिलोने वाली एक दादी मां ही थीं।) प्रत्येक परिवार में उम्र के अनुसार काम की प्रतीक्षा में रहते हैं।

नारियल जितने आकार में मक्खन का गोला, दादी मां के हाथ में गेंद की तरह नाच नाच कर ढुलक रहा था। मक्खन से मट्ठा अलग करने की एक तकनीक है यह। मक्खन का वह रंग, और उसका वह स्वाद मुझे बहुत प्रिय है। वह भी जब मक्खन ताजा ताजा हो, मट्ठे से अभी अभी अलग हुआ हो।

जहां तक मुझे याद है .... "चित्रा" नामक अपने नाटक में रवीन्द्रनाथ ठाकुर किसी नायिका की उंगली के लिए ऐसे मक्खन की उपमा दे रहे हैं।

दादी मां मथनी पर लगे मक्खन को निकालती हैं। तब मुझे अपनी दादी मां की याद आ रही है जब वह इस तरह मक्खन निकालती उसके मुंह से "हे कृष्ण !" का संबोधन निकलता।

मथनी से मक्खन निकालते ही हरेक मां अपने बच्चे को वह मक्खन खिलाना चाहती है। इसके लिए वह अपने घर के बच्चों को, पोते-पोतियों को बुलाती है। लेकिन इस घर में बच्चों समेत कोई भी व्यक्ति मक्खन "छूता" तक नहीं। कहते हैं, जिस रमणी के पास काफी सारे गहने होते हैं उसके मन में उन्हें पहनने की इच्छा ही नहीं उठती। क्या उसी तरह इन लोगों को भी मक्खन से घृणा हो गई...?

मेरे पिताजी भोजन के समय मक्खन को सब्जी के स्थान पर खाते थे। जब भात हल्का हल्का गरम हो, घी की जगह मक्खन डालकर उसमें मिलाते और "करी" के साथ खाते। जिस दिन क्षौर-कर्म करवा लेते, सिर पर मक्खन लगाकर स्नान करते थे। बाकी दिनों में मट्ठा लगा कर नहाते थे।

जिस कढ़ाई में घी बनाया जाता है उसकी तलछट पर थोड़ा-सा घी शेष रहता है। दादी मां इस कढाई में सेंजनी की पत्ती, पान, छोटा जीरा आदि के साथ भात मिलाकर उसके गोले बनातीं। हम सबको खिलातीं। घृत-मिश्रित इस अन्न के लिए घर के सब लोगों में "होड़" लग जाती थी।

लेकिन इस घर में लोगों को मट्ठे से भी परहेज है। उस रात को जब मैं भात में दूध मिला कर खाने लगा तो सारा घर जमा हो गया मेरे इर्द गिर्द, तमाशा देखने के लिए।

अड़ोस-पड़ोस वालों के बर्तनों में डालने के बाद घड़े में बाकी सारा बचा मट्ठा ले जाकर ये लोग मवेशियों को पानी पिलाने के लिए बने हौज में डाल देते हैं।

एक दिन मैं कहीं बाहर जाकर घर लौटा। देखा कि घर निर्जन था, एक "बच्चा" तक नहीं मिला। "सारे के सारे लोग कहां चले गए?" इसका उत्तर देने वाला भी नहीं मिला। अंदर जाकर देखा, अकेली वह दादी-मां अंगीठी के पास बैठी मिलीं। मैंने पूछा, "सब लोग

कहां गए हैं ....?" उत्तर मिला, "बेटा, मैं घी निकाल रही हूं न, इसलिए सभी लोग बाहर चले गए।"

सुना, उन्हें चूंकि घी की गंध पसंद नहीं है, घी बनाने के दिनों में सब के सब बाहर चले जाते। "पछवा चले तो पश्चिम वालों को, पुरवैया चले तो पूरब वालों को।" बेचारी दादी मां की यह "ड्यूटी" बन जाती है, वही अंगीठी के सामने बैठे नाक को उंगली से दबाते हुए जैसे-तैसे मक्खन उबालकर घी बनाए। यद्यपि उसे भी घी की बू पसंद नहीं है, घी को पैसा बनाने के लिए उसे इस काम में मजबूरन बैठना पड़ता है ....।

इस घर में दादी मां सहित सभी जनों को घी की बू पसंद नहीं है, लेकिन इन सभी को "सूखी मछली" बहुत पसंद है, यह राज बाद में खुला।

दिखा दिया अंगूठा

1

हमारे समुदाय में विवाह संस्कार के अवसर पर मांगल्य-धारण के पूर्वांग के रूप में एक प्रथा चली आ रही है। वर-वधू किसी क्षीर-वृक्ष की डाल रोपकर उसे सींचते हैं, उसके बाद ही मंगल-सूत्र बांधा जाता है। इस रस्म का यथार्थ तात्पर्य लोग भूल चुके हैं, लेकिन रस्म की अदायगी बदस्तूर चालू है।

हर कोई पेड़ इस तरीके से लग नहीं सकता, क्षीर-वृक्षों में ही यह खासियत पाई जाती है कि डाल काटकर रोपिए तो जड़ें आ जाती हैं। पीपल, बरगद आदि इस किस्म के पेड़ों की लकड़ियां ईंधन की तरह नहीं जलाते, न इनके तने चीर कर तख्ते और तीरे मकान बनाने के काम में लेते हैं। ये हमारे लिए पूजनीय वृक्ष हैं, हमारे बुजुर्गों का कहना है, नीचे झड़ी सूखी लकड़ियों को जलाना भी "पाप" है केवल विशेष पर्वों पर "हवन" के लिए "समिधा" के रूप में इनका उपयोग किया जा सकता है। काली माटी के अंचल में आप किसी भी गांव में जाइए, पोखर-तालाब के किनारे पीपल, बरगद, नीम, अंजीर "कल्लत्ति" वगैरह पेड़ कतार के कतार लगे दिखाई देंगे।

ग्रामीण अंचल में एक कहावत है, "कोई पौधा न मिले तभी लगाना इमली।" गांव वालों का विश्वास है कि इमली का पेड़ सेहत के लिए नुकसानदेह होता है। इसी सिलसिले में एक कहानी प्रचलित है कोई बेटा अपनी बूढ़ी मां को गांव में अकेली छोड़कर काशी-धाम की तीर्थ यात्रा पर निकला। बुढापे और कमजोरी की वजह से मां लंबी यात्रा के काबिल नहीं रही। लेकिन बुढ़िया अपने बेटे के बिना रह भी नहीं सकती थी। उस जमाने में लोग पैदल चलकर ही तीर्थ करते थे। उन दिनों धुर दक्षिण से कोई काशी यात्रा पर निकल जाए तो बहुधा वह लौटता नहीं था, इक्का-दुक्का कोई लौटे आवे तो लोग इसे उसका पुनर्जन्म मानते थे ! इसलिए अपने जवान बेटे के वियोग की कल्पना से मां का दिल कलपने लगा। वह चाहती थी, अपने अंत समय में बेटा साथ में रहे। पर बेटा था अपने इरादे का पक्का ! तब मां की अकल ने एक चाल चली। अपने बेटे को उसने यों नसीहत दी, "बेटे, यात्रा पर चलते हुए इमली की छांह में विश्राम किया करो, और वापसी यात्रा में नीम तले आराम करना।" पुत्र ने मातृवचन को वेद-वाक्य मान लिया और वादा किया कि ऐसा ही करूंगा।

दुपहरियों में वह नियमपूर्वक इमली के नीचे लेटकर आराम करता। नतीजा यह हुआ कि जल्दी ही वह बीमार पड़ गया, हालत इस कदर बिगड़ गई कि यात्रा जारी करना मुश्किल हो गया। ऐसी अवस्था में जैसे कि साधारण तौर पर होता है, उसे भी "जननी और जन्मभूमि" (अपने गांव) की याद सताने लगी।

वह उल्टे पांव लौट पड़ा। मातृवचन का पालन करते हुए वापसी यात्रा में वह नीम तले विश्राम करता आया, नीम की पावन वायु धीरे धीरे उसे निरोगता ~~की स्थिति में ले~~ आई। मां की प्रतीक्षा के अनुसार बेटा मां के पास लौट आया।

इस जमाने में हमारे बुजुर्ग खेत-खलिहान में कड़ी मेहनत के बाद थकान मिटाने के लिए तालाब किनारे पेड़ की छाया में थोड़ी देर लेट जाते थे। इसे उन्होंने नित्य का नियम-सा बना लिया था।

गांव के पश्चिम में एक जंगल है। छियानवे एकड़ में फैला हुआ यह विस्तार "उडै" वृक्षों का घना जंगल है। ऊंचे घने पेड़ जिनकी डालें विशाल छतरियों की तरह फैली थीं। इन पर कुंदरू की बेलें भी चढ़ी होती थीं। जिससे पेड़ तले दुपहरियों में छलनी जैसी छाया नहीं, बल्कि निबिड़ घनी छाया पड़ी रहती थी, जैसे धूप से डरी छाया के लिए एकमात्र शरण-स्थल यही हो। दोपहर के समय भी काली घनी अंधियारी, गर्मियों में भी सुहावनी ठंडक! दूर से ही झींगुरों का झंकार सुनाई देता था—सम-स्थायी में, कानन के संगीत के समान।

"उडै" वृक्षों की शाखाएं ही वे सीढ़ियां थीं जिन पर पग धरते हुए वर्षा सुंदरी धरती पर उतर आती थी। यहां के लोगों की मान्यता थी कि मौसमी वर्षा के लिए "गुरुमलै" पहाड़ हैं तो ग्रीष्म की वर्षा के लिए "उडै" वन। यही वजह थी कि 1876 का धातु संवत्सर का अकाल (यह अकाल 12 साल तक जारी रहा) हमारे गांव में कदम तक नहीं रख सका। हमारे पूर्वज सीना ताने अभिमान के साथ कहते थे, "सूखा-अकाल पड़े सारे अंचल में, अछूता रहेगा इडैचेवल-चत्तिरपट्टी।"

भूखे दानव की तरह आ धमका दूसरा विश्वयुद्ध।

उस भूखे दानव ने केवल मानव ही नहीं खाए, वह वृक्षों को भी "स्वाहा" करने लगा। पेट्रोल की कमी हुई तो पेट्रोल से चालित मशीनों को कोयले से जलाने की नौबत आ गई। जो मशीनें कोयले पर चलती थीं वे लकड़ी के कोयले पर उतर आईं। और तभी से शुरू हुआ कोयला बनाने के लिए जंगल के पेड़ों को अंधाधुंध काटने का सिलसिला।

कोयले के लिए मानव महामारी के कीटाणु बनकर पेड़ों पर हावी हुआ और जड़ समेत उन्हें नष्ट करने लगा। मनुष्य को देखते ही पेड़ थर थर कांपने लगे। मानव जाति और वनस्पति के बीच में अब तक जो सौहार्द और स्नेह संबंध चला आ रहा था, सबका खात्मा हो गया। उस समय से अपने कंधे पर कुल्हाड़ी लटकाये आदम का बच्चा भूखे भेड़िये की

भांति भटकने लगा, वृक्षों के शिकार में, उनके संहार के लिए। वर्षा रूपी मोहक शिशु के नीचे उतरने के लिए हरियाली की जो सीढ़ी बनी थी उसे मनुष्य ने काट कर हटा दिया था। जहां तक नजर जाती थी आग, धुएं और धुंध के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता था। वृक्षों का रोदन-स्वर इंसान के कानों को बिलकुल सुनाई नहीं दिया। हमारे "उडै" वन में अब एक भी वृक्ष शेष नहीं है। उसके बाद वह काली माटी अंचल में तालाब किनारे लगे वृक्षों का भक्षण करने लगा। फलतः अब यहां पर बैठने के लिए छांव का नाम तक न रहा।

अब तो वर्षाऋतु में भी नीर-भरे नीले बादल हमारे खेतों के ऊपर से बिन बरसे ही निकल जाते हैं जैसे कि कोई "थ्रू मेल" गाड़ी छोटे छोटे स्टेशनों को धता बताते हुए भाग जाती है। हम लोग आसमान की तरफ हाथ उठाए रह जाते हैं।

जैसे बाज के पंजे में फंसा चूहा गलती से कभी नीचे गिर जाता है, उसी तरह कभी कभार भूले भटके एकाध बारिश मिलती है, वह भी असमय में।

तगड़ी बारिश के मौसम में हरी चादर ओढ़े सोने वाले पर्वत रूपी पिता की गोदी में निद्रा-लीन बादल शिशुओं का दृश्य अब हमारे लिए जैसे सपना बन गया।

हमने पेड़ क्या गंवाया, वर्षा भी गंवा बैठे यह बात हमारी मोटी अक्ल में काफी अरसे के बाद अब घुसी है। देश काल के परिवर्तन से काली माटी की फसल का उगना भी बंद हो गया और सूखे खेतों पर जगह जगह दरारें पड़ गईं, एड़ी-तलवों पर बिवाई की तरह। हालत इस तरह खस्ता हो गई कि चाहे जो भी कलाबाजी करके देख लें अब काली माटी की फसल नहीं उगेगी।

ऐसे में एक दिन समाचार पत्र में प्रकाशित इस विज्ञापन पर मेरी नजर पड़ी "पैंतालीस करोड़ रुपए की लागत में वन रोपण की योजना।"

स्वीडन के सहयोग से तमिलनाडु राज्य का वन-विभाग वन रोपण योजना को क्रियान्वित करने वाला है।

सम्पूर्ण तमिलनाडु में वृक्ष लगाने की इस योजना से राज्य भर में 5000 गांव लाभान्वित होंगे। इस योजना के तहत प्रत्येक परिवार को 500 पौधे निःशुल्क दिए जाएंगे। जो परिवार पौधे प्राप्त करेगा, उसे अपनी जिम्मेदारी पर अपनी जमीन पर इन पौधों को लगाना होगा और हर तरह से इनकी सुरक्षा करके पेड़ के रूप में बड़ा करना होगा। अंत में वह परिवाार स्वयं इसके फल का उपभोग कर सकता है।

पौधे लगाने के दो साल बाद जीवित वृक्षों की गिनती के आधार पर प्रति वृक्ष चालीस रुपए की दर से प्रोत्साहन राशि दी जाएगी। उस अखबार को हाथ में लेकर मैं कोविलपट्टी मंडल के समाज वानिकी कार्यालय चल पड़ा।

2

मंडल समाज वानिकी अधिकारी के हाथ में उक्त समाचार पत्र रखते हुए मैंने पूछा, "क्यों साहब, इस अखबार में छपा हुआ सारा विवरण सच है?" उन्होंने इसे पढ़ने के बाद मुझे आश्वस्त किया, "हां जी, सही है। यदि इच्छा हो, आप भी हम से पांच सौ पौधे ले जा सकते हैं, उन्हें वृक्ष के रूप में बड़ा करके धनराशि पा सकते हैं, जैसे कि इसमें छपा हुआ है।"

उन्होंने जो आवेदन पत्र दिया, मैंने तत्काल उसे पूरा कर दिया। मंडल अधिकारी ने वन राजिक कार्यालय के अधिकारी को उसी समय मौखिक आदेश दे दिया कि मुझे वांछित संख्या में पौधे मुहैया कर दें। वन राजिक कार्यालय के अधिकारी ने मुझे अपने कार्यालय में बुलाकर जमीन के बारे में कुछ आवश्यक ब्यौरे प्रस्तुत करने का निर्देश दिया, जैसे जिस भूमि पर मैं वन लगाना चाहता हूं उसकी पट्टा संख्या, चकबंदी संख्या, उसका क्षेत्रफल, मुख्य मार्ग से जमीन तक पहुंचने के लिए बैलगाड़ी मार्ग या पगडंडी का नक्शा वगैरह वगैरह। मैंने अविलंब ये सारे विवरण और कागजात तैयार करके उनकी सेवा में प्रस्तुत कर दिए।

(इसके बाद भी उन्होंने मुझे पौधे नहीं दिए। किसी न किसी बहाने घुमाते रहे। पौधों के चक्कर में मंडल कार्यालय और वन राजिक कार्यालय के चक्कर काटता रहा।)

ऐसा लगा कि वन विभाग के अधिकारी मुझे चकमा दे रहे हैं। कई दिनों की "परेड" के बाद एक दिन मुख्य मंडल अधिकारी मिल गए। मैंने उनसे फरियाद की "जनाब, पौधों के लिए भटकते भटकते मेरे पैरों में छाले पड़ गए हैं; यह देखिए, तलुए यों घिस गए हैं कि अंदर की सफेद नसें दिख रही हैं। क्या यह आपके विभाग को शोभा देता है?"

"अरे, यह क्या? अभी तक आपको पौधे नहीं मिले ....? मैंने उसी दिन आदेश दिया था कि पौधे मुहैया करें ...." उनके स्वर से आश्चर्य मिश्रित क्रोध टपक रहा था।

''कोई बात नहीं, अब आपको कष्ट उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं अभी इन्हें आदेश देता हूं कि ये लोग पत्र द्वारा निश्चित तिथि सूचित करें। उस दिन आकर आप पौधे ले जा सकते हैं।"

वन राजिक कार्यालय के अधिकारी ए. सुब्रह्मण्यम ने 9.10.82 की तिथि लगाकर मुझे एक पोस्ट कार्ड भेजा। उसमें लिखा था, "आप के लिए देय पौधे आवश्यक संख्या में हमारे पास उपलब्ध हैं। आप जब चाहें हमारे कार्यालय से उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।" साथ ही उन्होंने कार्यालय में उपलब्ध पौधों की जाति का ब्यौरा देते हुए प्रत्येक की उपलब्ध संख्या का उल्लेख भी किया था।

मैंने धन्यवाद देते हुए पत्र का उत्तर लिखा जिसमें अपने पहुंचने की तिथि भी जताई थी। पत्र को डाक में छोड़ने के बाद नियत दिन पर मैं बैलगाड़ी लेकर कोविलपट्टी उनके

कार्यालय पहुंचा। एक नौकर, गाड़ीवान और मैं स्वयं-तीन जने गए थे।

उस दिन न तो वन राजिक कार्यालय के अधिकारी उपस्थित थे, न मंडल अधिकारी ही। दफ्तर में पूछताछ करने पर हर बार यही जवाब मिलता रहा अभी आ जाएंगे, आते ही होंगे .... आने ही वाले हैं, आ ही रहे हैं। दफ्तर बंद होने के समय तक इंतजारी के बाद गांव लौटे।

गांव पहुंचने के बाद मैंने मंडल वन अधिकारी के नाम एक लंबा पत्र लिखकर भेजा, जिसमें अपने दिल का सारा बुखार उतार दिया था।

एक एक कचहरी और एक एक दफ्तर के सामने यों इंतजारी में पूरे हिंदुस्तान में कितने लाख मानव-शक्ति के दिन व्यर्थ चले जाते हैं।

अगर कहीं कोई हड़ताल हो जाए तो सरकार उसी दिन जनता के सामने आंकड़े प्रस्तुत करती है कि इस हड़ताल के फलस्वरूप सरकार और जनता का इतना नुकसान हुआ। लेकिन सरकार यदि पूरे देश में प्रतिदिन इंतजारी में जाया होने वाले घंटों और मानव-शक्ति के आंकड़े भी प्रकाशित करे तो उपयोगी रहेगा।

मंडल वन विभाग के कर्मचारियों ने मेरे पत्रों का अंबार देखकर जरूर यह सोचा होगा, यह आसामी तो लगता है बड़ा खूसट है।

जब भी किसी काम से कोविलपट्टी जाना होता था, मैं उस कार्यालय में अवश्य हाजिर होता। मैंने उस दफ्तर के इतने चक्कर काटे कि मेरा मुखड़ा देखकर वे लोग नाक-भौंह सिकोड़ने लगे और उन लोगों को देखकर मुझे भी उबकाई आने लगती।

अंततः हमारे पूर्वजों के पुण्य-प्रताप से (और क्या बताऊं?) मैं सफल हो गया पांच सौ पौधे पाने में। पूरे पौधे दो बार में जारी किए गए जिसके लिए मुझे अलग अलग दो दिन बैलगाड़ी हांकते हुए जाना पड़ा, एक बार कोविलपट्टी और दूसरी बार कयत्तार।

उन पौधों को लाकर मैंने तथा मेरी सहधर्मिणी ने किस तरह रोपा और बच्चों की भांति परवरिश करके कैसे उन्हें बड़ा किया, इन बातों का वर्णन करूं तो वह अपने आप में एक उपन्यास का रूप ले सकता है। इसलिए एक पंक्ति में यही कहना पर्याप्त है कि हमने इमली, नीम, "वागै" "करुवै" ... के पौधे लगाए, दिन-रात उनकी हिफाजत की और वृक्षों के रूप में परिणत कर दिया।

इसमें मेरी घरवाली का योगदान बहुत अधिक रहा। हम दोनों जने ने मिलकर दो चरणों में कुल पांच एकड़ जमीन पर पौधे लगाकर लहलहाता वन बनाया।

दो वर्ष पूरे हो गए और तीसरा साल शुरू ....

लहलहाते पेड़ों को देखकर हमारा दिल बेहद खुश हो रहा था। हमारी उम्मीद थी कि मंडल कार्यालय या वन राजिक कार्यालय से अगर कोई इस समय मुआयना करने के लिए आए तो वे भी उतने ही प्रसन्न होंगे। हमें ऐसी कल्पना भी मीठी लग रही थी, किंतु वहां

से "चिड़िया का बच्चा" भी नहीं आया। न किसी ने आकर पूछा, "क्यों बे बंदर! ठीक ठाक हो?"

सुदीर्घ तीन वर्ष पूर्ण हुए और चौथे साल दिनांक 31.10.85 को मैंने समाज वानिकी विभाग के अधिकारी के नाम एक पत्र लिखा, "आपके द्वारा दिए गए सारे पौधे अब वृक्ष बन गए हैं। यहां पधार कर निरीक्षण करने का कष्ट करें।"

मंडल वन विभाग से इसका उत्तर मिला। उसमें यों लिखा था :

आवेदक से निम्नलिखित विवरण अपेक्षित हैं—जिस जमीन पर पौधे लगाए गए हैं उसकी चकबंदी संख्या, गांव का नाम जहां उक्त जमीन स्थित है, जमीन का क्षेत्रफल, आवेदक के पास जितनी जमीनें हों उनका क्षेत्रफल और क्रमवार उनकी चकबंदी संख्या आदि। आवेदक को सूचित किया जाता है कि वे उक्त सारे विवरण शीघ्र ही प्रस्तुत करें।

मेरे द्वारा पहले ही प्रस्तुत ब्यौरों के अलावा कुछ नए विवरण अब की बार मांगे गए थे।

देने वाले का हाथ स्वाभाविक रूप से ऊपर ही तो रहता है, और पाने वाले का हाथ नीचे...।

यही नहीं, शास्त्रों में (!) यही लिखा है कि अधिकारी के घर की मुर्गी का अंडा किसान के घर के सिलबट्टे पर गिरता है तो उससे सिलबट्टा टूट जाता है। हमेशा यही दस्तूर चलता है।

मंडल वन अधिकारी द्वारा पूछे गए सवालों के लिए बाअदब बाकायदा जवाब लिखकर मैंने डाक में छोड़ दिया।

पचहत्तर दिन बाद मैंने एक स्मरण पत्र लिखा। मंडल वन अधिकारी से "पत्र सं. 1210/85 दिनांक 19.2.86 माघ मास 7, क्रोधन, तिरुवल्लुवर संवत्सर 2017 अंकित उत्तर मिला। तमिल में तिथि और संवत्सार देखकर "भाषा के इस दीवाने" को बड़ी तसल्ली मिली।

उपर्युक्त आवेदन पत्र के संदर्भ में आपको एतद् द्वारा निर्देश दिया जाता है कि आप इस मंडल के अंतर्गत उप मंडल कार्यालय, समाज वानिकी, ज्योतिनगर, कोविलपट्टी से संपर्क करें। उन्हें अनुदेश दिया गया है कि वे आपके आवेदन पत्र पर विचार करें और बागान का निरीक्षण करके यथोचित प्रोत्साहन राशि का भुगतान करने के संबंध में आवश्यक कार्रवाई करें।

ह.
मु. अमानुल्लाह खां
मंडल वन अधिकारी

उप मंडल कार्यालय से एक दिन कुछ लोग वृक्षों का निरीक्षण करने आए। उन्होंने पेड़ों को गिनकर बाकायदा अपने रिकार्ड में दर्ज कर लिया। जाते हुए मुझ से कह गए

कि मैं दफ्तर चलकर अधिकारी से संपर्क करूं।

कोविलपट्टी के ज्योतिनगर स्थित उप मंडल कार्यालय का पता पूछते हुए मैं एक दिन जाकर उस अधिकारी से मिला। मेरा अहोभाग्य था कि वे उस दिन दफ्तर में उपस्थित थे।

तत्काल जवाब मिल गया दो टूक : "आप छोटे किसान की श्रेणी में नहीं आते। इसलिए प्रति वृक्ष चालीस रुपए की प्रोत्साहन राशि पाने के लिए पात्र नहीं हैं।" इसे सुनकर दिल को आघात-सा लगा। फिर भी निराशा को दिल में छिपाए मैंने उनसे पूछा, "छोटे किसान की क्या परिभाषा है?"

"छोटा किसान वह है जिसके पास पांच एकड़ या उससे कम जमीन हो" अधिकारी ने समझाया।

"जिसके पास पांच एकड़ की जमीन, वह भी कम उपजाऊ भूमि हो तो वह क्या करेगा? अपनी जीविका के लिए वह उसमें काश्तकारी करेगा या वन रोपेगा? आप ही बताइए।" मैंने पूछा।

"आप सही फरमा रहे हैं। जमीन कम उपजाऊ ही है, और जीविका भी उसी से चलनी होती है। यह सही है कि उसमें पौधे रोपने के लिए वह कभी तैयार नहीं होगा ....।" अधिकारी ने मेरे साथ हां में हां मिलाई।

"काली माटी के अंचल में 'बड़े किसान' की श्रेणी में आने वाला, खर्चा न निकल पाने से खेती से हाथ खींच रहा है, अपने पास की फालतू जमीन को वह धीरे धीरे परती डालता जा रहा है। इस फालतू जमीन पर पेड़ लगाने के लिए अगर उसे प्रेरित किया जाए तो पूरी संभावना है कि वह इस ओर उत्साह दिखाएगा। लेकिन इस तरह के उपायों पर अमल करना छोड़कर आप लोग छोटे किसानों पर दवाब डाल रहे हैं कि वे अपनी जमीन पर खेती न करें, बल्कि पेड़ उगाएं। क्या वह इसके लिए आगे आएगा ....?" मैंने उनसे प्रश्न किया।

"जनाब हम क्या कर सकते हैं? .... हमें तो सरकार की नीतियों को अमल में लाना पड़ता है ...।" अधिकारी ने कहा। उन्होंने यह भी जोड़ा, "यह योजना असफल हो गई है।" मैंने पूछा, "कैसे?"

"पैंतालीस करोड़ रुपए का अनुदान देने के बाद स्वीडन देश के विशेषज्ञ योजना की सफलता का मूल्यांकन करने के लिए यहां आए थे। सब कुछ देख दाख कर उन्होंने अपना असंतोष व्यक्त किया है।" गांवों की तरफ आने वाली इन योजनाओं को अंतिम रूप देने से पहले सरकार इसके विभिन्न पहलुओं पर किसानों के साथ विचार-विमर्श करने की जरूरत नहीं समझती। इसलिए ये नाकाम हो जाती हैं। सबसे ज्यादा दुख तो यह जानकर हुआ कि सारी की सारी धनराशि "मगरमच्छों" के पेट में समा गई। व्यापार धंधे के अनेक किस्मों

में बिना पूंजी लगाए किए जाने वाले कुछ धंधे होते हैं, इस प्रकार की सरकारी योजनाओं में—खासकर के ग्रामोन्मुख योजनाओं में—दखलदांजी करके सारी धनराशि को अपनी तरफ मार्गांतरित करवा लेना और उसे पूर्ण रूप से हड़प लेना बिना पूंजी के व्यापार का एक प्रकार विशेष है। कागज-पत्र और हिसाब-किताब एकदम ठीक ठीक रहेगा, कहीं कोई गड़बड़ या तिकड़म नजर नहीं आएगा। राशियों का भुगतान कागज पर छोटे किसानों के नाम पर ही दर्ज रहेगा।

आप ऐसे लोगों से पूछ कर देखिए, "आप जो कर रहे हैं, क्या यह न्यायोचित है?" उनका जवाब आपको जरूर चौंका देगा। कोई भी इन लोगों को सही रास्ते पर नहीं ला सकता। बस इतना कर सकते हैं जैसे कि पुराण की कथाओं में देवता लोग किया करते हैं, क्षीर सागर में शयन करते हुए खर्राटे भर कर सोने वाले भगवान पद्मनाभ के सामने जाकर निवेदन कर सकते हैं, "हे प्रभो ! भूलोक में, विशेष रूप से पुण्यभूमि भारत वर्ष में मानवों का अन्याय और अत्याचार हद से ज्यादा बढ़ गया है। इन दानवों को केवल आप दंडित कर सकते हैं इनका वध करने के लिए आपको फिर से एक नया अवतार लेना होगा।

मान लीजिए इस प्रार्थना को मानकर भगवान स्वयं आ जाते हैं। तभी भी कुछ नहीं होगा। उनसे निपटने की विद्या में ये लोग विलक्षण हैं। व्यक्तिगत रूप में अवतार बनकर आने के बजाए यदि वे जन-क्रांति के रूप में आएं ये शायद संभव हो जाए।

खारे पानी वाले विशाल समुद्र में इक्के-दुक्के किसी स्थान में मीठा जल होता है, उसी तरह राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के बीच में भी एकाध अच्छे व्यक्ति मिल जाते हैं, यह तथ्य मैं भूला नहीं हूं। बेचारे ये सज्जन लोग दुबक कर बैठे हैं। डर के मारे !

आखिरकार कोविलपट्टी वन उप मंडल कार्यालय से मेरे नाम जो डाक आई, उसमें यों लिखा था :

> पत्र सं. 90/86 दिनांक 16.4.86
>
> 1982 में आपको सिडा द्वारा प्रस्तुत वानिकी योजना के तहत निःशुल्क पौधे दिए गए थे। जमीन के नक्शे सहित प्रेषित आपके पत्र में जमीन का कुल क्षेत्रफल 5 एकड़ 66 सेंट उल्लिखित है।
>
> दिनांक 10.11.82 को आपके द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र के नियम सं. 6 में स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि दूसरे वर्ष की समाप्ति पर ऐसे ही किसान पौधों की संख्या के अनुपात में प्रोत्साहन राशि के पात्र माने जाएंगे जिनके नाम समेकित ग्राम विकास योजना के अंतर्गत स्वीकृत हैं। ... उपर्युक्त शर्त को मानकर ही आपने यहां से पौधे प्राप्त किए थे।

अतः आपको सप्रेम सूचित किया जाता है कि उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर आपको प्रोत्साहन राशि नहीं दी जा सकती।

ह.
आर. वेंकटाचलपति
16.4.86
वन राजिक

प्रतिलिपि सूचनार्थ : मंडल वन अधिकारी कोविलपट्टी
पत्र सं. 11210/854 आ दिनांक 29.1.86

कहानी समाप्त, फल अप्राप्त।

अबूझ बात

1

उन दिनों आसपास के गांव वाले भी अपने आपस में मोट्टमलैयान की "कहानी" कह-सुन कर रस लिया करते थे।

आज भी किसी न किसी मौके पर मोट्टमलैयान की चर्चा आ जाती है।

सुनने वाले दांतों तले उंगली दबाकर पूछते हैं, "अरे, ऐसा भी होता है !" नई पीढ़ी के नए पौधों को यह कहानी सुनकर बहुत ही अजीब लगेगा।

गाय-भैंस चराने वाले कितने ही छोकरे हुए हैं, उनमें एक मामूली-सा छोकरा था मोट्टमलै।

तेज-तर्रार, चुस्त-दुरुस्त, चतुर, होशियार, नटखट, गुरुघंटाल, तिकड़मी वगैरह किसी भी किस्म में मोट्टमलै की गिनती नहीं हो सकती। उसे तो बस, अपने काम से काम रहता था। अपने काम में तो वह "सव्यसाची" (बड़ा माहिर) था। कर्मठ इतना कि दूर दूर के चरागाहों में भटक कर भी ढोर को भरपेट घास खिला लाता। मोट्टमलै को अपने मवेशी सौंपिए और फिर आपको उनके बारे में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं होगी।

ताल-तलैयों में उन्हें नहलाना-धुलाना, रगड़-रगड़ कर उनकी देह चमकाना, कुकुरमाछियों को पकड़ पकड़ कर दूर फेंकना, सहलाना, उन्हें दुलारना-पुचकारना, बाप रे बाप ! इस कला में वह पूरा निपुण था। वाकई (गो-पाल की भांति) "महिष-पाल" की उपाधि पाने का एकमात्र अधिकारी था वह।

कुछ लोगों को काम करते हुए देखकर आप भी यही कहेंगे कि उस कार्य विशेष को संपन्न करने के लिए ही इस पृथ्वी पर उनका जन्म हुआ है। निश्चय ही उनके सिर पर ब्रह्माजी ने अपनी अमिट लेखनी से दबाकर ऐसा लिखा होगा।

बलराम नायकर कहा करते हैं कि ब्रह्माजी के पास "शिरोलेख" लिखने के लिए भांति भांति की लेखनियां होती हैं।

मोट्टमलै जिन सज्जन के यहां गाय-भैंस चराता है, एक दिन मैं उनके यहां बैठा हुआ था। वे किसी को आवाज दे रहे थे।

"अरे ओ ! उलक्कै-कोलुन्दु ....!"

शिवक्कोलुंदु-नाम तो सुना है मैंने, मरिकोलुंदु* भी होता है, यह नई चीज "उलक्कै कोलुंदु" (मूसल की कोंपल) कहां से आई? मैं सोच ही रहा था जब मोट्टमलै वहां पहुंच गया, कटे हुए अपने ओंठ के बीच में से दंत-पंक्ति दिखते हुए। (बच्चू में ऐसा एक ऐब था—जन्म से ही।)

तभी मेरी समझ में आई बलराम नायकर की वह बात। हां, इस मोट्टमलै के सिर पर ब्रह्माजी ने लघु-मूसली से लिखा होगा इसका शिरोलेख। तभी यह "उलक्कै-कोलुंदु" कहलाता है।

हम जैसे साधारण तबके के लोगों के पास भी लिखने के लिए किस्म किस्म की कलमें होती हैं, तो ब्रह्माजी के बारे में क्या कहने !

लेखनी से हमारे सिर पर लिखा गया हो तो हम पढ़े-लिखे हुए, मूसल से लिखा गया हो तो हम भी बेशक मोट्टमलै की श्रेणी में आ जाते।

मोरपंख की कलम से सिर पर लिखा गया हो तो वह नृत्यांगना बनेगी, मुर्गे के पंख से लिखा गया हो तो अव्वल दर्जे की झगड़ालू औरत, रंग बिरंगे कपड़ों को जोड़कर सीने वाली सुई से सिर पर लिखा हो तो फिल्म कथाकार वगैरह वगैरह। उन दिनों गांव और आसपास में मवेशियों की भयंकर महामारी फैलने लगी थी और लगातार गाय-भैंसें मरने लगीं। मोट्टमलै के मालिक के यहां भी पशुओं की बीमारी फैली, रोज़ रोज मवेशी मरते चले गए। उनमें एक भैंस की कटिया बुरी तरह बीमार पड़ गई, वह जिंदगी और मौत के बीच में "खिंचती रही।"

अगले दिन शुक्रवार पड़ता था मालकिन के मन में डर हो गया कि ऐसे शुभ दिन में कहीं कटिया मर न जाए, सोचा गया कि इसे किसी को दान में दे दिया जाए, लेकिन उसे लेने वाला कोई नहीं मिला। मरने वाली कटिया को कौन लेगा? आखिरकार वह बला मोट्टमलै के सिर पड़ गई। मालकिन ने हुक्म दे दिया, "अरे ओलक्के! (मूसल!) तू क्या करेगा क्या न करेगा, यह तो मैं नहीं जानती। लेकिन एक बात कान खोल के सुन ले .... कल सुबह यह कटिया यहां नहीं रहेगी, समझा? बेचारा मोट्टमलै! क्या कर सकता था? .... उसे कंधे पर ढोते हुए ले चला। किसी को नहीं चाहिए थी वह कटिया। उस बेचारी पर मोट्टमलै के मन में तरस आ गया। उसे अपनी झोपड़ी में ले चला। परिवार में उसके अलावा और कोई नहीं था।

उस टूटी-फूटी झोपड़ी में पड़ी उस बछड़ी को अपलक देखता हुआ वह उसी के पास बैठ गया। जिंदगी और मौत के बीच में जूझ रही उस कटिया की दयनीय दशा उससे देखी नहीं गई। उसकी कातर दृष्टि देख मोट्टमलै के दिल में गहरी टीस पैदा हुई। उसने महसूस किया, अपनेराम की तरह यह बछड़ी भी अनाथ है। मोट्टमलै की समझ में कुछ नहीं आ

*एक किस्म का सुगंधित पौधा, जिससे इत्र बनता है।

रहा था। बस, रोना आ रहा था। ऐसी विकट घड़ी में जैसे और लोग किया करते हैं उसने भी वही किया। वह सजल नेत्रों से भगवान से मनौती मानने लगा।

"ऐ मालिक ! किसी तरह इस कटिया को जीवन-दान दो, इसे बचाओ।" कटिया के लिए उसके पास कोई इलाज नहीं था, न कोई दवाई। उसके पास तो आंसू की दो बूंदें थीं जो कटिया पर टपक पड़ीं। यही उसके लिए दवा बन गई।

अपने मालिक के घर से वह हर रोज उबले चावल का पानी लाता और कटिया को पिलाता।

आप जो "कंजी" पीता उसमें से भी थोड़ी नियम से उसे पिलाता। स्नेहपूर्ण इस उपचार से वह कटिया तुरंत मरी नहीं बल्कि एक एक करके दिन खींचती चली गई।

जब वह भैंस चराने निकल जाता, उसका दोस्त पवुनु कटिया की देखरेख करता। मोट्टमलै और पवुनु में बचपन से ही गहरी दोस्ती थी।

एक दिन पवुनु ने जंगल में मोट्टमलै को यह खुशखबरी दी, "सुन रे, तेरी कटिया ने आज थोड़ी-सी हरी घास खाई।"

मोट्टमलै की आंखें खुशी से चमक उठीं। तब से वह कहीं न कहीं से ढूंढ़ ढांढ़ कर थोड़ी हरी घास लाने लगा, अपनी कटिया के लिए।

मालकिन ने जिसे "मरी" समझकर छोड़ दिया था, वह कटिया बच गई। यही नहीं धीरे धीरे वह उठ कर खड़ी हुई, अब चलने भी लग गई। पवुनु और मोट्टमलै की परवरिश में वह धीरे धीरे भैंस बन गई। दूसरी भैसों के साथ वे दोनों उसे भी चराने ले जाने लगे। समय आने पर वह "गाभिन" बनी और एक "कटिया" दी।

अब मोट्टमलै से मालिक के यहां पूरा समय काम करते नहीं बनता था। अपनी भैंस और कटिया के लिए समय निकालने के बाद मालिक के यहां जाकर मेहनत-मशक्कत मुश्किल लग रही थी। फिर भी कोई और चारा नहीं था। खाना खाने और सोने का समय छोड़कर बाकी सारा समय वह "कोल्हू के बैल" की तरह लगा रहता।

अपने मन-मर्जी से पीने को दूध मिलने से कटिया जल्दी बड़ी हो गई और "देखते देखते" भैंस बन गई।

अब दोनों भैसें "गाभिन" होकर बछड़ा देने की स्थिति में पहुंच गईं।

मालकिन के मन में अब यही ख्याल आ रहा था कि एक रकम देकर दोनों भैंसों को स्वयं खरीद लिया जाए। तभी यह पट्ठा पहले की तरह दिन भर यहां पर मशक्कत करेगा। परंतु इसमें धर्म का उसूल आड़े आ रहा था। दान में दिया हुआ ढोर खरीदना न्यायोचित नहीं था। ऐसी प्रथा कहीं देखी-सुनी न थी।

शास्त्रों में लिखा है "भले ही मरा ढोर मोल लो, पर बिका हुआ ढोर कभी न खरीदो।" जब बात ऐसी है, दान में दी गई भैंस को खरीदने का सवाल ही नहीं उठता।

मन में यही आ रहा था, "मरने वाली कटिया" मैंने किसी और को क्यों न दी उस वक्त? (मालकिन सुविधापूर्वक भूल रही थीं कि तब तो उस "मरी" को लेने के लिए कोई भी तैयार नहीं था)। बछड़ा देने से पहले ही उन दोनों भैंसों को खरीदने के लिए वह दूसरों को उकसाने लगीं। कहती थीं "खूब दुधारू नस्ल की हैं, लंबे समय तक दुहती भी हैं, हां।" यह भी कहती थीं, "पैसा कम हो इसमें क्या बात है, हम से ले लेना, बाद में देते रहना।" लेकिन जो भी आदमी खरीदने के लिए पहुंचता या दलाल चक्कर लगाता तो मोट्टमलै उन्हें दो टूक जवाब देता, "भले ही यहां अशर्फियों का ढेर लगा दो, अशर्फियों से मुझे ढक ही दो, तब भी इन्हें बेचने का मेरा इरादा नहीं है।"

जब दोनों भैंसों ने "कटिया" दीं, गांव में सब के मुंह पर यही चर्चा थी : "देखो, बड़ा भाग्यवान निकला यह छोकरा। सुना? दोनों ने "कटिया" दी हैं। मोट्टमलै वाली गली में अब उसके समान अमीर दूसरा कोई नहीं था। दौलत के साथ साथ उसके बदन में भी "बरकत" आ गई। वह अब छोकरा नहीं बल्कि "बड़ा आदमी" लगने लगा। इसलिए उसका भी भाव बढ़ गया।

न जाने कहां कहां से लोग रिश्ता निकालते हुए प्रकट हुए। सबकी यही मंशा थी, मैं अपनी बेटी इसे दूंगा ... मैं दूंगा अपनी बेटी।

जिनकी जबान से उसके लिए बराबर "निकम्मा, नालायक !" जैसे संबोधन निकलते थे, वे लोग जबान संभाल के उसे "मोट्टमलैयान" बुलाने लगे। मालिक के यहां भी अब उसे थोड़ी "इज्जत" मिलने लगी।

एक दिन क्या हुआ, उसकी पड़ोसिन बुढ़िया ने उसे अपने पास बुलाया। वह उससे कहने लगी :

"मोट्टमलै बेटे! एक बात बताऊं? अब तेरा समय आ गया है। शादी कर लो नई बहू लाओ।" बूढ़ी वेयिलांतम को मोट्टमलै हमेशा मां के समान इज्जत देता था और उसकी हर बात मानता था। बुढ़िया ने आज जो बात बताई उसे सुनकर वह जरा चौंक-सा गया। सोचने लगा, "शादी ... और मेरी?"

इस विषय पर आज तक उसने एक बार भी विचार नहीं किया था।

मजा लेने के लिए छोटे लड़कों से अक्सर एक सवाल पूछा जाता है : "बोल रे, शादी किसके लिए करते हैं?"

झट जवाब मिलता : "खाना पकाने के लिए।"

यह जवाब सुनकर लोग हंसते थे। अबोध बालक समझता था कि मैंने सही उत्तर दिया, इसलिए मेरी तारीफ हो रही है। अब मोट्टमलै को भी यही लगा कि "खाने पकाने" और घर संभालने के लिए कोई लड़की मिल जाए तो सुविधा रहेगी।

"ठीक है, मां !" मोट्टमलै ने वेयिलांतम से कह दिया।

जिस कारीगर ने "सिल" बनाया उसने उसके लिए "बट्टा" भी जरूर बनाया होगा। अब ढूंढ़ते हुए निकले और मोट्टमलै को देखकर खुश हुए कि हां मिल गया बट्टा।

इसके फलस्वरूप वेन्निमालै की गर्दन में मोट्टमलै को मंगल-सूत्र पहनाना पड़ा।

2

उसी कुटिया में मोट्टमलै का परिवार बसाया गया। अब तो उसकी अपनी भैंसें इतनी ज्यादा हो गईं कि उसका अधिकांश समय अपनी भैंसों को चराने में और उनके लिए घास छील कर लाने में ही गुजरने लगा, इसलिए मालिक के यहां काम पर जाने की फुरसत नहीं मिल पाती थी। उनके खेतों और बगीचों में काम करने के लिए अब उसकी घरवाली वेन्निमालै जाने लगी। काम की भीड़ देख कर मालकिन जब तब मन ही मन पछतातीं कि मोट्टमलै को कटिया दान में क्या दी, हमने अपना ही अहित कर लिया। फिर भी उनके मन की कोर पर कहीं से यह तसल्ली भी मिलती कि हमने पुण्य का काम किया, हमारी उदारता से एक परिवार में सुख की ज्योत जग गई है। फिर भी कटिया के दान की बात दुहरा दुहरा कर वह वेन्निमालै से दुगुना काम करवा लेतीं।

वेन्नी की मां पुगलरसी मोट्टमलै के यहां आकर रहने लगी। वेन्नी उसकी इकलौती बेटी थी। शुरू शुरू में उसके मन में हिचक-सी हुई, न जाने जमाई क्या कहेगा। लेकिन जमाई ने कभी इस पर एतराज नहीं किया तो यहां उसकी भी "जड़ें जम गईं।"

जमाई को तो घर में किसी से बात करने के लिए फुरसत नहीं मिलती थी। वह दो ही प्रयोजन से—खाने और सोने के लिए—घर आता था। यहां पर जिक्र करने योग्य बात यह भी है कि भैसों के बीच में लेटने पर ही उसे नींद आती थी।

उस झोंपड़ी को "घ़र" का अभिधान देना केवल रीति निभाने की बात है। सही मायने में वह आठ फुट की कुटिया है। कुटिया के छप्पर को आगे खींच कर नीचे तक छवाया गया है। इसी आयताकार गोशाला में सभी भैंसों को बांधते थे।

रोज बड़े तड़के चार बजते बजते डिपो वाला आता और सभी भैंसों को पूरा दुह लेता था। भगोनों की तलछट में लगी "सफेदी" को धो लेने पर जितना कुछ मिलता, वह इन लोगों के "चाय-पानी" के लिए काफी होता था।

दुहने के तुरंत बाद गोबर वगैरह निकाल कर गोशाला साफ करते करते पौ फट जाती। उसके बाद तुंरत ही वह भैंसों को "ओस वाली घास" चरने के लिए ले जाता।

चरागाह में ले जाने से पहले भैंसों को थोड़ी देर तक खुली जगह में चरने देना चाहिए। मालिक के यहां से उसका सीखा हुआ "पाठ" था यह। एक दिन मालिक ने भात में घी डलवा लिया, घी में ताजगी की सुगंध न पाकर उनका मन दुखी हो गया। सोचने लगे,

भात में घी क्यों डाल लेते हैं? उसकी सुगंध के लिए और किसके लिए? उन्होंने मोट्टमलै को बुलाकर तलब किया। भैंसों को वह "खुले" में टहलने देता है कि नहीं। जब पता चला कि ऐसा नहीं करता तो उन्हें बुरी तरह गुस्सा आ गया।

"घूरा है, निरा घूरा, बेकार का घूरा !" उन्होंने उसे गाली दी।

"अरे मूर्ख, काहे तूने उसे "खुले में" चरने नहीं दिया? तुझे तो नहीं चरना है न, उस चीज को? आखिर भैंस ही तो चरती है। यह मत सोचो कि वह "गंदी चीज" है। खुले में एक बार छलांग लगाकर चरने के बाद ही उसे चरागाह में ले जाना है, समझा?" घुड़क कर समझाया था मालिक ने। उस समय से उसने थोड़ी देर भैंसों को खुले में छोड़ने की आदत बना ली।

इधर दिन चढ़ जाता और उधर भैंसें चरागाह में भरपेट घास खाने के बाद तलैया की ओर लौटने के लिए तैयार मिलतीं।

भैंसों को हरी घास चरने में जितना आनंद मिलता था, उससे कहीं अधिक आनंद उन्हें तलैया के छिछले पानी में पड़े रहने में मिलता था। ठंडा ठंडा पानी भैंस के लिए "कुल-देवता" समान होता है। पानी कितना ही मटमैला या गंदला क्यों न हो, तलैया में पहुंचते ही भैंस उस पानी को छकती है। उस समय चरवाहे लोग जो गीत गाया करते हैं मोट्टमलै भी वही गीत गाने लगा :

"मंदिर की गैया, तलैया की गैया !
पी ले सेर भर सींग के लिए
पी ले छटांक, दांत के लिए
पी ले पानी छक के ....
मंदिर की गैया, तलैया की गैया !
राम जाने कल भी
दिखाऊं मैं पानी
या ना दिखाऊं ....
पी ले पानी छक के ...."

दूसरों की ही तरह उसने गीत के अंतिम शब्द के बाद एकदम विराम दिया।

अगर भैंसें पानी में उतर कर उसमें रम जाएं तो इसका मतलब है मोट्टमलै को मध्यांतर का अवकाश मिला है। वह चाहे तो आराम से घर जाकर थोड़ी "कंजी" पी कर लौटे, चाहे तो थोड़ी देर यहीं "झपकी" भी ले। लेकिन मोट्टमलै तो भैंसों से बेफिक्र रहने वालों के तबके में नहीं आता।

घर जाकर उसने खुद बरतन से निकाल के थोड़ी "कंजी" पी ली। वेन्नी और उसकी मां मालिक के यहां काम पर गई थीं। पत्नी के आने के बाद मोट्टमलै को "कंजी" बनाने

के काम से छुट्टी मिली है, अर्थात उतने समय की बचत हुई है। इस समय का सदुपयोग करके वह अपने ढोर को और ज्यादा देर तक चराता, भैंसों और बछड़ों के लिए हरी घास छील लाता। "कंजी" पीते समय बीच में मुंह में रखने के लिए गुड़ का टुकड़ा एक निश्चित जगह पर रखा रहता था। उसे जरा-सा अपने दांतों से छूते हुए वह कंजी पी लेता और बाकी गुड़ को "कल के लिए" उसी जगह सुरक्षित रखता।

शादी के बाद ही मोट्टमलै को गुड़ का यह टुकड़ा नसीब हुआ है। पहले तो खाली नमक के दो तीन टुकड़े मिलते थे। जरा-सा नमक मुंह में डाल लेने के बाद "पलक मारने के अंदर" मटका भर कंजी वह पी डालता था।

बुजुर्गों के मुंह से उसंने यह उक्ति सुनी है : "नमक छू लो और ओखली निगल लो।" किसी को "मंजा हुआ खिलाड़ी" बताने के लिए लोग उसके बारे में कहते, "अरे, उसके बारे में क्या कहने ! वह तो नमक के बिना मटका भर कंजी पी डालेगा।"

"कंजी" पीकर लौटा मोट्टमलै तलैया किनारे पेड़ की छांव में आराम से बैठ गया। "उफ, दैया रे" कहते हुए ज्योंही वह बैठ गया, तभी उसकी दृष्टि दूर से आते हुए पवुनु पर पड़ी जो "मत्तगज" के समान मोटी-तगड़ी अपनी भैंस को लेकर आ रहा था। आज पता नहीं क्यों, यह पवुनु बहुत पिछड़ गया है। इसे कहां इतनी देर हुई होगी, वह सोचने लगा। उधर पवुनु के ओठों पर भी एक असाधारण मुस्कान खिली थी मोट्टमलै को देखकर। भैंस को पानी के अंदर हांकने के बाद पवुनु और मोट्टमलै पेड़ की छांव में एक ओर जाकर बैठ गए। दोनों में बराबर ज्यादा बोलने वाला पवुनु ही था।

आज पता नहीं क्यों, सिर अपना नीचा किए हुए वह एक कूची से जमीन को खुरच रहा था। उसे मालूम नहीं हो रहा था कि बात कहां से शुरू करें।

जब पवुनु अपने घर में कंजी पी रहा था, मोट्टमलै की सास वहां पर आई थी। "आओ मौसी !" कहकर पवुनु ने उसका स्वागत किया और कंजी पीते हुए बीच में शाक-व्यंजन खाने के समान तीन-चार प्रश्न पूछता गया। काम कैसे चल रहा है? मजूरी क्या देते हैं? वगैरह वगैरह ....।

कंजी पीने के बाद जब पवुनु काम पर जाने लगा तो मौसी भी एकदम निकल गई। लगा कि वह आई तो है कोई जरूरी बात करने लेकिन कुछ भी बोले बिना झट से चली गई।

पवुनु और उसकी घरवाली दोनों सिर धुनने लगे कि मौसी किसलिए आई होगी?

दो दिन बाद मौसी फिर से आई, यानी की—आज।

"क्यों मौसीजी ! उस दिन आई थीं और तुरंत चली गई। क्या बात है?" पवुनु ने पूछा। तभी उसने पलट कर पवुनु से यों एक सवाल किया, "क्यों जी, मैं औरत जात हूं, कुछ समझती-बूझती नहीं, इसलिए पूछ रही हूं, बताओ किसलिए शादी करते हैं लोग?"

पवुनु और घरवाली की आंखें चार हुईं और पलटीं। बात साफ साफ समझ में नहीं आई। "शादी किसलिए की जाती है?" इस प्रश्न के लिए बच्चों के मुंह से निकलता, "खाना पकाने के लिए" वाला उत्तर अब इस उम्र में कैसे दे सकते हैं?

क्या मियां-बीबी के बीच कोई टंटा खड़ा हो गया? मान लो कि रगड़ा हो ही गया और बीबी ने दो चार जड़ दिए, तब भी मोट्टमलै चुपचाप झेल लेता, चूं तक नहीं करता। आज यह क्या झमेला हो गया है, पता नहीं चल रहा है.... पवुनु सोचता खड़ा रहा।

"वह आपका लंगोटिया यार है, इसलिए आप ही का फर्ज बनता है उसे समझाएं। नई नई शादी होने पर थोड़े दिन तक मर्द के अंदर भी एक तरह की झिझक होती है। लेकिन यह क्या .... इस तरह भी होता है? .... इतने दिन हो गए .... पर एकदम ....। चलो 'वह' ऐसा है तो 'यह गधी' (बेटी) भी समझती नहीं है .... यह तो 'दो कलछियां थीं .... अलग-थलग दो कलछियां' .... वाली कहावत हो गई .... आप सोचते होंगे यह सब कोई कहने की बात है? .... यह तो जग में सहज बात ठहरी, पर कहना पड़ रहा है न मुझे बिना शर्म-हया के !.... शर्म वाली उस बात को ....।" यों कहते हुए मौसी झट से निकल गई।

"ओ .... हो ! यह बात है !" पवुनु ने मन में सोचा। जब मौसी चली गई, पवुनु और उसकी घरवाली इसे सोच सोच कर बड़ी देर तक हंसते रहे।

"सो तो ठीक है ... इसे मैं किस तरह उसे समझाऊं?" पवुनु मानों अपनी घरवाली से और खुद अपने से प्रश्न करता-सा बोला।

3

तुम्हीं को बताना पड़ेगा, और कौन बताएगा इसे?" पवुनु की घरवाली बोली। इसके बाद वह खिलक पड़ी।

"हां भई, बात तो तेरी सही है .... पर मेरी समझ में आए तब न? इसे किस विधि से बताऊं?" पवुनु ने पूछा। पति-पत्नी के बीच में इस पर विचार-विमर्श भी हुआ, किंतु वे किसी फैसले पर नहीं पहुंचे।

थोड़ी देर सिर धुनने के बाद पवुनु की घरवाली ने सुझाव दिया, "ऐसा करो न, उनसे यों पूछो, अरे तुम्हें बाल-बच्चों की चाह नहीं है?" इस पर पवुनु ने तर्क दिया :

"मान लो, इसे सुनकर वह पूछता है, ऐसी बला कौन पालेगा? दुनिया में पैदा होकर हम लोग दुख-दर्द उठा रहे हैं यह काफी नहीं क्या? उनको भी क्यों इस प्रपंच में खींचें? तो क्या बताऊं। फिर 'इसके' बारे में कैसे समझाऊंगा... यही तो असली समस्या है।"

बारंबार और पलट कर सोचने पर भी पवुनु की समझ में नहीं आया कि 'इसके' बारे

में उसे कैसे समझाया जाए।

"अरे तू बड़ा आया मुझे समझाने वाला ! 'क्यों रे, तेरे भी तो कोई बाल-बच्चा नहीं है !' वह हमसे यों पूछ बैठे तो मैं क्या जवाब दूं, बोलो।" पवुनु ने अपनी घरवाली से प्रश्न किया।

"वह हमारे हाथ में है क्या?" रट्णमुत्तु ने कहा।

"वह भी यही उत्तर दे तो?"

पवुनु और उसकी घरवाली रट्णमुत्तु जिस तरह यहां पर तर्क-वितर्क में पड़े थे, उधर बुढ़िया वेयिलांतम और मोट्टमलै की सास पुगलरसी के बीच में भी इसी बात को लेकर बहस हो रही थी।

"अजीब बात है यह। एक मर्द के मन में 'ऐसी इच्छा' काहे नहीं उठ रही है? यह विधि की विडंबना नहीं है तो फिर क्या है?" पुगलरसी बोली, नाक के नीचे अपनी टेढ़ी तर्जनी दबाते हुए।

"तुम यह क्या कह रही हो? ऐसा न समझो, इस विषय में सभी मर्द एक सरीखे होते हैं।" वेयिलांतम आप-बीती सुनाने लगी, अपनी शादी के बाद का कोई वाकया जब उसका नादान पति कैसे अहमक जैसा व्यवहार कर रहा था।

"छोटे" तो दोनों ही थे, फिर भी पति के ऊपर वेयिलांतम के मन में "अपनापा" जग गया था।

पति अभी मानसिक रूप से उसके पास नहीं आ पाया था।

वह कहने लगी।

"वह बिदकते गए। ठीक हैं, देखें ! जनाब कब तक यों तनते और बिदकते रहेंगे।" मैं सोच रही थी।

"बुआ (सास) ही उन्हें खाना परोसती, मैं साथ में खड़ी उनकी मदद करती। मैं घर में अकेली बैठी होती, तो वे धीरे धीरे आते, मानो भूली हुई कोई चीज उठाने के लिए आए हों। लेकिन न खुद कुछ बोलते, न बोलने का मौका देते। मेरे गले तक बात आती, पूछूं 'क्या चाहिए?' लेकिन बात गले से बाहर नहीं निकलती।"

रात का समय था।* रिम-झिम पानी बरस रहा था बाहर। बुआई का समय था, दिन भर खेत में काम करने की थकान। सब लोग खाना खाते ही लेट गए।

हम दोनों को छोड़कर, सब लोग खू..ब सो गए .... इत्ता-सा घर, कुल मिलाकर एक बड़ा कमरा .... दक्खिन की ओर घर के सारे मर्द लेटे हुए हैं, हम—औरतें—उत्तर की तरफ पड़ी हैं। मेरे और इनके बीच कुल आठ हाथ का अंतर है।

---

* विवाहित दंपत्ति के लिए "सुहागरात" रस्म का आयोजन हर जाति और समाज में नहीं होता। शादी करवाने के बाद बाकी बातों का निर्वाह स्वयं कर लेना होगा।

"पता है, इस मर्द ने क्या किया ....?" वेयिलांतम ने पूछा और फिर अपने हाथ से मुंह दबाते हुए जोर से हंसने लगी।

"मुझे पता चल गया, इन्हें नींद नहीं आ रही है, बार बार करवट बदल रहे हैं .... थोड़ी देर बाद, ये धी .... रे, धी .... रे, मानों नींद में करवट बदल रहे हों, थोड़ा थोड़ा करके लुढ़कते हुए मेरी तरफ आने लगे।" पुगलरसी भी हंसी। उसके हंसने का भाव कुछ ऐसा था, मानो पूछ रही हो, अरे इसमें कौन-सी नई बात रखी है।

हंसी के बाद वेयिलांतम ने बात जारी की :

"मेरा मन भी उछल रहा था, अब आ गए तब आ गए ! लुढ़कते लुढ़कते ये मेरे बहुत पास आ गए, अब बालिशत भर का अंतर था दोनों के बीच में।

क्या उस चूहे को भी बरतन लुढ़काने के लिए यही वक्त मिलना था? यह हमारी बदकिस्मती नहीं तो क्या थी? आवाज होते ही बुआ नींद में ही 'उश् उश्' कर उठी। बस, ये जल्दी जल्दी उसी दिशा की ओर लुढ़कते हुए वापस चले गए जहां से आए थे।" दोनों बुढ़ियां हंसते-हंसते लोट-पोट हो गईं। दोनों बुढ़ियों के मुंह एकदम पोपले थे।

रात को पवुनु अपनी घरवाली को बता रहा था कि किस तरह उसने मोट्टमलै को "वह बात" समझाई जो बोलने की बात नहीं थी 'वह'। "उसे" सुन सुन कर न जाने क्यों हंसी के फव्वारे छूट रहे थे रट्णमुत्तु के। उसे यह सोचकर अचरज हो रहा था दुनिया में ऐसे भी "बुद्धूराम" होते हैं।

पवुनु भी सीधा बयान नहीं करता, उसमें मिर्च-मसाला मिलाकर सुनाता। फिर तो "यह बात" धारावाहिक कथा की भांति रात के सरस-संलाप के लिए खुराक का काम देने लगी। प्रतिदिन रात में वह अपने पति को छेड़ती, "फिर क्या हुआ? अब दोनों के बीच मामला कैसे चल रहा है? अव दोनों कितने पास तक आए हैं ....?"

इस तरह मोट्टमलै और वेन्निमालै के एक दूसरे के "पास-पास आने" की कहानी इन दोनों के लिए शयनकक्ष की रोचक कथा बन गई। जिसका आस्वादन दोनों कई कई रात तक करते रहे। मोट्टमलै भी पवुनु से कोई बात नहीं छिपाता, अपनी प्रगति की सही रिपोर्ट रोज पेश कर देता।

उस दिन तलैया किनारे पेड़ की छांव पर बैठ कर पवुनु ने मोट्टमलै को पहले पहल "वह बात" समझाई थी, तब मोट्टमलै के चेहरे का जो रूप बना था, पवुनु ने अपनी घरवाली के सामने वैसा ही मुंह बनाकर बताया था। रट्णमुत्तु को वह मुख-मुद्रा बहुत मजेदार लगी। जब भी उसका जी चाहता, वह पवुनु ने उसी तरह "मुंह बनाने" का अनुरोध करती। जब पवुनु उस मुख-मुद्रा की नकल करता। हंसी के मारे उसके पेट में बल पड़ जाते थे।

यह आज पुरानी कहानी हो गई है कि उन्हीं दिनों पवुनु मोट्टमलै को रथ-यात्रा मेले में श्रीविल्लिपुत्तूर ले गया था वहां पर रथ के निचले हिस्से पर बने काठ-शिल्प दिखाकर

"वात्स्यायन मुद्राएं" समझाई थीं।

उसके बाद भैंसे ज्यादा होने का बहाना बनाते हुए मोट्टमलै अपनी घरवाली वेन्निमालै को भी चरागाह ले जाने लगा। उन दिनों जब देखें और जहां देखें दोनों एक साथ मिलते थे। कहते हैं, जो पहली बार नारी को देखे, उसका हाल देखने योग्य होता है, जंगल में पहाड़ में हर जगह उसे लिए घूमता है।

मोट्टमलै और वेन्निमालै के लगातार चार पांच बच्चे हो गए। लेकिन पवुनु और रट्णमुत्तु दंपत्ति तो आखिर तक संतान-सुख से वंचित ही रहे।

आगे चलकर मोट्टमलैयान काफी बूढ़ा हो चला, लाठी टेक कर गांव में घूमने लगा। तब भी लोग उस "अबूझ बात" की चर्चा करने में रस लेते थे।

आज भी कहीं पर इस तरह की बात कानों में पड़ती है तो हम लोग अपने आपस में कहते, "अरे यह तो मोट्टमलैयान की कहानी जैसी है।"

भाग—दो

सातवां मेल-मिलाप

1

बुजुर्गों का कहना है, जमीन पर हाथ टेक कर ही "कलाबाजी" करनी चाहिए। हाथ जमीन पर टेके बिना कलाबाजी की जाए तो मुखड़ा टूट जाने का खतरा है। हाथ टेक कर कलाबाजी करते करते इसका काफी अभ्यास हो जाए तो बिना हाथ टेके हवा में ही "अंतर"* मार सकते हैं। हवा में चाहे जितने "अंतर" मारें, आखिर खड़े होने के लिए जमीन पर पैर टेकने ही पड़ते हैं।

एक ग्रामीण कहावत है, "करतब दिखाने वाला कलाकार लकड़ी पर लकड़ी लगाए उसकी चोटी पर खड़े होकर चाहे हजार करतब दिखाए, परंतु अंत में उसे जमीन पर आना ही होगा।

"जूनियर विकटन" में धारावाहिक रूप से निकलने वाली मेरी रचनाओं की प्रतिक्रिया में मित्रों से उलाहने भरे पत्र मिलते हैं, एक एक पत्र तीर की तरह मेरे सीने पर लगता है और मुझ से पूछता है, "अरे तुमने अपने को क्या समझ रखा है? हमेशा आसमान में उड़ते फिरते हो। देखते नहीं, तुम्हारे चारों ओर समस्याएं ही समस्याएं हैं, ज्वलंत समस्याएं, तुम्हें और समाज को जलाने वाली समस्याएं। ... और तुम हो कि इन समस्याओं पर कलम चलाना छोड़कर जाने क्या क्या ...?"

इतना "गुस्सा" वाजिब है, मित्रों का यह रोष न्यायोचित है, हां यह धर्म रोष ही है, स्वयं मुझे बाधित रखने वाले मामलों को परे रखकर, उनपर कलम चलाए बिना, कब तक हवा में "अंतर" मारता रहूं मैं ....?

आपने "सातवां मेल मिलाप" शब्द जरूर सुना होगा ....। इसका मतलब परिवार में दोनों के बीच निरंतर चलने वाला रगड़ा। पति-पत्नी के आपसी मतैक्य में बाधा डालने वाला कोई तत्व जो इन्हें सदा लड़वाता रहता है। शादी से पहले "लड़के-लड़की" की जन्मपत्री मिलाकर जांचा-परखा जाता है कि दश-विध मेल-मिलाप में से कितने मिलते हैं। इनमें से सातवें मेल-मिलाप का अहम स्थान है। इस मिलाप में कमी रह जाए तो उसका नतीजा

---

*जमीन पर हाथ टेके बिना अंतर (आकाश-हवा) में लगाने वाली कलाबाजी

होता है बात बात पर टंटा, रोज रोज उठा लें डंडा।

काली माटी अंचल के किसान और तमिलनाडु के विद्युत बोर्ड के बीच में सातवां मिलाप कुछ ऐसा ही है।

जनता को "सताने" के एकमात्र उद्देश्य से सरकार ने कई विभागों की स्थापना की है। उनमें बिजली विभाग भी एक है। बिजली के उत्पादन के लिए कई सारी युक्तियां हैं, अनेक स्रोत हैं, उन सबको छोड़ कर केवल मात्र जल से विद्युत उत्पादन का जो मार्ग अपनाया गया है, यह पहली गलती है। इसे "अदूर दृष्टि" की संज्ञा दी जा सकती है। हमारे देश में धूप की कोई कमी है? यह सचमुच आश्चर्य का विषय है कि हमारे देश के वैज्ञानिक तपाने वाले इस सूर्य ताप को व्यर्थ कर रहे हैं। ताशकंद में सौर ऊर्जा का उपयोग करते हुए बड़े पैमाने पर बिजली पैदा की जा रही है, यह चालीस साल पुरानी कहानी है।

धूप अर्थात सौर ताप के समान ही यहां पर हवा—विशेष रूप से छह महीने तक अंतरिक्ष में गूंजती चलने वाली वायु के तेज झोंके और फिर अविराम रूप से हमारे पास आकर फरियाद करने वाली लहरें ....

अगर हमारे यहां भी इन सब स्रोतों का उपयोग करते हुए बिजली पैदा की जाए तो कभी भी हमें बिजली की कमी नहीं होगी।

हमारे लोगों ने अभी हाल में धूप और हवा के बारे में सोचना शुरू किया है। कुटीर उद्योग की तरह छोटी छोटी इकाइयां बनाकर, व्यक्तिगत आवश्यकता से बिजली पैदा करने वाले साधन के रूप में, "पंखे" बांटने लगे हैं। लेकिन मेरा संकेत और आशय इस पर नहीं है, पूरे देश की जरूरत को मद्देनजर रखते हुए बहुत बड़े पैमाने पर विद्युत उत्पादन होना चाहिए, जैसे कि ताशकंद में होता है।

यहां पर हमारे गावों में बिजली की बत्तियां कैसे "ज्योति" बिखेरती हैं, इसके बारे में क्या कहने ! एक उक्ति याद आ रही है।

"ऐसे जान से मरना बेहतर है।" यह वचन हमारे तमिलनाडु विद्युत बोर्ड पर सौ फीसदी लागू होता है। हमारे घरों के बिजली के लट्टू या सड़क की बत्तियां जितने वाट्ज पर जलनी चाहिए उतने पर कभी नहीं जलतीं, उसके योग्य रोशनी कभी नहीं देतीं। सौ वाट् का "बलब" पच्चीस वाट्-सा रोता है हमारे इडैचेवल गांव में। साफ-सुथरी रोशनी के लिए हमारे घरों में एक भी ट्यूब नहीं जलती। शाम के साढ़े छह के बाद ट्यूब बिल्कुल नहीं जलती। मतलब ट्यूब जलते जलते बुझ जाती है। सड़क पर रोशनी के लिए खंभों पर 'केले के तने' जैसे लगाई, ट्यूबें रात के दस बजे तक पल में बुझते पल में चमकती हमें सताती हैं, बल्कि खुद भी जीवन-मरण के संकट में फंसी दुख पाती रहती हैं। उसके बाद तो बाकायदा आधी रात से लेकर सुबह पांच बजे तक यों जगमगाती रहती हैं मानों जंगल में मोर नाचा। आधी रात को जले तो किसको फायदा है ...? यह तो जंगल में ज्योत बिखेरने वाली चांदनी

है, समुद्र में बरसता पानी है।

नौ बजते ही गांव खर्राटे भरने लग जाता है। फिर इतनी "भंगिमा" के साथ हमें मिल रही बिजली कब किस समय "राम नाम सत्" बोल जाएगी इसका भी कोई ठिकाना नहीं है। थाली में भात परोसा गया है, दाल के साथ मिलाकर पहला कौर अभी मुंह में रखा कि ...। दूल्हे ने मंगल-सूत्र हाथ में ले रखा है और दुलहिन के गले में बांधने जा रहा है कि ...।

अस्पताल में बच्चा जनते समय ...

शुक्रवार की शाम को लक्ष्मीपूजन की वेला है। और उस पावन संध्या के समय...

वाह रे वाह ! क्या कहने? इस तरह एक के बाद एक उपलब्धियां गिनते जा सकते हैं। इन उपलब्धियों के लिए तमिलनाडु विद्युत बोर्ड का नाम गिनिज बुक में दर्ज हो रहा है, पता नहीं खुद विद्युत बोर्ड को इसका पता है कि नहीं।

गिनकर चार बूंदें पड़नी चाहिए। बस, चली जाएगी हमारे गांव की बिजली। पूरी बस्ती अंधकार में डूब जाएगी।

नारायण नायकर तैश में आकर पूछते, "यह बिजली आखिर किसके लिए रहती है....?" उनकी बनाई सूक्ति सुनिए, "बिजली की बत्ती के भरोसे थाली न परोसना...."

गर्मी के मौसम में खेती के लिए बिजली यों देते हैं, जैसे कोई कंजूस आदमी पैसे को दबा दबा कर गिनता है और देते देते हाथ खींच लेता है। जो बिजली दी जाती है बीच बीच में "बंद" का खिलवाड़ करते हैं शैतान के बच्चे।

बिजली का "शिफ्ट" कभी यों "फिट" होता है, अमावस्या की रात .... घुप्प अंधेरे में .... रात के बारह बजे सिंचाई के लिए ये लोग मुहूर्त शोधेंगे और हम लोगों के बागान और खेत गांव के बाहर जंगल के बीच में होगा। चाहे बिच्छू काटे या सांप डसे, सिंचाई के लिए चलना ही होगा।

उस समय मेरा बेटा दिवाकर सात साल का था। उस दिन मैं गांव में नहीं था, किसी जरूरी काम से मुझे बाहर जाने की मजबूरी थी। खेत में धान बोये थे। पानी सींचने की बारी आ गई। रात के बारह बजे के बाद का समय तय किया गया था, बिजली के "शिफ्ट" का समय वही था। आसमान के तारों को बादलों ने छिपा रखा था, समय का ठीक पता न चल रहा था। घर में कुल मिलाकर एक घड़ी थी, उसे अपनी कलाई में बांध कर चला गया था। मेरी घरवाली सोते "बच्चे" को जगाकर उसे साथ में ले चल रही है खेत में पानी देने के लिए। छोटा लड़का प्रभि पालने में सोया हुआ है। दोनों बागान की ओर जा रहे हैं। मां के लिए दिवाकर का साथ है, दिवाकर के लिए मां का साथ, और दोनों के लिए भगवान ही एकमात्र सहारा ! पंप सेट वाले कक्ष को खोलकर वह मोटर चालू करती है। यह सब करने के बाद दिवाकर टार्च लाइट का बटन दबाते हुए रोशनी दिखा रहा है। पानी

का बहना शुरू हो जाता है और जल की धारा नहर के मुहाने तक पहुंच गई है। पानी सींचने के लिए कंधे पर फावड़ा डाले नहर में पानी के बहाव के साथ साथ चलना होगा, टार्च की रोशनी में गौर से देखते जाना होगा कहीं अवरोध तो नहीं है? इधर घुप्प अंधेरे में मोटर की आवाज और जल के कल-नाद को सुनता हुआ दिवाकर बच्चा ढेंकली के पत्थर पर बैठा हुआ है, एकाकी।

पानी सींचते सींचते मेरी घरवाली को घर के अंदर पालने में सोते छोटे बच्चे की याद आ जाती है, "कहीं बच्चा नींद में ही जग जाए तो .... अपने चारों तरफ किसी को न देखकर डर जाए तो ...." यों मन में संकल्प-विकल्प की लहरें उठती-गिरती हैं, वह शांति से पानी सींच नहीं पाती। एक क्यारी में जब पानी पूरा भर गया तो दूसरी क्यारी के लिए मेड़ काटने के बाद, वह उस स्थान पर आती है जहां दिवाकर बैठा है। नन्हें से चूजे की तरह वह, अपने पिता का तौलिया ओढ़े चुपचाप बैठा हुआ है। मां पूछती है, "डर लग रहा है बेटे?" झट उत्तर मिलता है, "डर काहे का? जब तुम यहां हो पानी सींचते हुए मेरे पास हो ....।"

"यह लो, यह टार्च-लाइट रख लो अपने पास ..." मां टार्च दे रही है। "मुझे नहीं चाहिए, तुम ले जाओ। तुम्हारे लिए इसकी जरूरत पड़ेगी, वहां कोई कीड़ा या बिच्छू पड़ा हो तो दिखना चाहिए न ....।" बच्चा टार्च लेने को राजी नहीं है। मां उसे सांत्वना देती है, "नहीं बेटे, अच्छी तरह टार्च जलाकर देख लिया मैंने, वहां कीड़ा-वीड़ा कुछ भी नहीं है। तुम रख लेना।" उसके हाथ में टार्च थमाने के बाद वह हिचकती खड़ी रहती है।

फिर वहीं पास में पड़ी सूरजमुखी की डंडी—दो फुट के करीब लंबी—लेकर उसके हाथ में रखती है। बच्चा मां की आंख में आंख डालकर पूछता है, "यह काहे के लिए ....?" कहती है, "इसे भी रख लो, पास में डंडा रहे तो मन में डर नहीं लगेगा ...।" दिवाकर एकदम खुश, एकदम प्रफुल्ल, उमा देवी ने जब अपने पुत्र कार्तिकेय के हाथ में "शक्ति आयुध" रखा था, उस समय स्वयं कार्तिकेय ने इतनी प्रफुल्लता के साथ उसे स्वीकार किया होगा? शायद नहीं।

यह सब सावधानियां लेने के बाद पानी सींचने के बहाने वहां से हटती है और सीधे घर की राह लेती है, तेज कदम भरते हुए। गांव अभी नींद से जागा नहीं है। तभी मुर्गे की पहली बांग सुनाई देती है। दरवाजा खोल कर घर के अंदर दाखिल़ होती है और तभी छोटू रोने लगता है। "अच्छा हुआ, भाग कर आना ठीक ही रहा" यों सोचकर तसल्ली पाती है। बच्चे को झट हाथ में लेती है, घर में ताला लगाती है और बागान की ओर भागती है।

दिवाकर अकेले बैठा है, राम जाने वह क्या कर रहा होगा ...? आखिर बच्चा ही तो है। बागान के पास श्मशान है, कहीं कुछ देखकर भय न खाए। ओह, पास में कुआं है।

हाथ में टार्च होने की खुशी में पंप सेट वाले कक्ष में जाकर कहीं किसी चीज को छू ले तो ...? बिजली का मामला है, वह कितना खतरनाक है, बच्चे को इसकी समझ कहां होती है ...? मन में तरह तरह की आशंकाएं उठ रही हैं, उस समय मन में अपने कुल-देवता के साथ जितनी घनिष्ठता अनुभव करती है उतनी भगवान के साथ नहीं करती होगी।

बागान के पास पहुंचते पहुंचते मन में भीति बढ़ती गई। न तो पंप सेट वाले कक्ष से मोटर की आवाज आ रही थी न उस कक्ष से टेस्ट-लैंप की रोशनी दिखाई दे रही थी। एकदम काली अंधियारी बाहर भी और मन के भीतर भी। बिजली अपने आप बंद हो गई है या बच्चे के द्वारा स्विच या किसी चीज को छूने से बंद हुई है? वह जोर से बुला रही है, "दिवाकर ! दिवाकर !!" कोई उत्तर नहीं मिल रहा है। अनिष्ट की आशंका से मन थर-थर कांप रहा है।

2

पास में जाकर देखती है .... बच्चा कुएं के पासवाले उसी पत्थर पर सिमटकर सो रहा है। टार्च एक तरफ लुढ़का पड़ा है। सूरजमुखी की डंडी हाथ से फिसल कर दूसरी तरफ पड़ी हुई है। "विजन वन" में कुएं के समीप निपट अनाथ की तरह सोते हुए अपने बच्चे को देखकर मां का दिल सिहर उठता है। ऐसे वक्त पर किस मां का हृदय वेदना से कलप नहीं उठेगा?

अब हम इस परिस्थिति पर विचार करें, एक ऐसी स्थिति जिसमें कि श्मशान के पास जंगल के बागान में आधी रात के समय कुएं के समीप अपने दोनों बच्चों के साथ किसी स्त्री को प्रतीक्षा में बैठे रहने की मजबूरी होती है .... आपको बरबस सत्य हरिश्चन्द्र नाटक का वह दृश्य अवश्य याद आएगा जिसमें विश्वामित्र द्वारा प्रेषित नक्षत्रिय द्वारा तारामती और हरिश्चन्द्र पर जुल्म ढहाए जाते हैं। गांव लौटने के बाद फुरसत पाकर मैंने अपनी घरवाली से पूछा "अरे वो .... क्या नाम है उसका पानी सींचने की बात का क्या हुआ?" घरवाली ने सारी रामकहानी बड़े ही दिलचस्प ढंग से इस तरह सुनाई जैसे यह कोई हास्य-कथा हो।

गांव में एक उक्ति है, "क्या करें, हंसकर टालना पड़ता है।" गांव वाले किसी चीज को गंभीरता से नहीं लेते। बिजली न मिले तो उसे भी ये लोग अपना "ग्रहदोष" मानते हैं, पूछते हैं जब अपनी किस्मत में ही बिजली नहीं है तो बिजली विभाग का आदमी बेचारा इसके लिए क्या करेगा? इन लोगों ने ऐसी एक तबीयत पाई है।

बागान में जाकर देखिए तो पाएंगे फसलें पानी के बिना मुरझा रही हैं। कुम्हलाई-मुरझाई

फसल को देखकर स्वयं भी कुम्हलाने को विद्युत संस्थान संत वल्ललार* तो नहीं है।

हमारे अंदर क्रोध और आक्रोश का ज्वार उठता है। ज्ञानी पोतन्ना कहते हैं, "अरे, क्रोध को मारो, क्रोध को खा डालो, अहंकार और आक्रोश को खाकर पचा लो।" वे क्रोध को "कुत्ते" की संज्ञा देते हैं और अहंकार को "सूअर" का नाम देते हैं।

ज्ञानी पोतन्ना कहते हैं, "वही व्यक्ति उत्तम भागवत है, वही भगवान के लिए प्रिय पात्र है जो कुत्ते और सूअर का भक्षण करता है।"

मैं कोई ज्ञानी महात्मा नहीं हूं, मैं तो अदना-सा आदमी हूं।

मैं तो इक बिचारा नागरिक हूं हिंदुस्तान का जो कि गांधीवादी-समाजवादी-जनतांत्रिक देश कहलाता है।

यही नहीं, मेरा क्रोध या आक्रोश इन लोगों का क्या बिगाड़ सकता है? मेरी बीवी हास्य-रस में घोल कर उस घटना का वर्णन कर रही थी, उस समय मेरे मन में यह विचार उठ रहा था—क्या उस वक्त भी यही उत्साह और हास्य भावना इसके अंदर रही होगी जबकि यथार्थ में वह उस परिस्थिति से गुजर रही थी?

जब मैं जेल में था, मेरे साथ उसी कोठरी में एक चोर भी रहा था। राजनैतिक कारणों से मैं जेल गया था और वह चोरी के अपराध में पकड़ा गया था। दोनों एक कोठरी में बंद थे।

प्रथम दृष्टि में कोई भी उसे चोर नहीं मानेगा। देखने में भला था, दिलचस्प शख्स भी था। उसका नाम था - नल्लमुत्तु।

नल्लमुत्तु से बातें करते हुए उससे कई सवाल पूछता। वह भी बिना छिपाव-दुराव के जवाब देता। उसे जेल से पुलिस या कानून आदि किसी से भी कोई डर नहीं था। असल में "जेल की चिड़िया" था वह। खूब देश दर्शन कर चुका है, घाट घाट का पानी पी चुका है, पुलिस के हाथों हुई पिटाइयों का वह दिलचस्प वर्णन करता जैसे हास्य रस की कोई कहानी सुना रहा हो।

मैंने उससे पहली बार हुई पिटाई की कहानी सुनाने को कहा। उसने इस अदा के साथ शुरू किया जिस अदा के साथ कोई बड़ा संगीतज्ञ गाने का अनुरोध पाकर आलाप शुरू करता है।

कहने लगा, उस समय मैं तेरह चौदह साल का रहा होऊंगा। बड़ी भूख लग रही थी। समझ में नहीं आ रहा था क्या किया जाए। उन दिनों मुझे गजब की भूख लगा करती थी। घर में मां नहीं थी, मर गई थी। बाप ने दूसरी शादी कर ली थी। सौतेली मां "कंजी" तक पिलाने को राजी नहीं थी। जो होगा, देखा जाएगा यों सोचते हुए मैं एक होटल के

* वल्ललार-तमिलनाडु के संत रामलिंग स्वामीजी जिनकी जीव-दया वनस्पति-जगत तक व्याप्त थी, मुरझाई फसल को देखकर स्वामीजी का मन भी कुम्हला जाता था।

अंदर चला गया। जो खाने की इच्छा थी, पेट भर खा लिया। उसके बाद बिल हाथ में लिए मैंने सड़क का रुख लिया और लगा तेजी से भागने। अरे शैतान की तरह पुलिस का सिपाही क्यों सामने आ रहा है? पीछे से "पकड़ो, पकड़ो" की आवाज आ रही थी और सामने से पुलिस। मैं चाहता तो उसे पार करके आगे निकल सकता था। अगर मैं भागता तो वह सिपाही मुझे कभी नहीं पकड़ पाता। पर मैं रुक गया और उसने मुझे पकड़ लिया।

पकड़े जाने पर होटल के अंदर के मालिक और दूसरे लोग भागे आए मुझे मारने के लिए। पुलिस ने उन्हें रोक दिया, "छूना नहीं। हम लोग फिर किसलिए हैं? तुम लोगों को यह सब झंझट करने की जरूरत नहीं है ...." यों कहते हुए वह मुझे होटल के अंदर बुला लाया। सामने एक कुर्सी पर मुझे बिठाने के बाद वह अपनी मर्जी की चीजें मंगाकर खाने लगा, मानों कोई हादसा ही नहीं हुआ हो। पहले उसने मिठाइयां मंगाकर उन्हें हड़प लिया। फिर इडलियां और बड़े .... इडली के दो टुकड़े करता, फिर चटनी और सांबर में डुबो कर लपेट लेता, मुंह में रखते ही वह टुकड़ा "तपाक" से अंदर चला जाता।

कहने लगा, उस पुलिस वाले का मुंह काफी लंबा-चौड़ा था, कलछी भरकर हलवा मुंह में रख दें, एकबारगी अंदर चला जाता, इतना बड़ा था उसका मुंह। बैरा को बुलाकर उसने स्पेशल दोसा का आर्डर दिया, साथ में उसे हिदायत दी कि दोसा कड़क बनना चाहिए, सोने के रंग में एकदम कड़क। तवे से उतार कर लाते हुए भाप यों उ....ड़....नी चाहिए उस भाप के साथ घी की सुगंध आनी चाहिए देखो, इतना घी उड़ेलना चाहिए। यह कहते हुए उसने हाथ की घी उड़ेलने की मुद्रा बनाई।

पुलिस जवान को इस तरह रसिकतापूर्ण ढंग से खाते देखकर नल्लमुत्तु के मन में भी इच्छा जगी कि अगली बार मौका मिलने पर किसी अच्छे होटल में जाकर इसी अंदाज से खाना चाहिए। इस प्रसंग पर नल्लमुत्तु ने अपने बाएं हाथ की कलाई पर दाहिनी भुजवल्ली टेकते हुए फन फैलाते सांप की मुद्रा बनाई और कहा, "उस पुलिस वाले का पेट पूरा एक हाथ लंबा था।"

इन सारी चीजों को जैसे तैसे उदरस्थ करने के बाद वह दो कॉफी क्यों मंगा रहा है? शायद एक प्याला मुझे पिलाने के लिए मंगाया होगा। लेकिन देखते देखते उसने दोनों प्याले उंड़ेल लिए। उठते हुए मुझे देखकर उस कृपालु ने इतना जरूर पूछा था, "क्यों रे, पानी पिएगा?" मैंने सोचा, इतना सारा खा लिया है तो बिल की रकम भी तगड़ी आएगी। पर आश्चर्य की बात! उसके सामने बिल लाया ही नहीं गया।

"हुम्....क्या देख रहा है, चल बे।"

होटल के मालिक और दूसरे लोगों ने खुशी खुशी उसे मेरे साथ विदा किया।

मैं उस होटल से खाने के बाद भागा था, यह सिपाही खाने के बाद आराम से चल रहा है। फर्क यही है यह कहते हुए नल्लमुत्तु हंसने लगा।

पुलिसवाला नल्लमुत्तु को थाने ले चला।

जो बात हुई, उसने "हेड" साहब को सुनाया, विस्तार से। लेकिन होटल के अंदर तरह तरह के पकवानों में खुद ने कैसे डुबकी लगाई, इस पर एक लफ्ज भी नहीं बोला।

"होटल मालिक क्या बता रहे थे? आ रहे हैं कि नहीं?" एक सिपाही ने पूछा।

"और क्या? उनके बिना काम कैसे चलेगा? कहीं दाल के बिना शादी होती है? आएंगे जरूर।"

होटल मालिक से जिस पुलिस वाले ने पूछताछ की, मेरे पास आकर मुझे घूरा। दो बार मेरे चारों तरफ मंडराया। मैं उसकी "चाल" को देखता हुआ बैठा था ....

"क्यों बे, मुझे घूरता है?" यों पूछते हुए मेरी कनपटी पर एक मार रसीद कर दी।

"रयु .... ड्. ... ड् ..." कान के अंदर गुंजना महसूस हुआ।

मार मेरे दाएं कान पर पड़ी थी। इससे मुझे एक तथ्य का बोध हुआ। वह सिपाही बाएं हथिया है ....

पलक मारने से पहले मेरी बाईं, कनपटी पर जोर की मार पड़ी, "र .... फ्" की आवाज के साथ यह "हेड" की मार थी।

जब तक मेरी नजर "हेड" की ओर घूम ले तब तक बाएं हथिए ने दूसरी मार रसीद की, "रयुड.....ड्...."

यों रफ, रयुड, रफ करते हुए दाईं और बाईं कनपटी पर बारी बारी से मार पड़ रही थी।

पिटाई के इस अनुभव को बड़ी दिलचस्पी से नल्लमुत्तु बयान करता गया .... हास्य रस में घोल कर बड़े मजे से ....। जब उसने मार खाई थी तब उसके अंदर यह रसिकता नहीं रही होगी।

बिच्छू काटे के दर्द से तड़पता हुआ व्यक्ति दर्द थम जाने के बाद, सोचने लगता है क्या सचमुच हमीं उस दर्द को भुगत रहे थे?

मेरी घरवाली तो बड़ी दिलचस्पी के साथ अपनी दर्द भरी दास्तान सुना रही थी, यह सच है कि उसे सुनते समय मेरे मन में क्रोध और आक्रोश के भाव उठे थे। तमिलनाडु विद्युत बोर्ड दुखभरी इस दास्तान को भुलाने का मौका दिए बिना उसके बाद भी हम पर कहर बरपा कर रहा है। लोगों के कष्ट के बारे में इन "लाट साहबों" के मन में कोई परवाह नहीं है।

एक दिन अचानक बिजली बोर्ड वाले आए। कुएं के पंप सेट की मोटर खोलकर ले गए। मैंने जब पूछा, "क्या बात है, किसलिए ले जा रहे हैं?" उनका जवाब था, "आइंदा मीटर के अनुसार आपको बिजली प्रभार जमा करना नहीं पड़ेगा। "अश्व शक्ति" के हिसाब से साल भर का प्रभार तय किया गया है। उतना पैसा जमा करना काफी होगा।"

ऊपर से देखने पर यही लगेगा कि सरकार किसानों के लिए यह कोई बड़ी रियायत कर रही है। लेकिन इसे सुनते ही मैंने समझ लिया, "ठीक है हमारे सिर पर दूसरी कोई विपत्ति टूटने वाली है।" और यह सच निकला।

3

जो कर्मचारी मीटर उतार कर ले गए उन्होंने यही बताया था।

प्रति "हार्स पावर" साल भर के लिए 75 रुपए तय हुए हैं। इस हिसाब से मेरे द्वारा तीन हार्स पावर वाले पंप सेट के लिए देय राशि वर्ष भर के लिए 225 रुपए निकलते हैं। मैंने चेक करना चाहा कि इससे पहले मैंने कितनी राशि प्रतिवर्ष जमा की है। इसके लिए मैंने पुराने बिल और रसीदों को ढूंढ़कर करीने से रख लिया।

"इ. चत्तिरपट्टी एस.सी. नंबर 13 श्री राजनारायण पेरुमाल रामानुज नायकर।" (आप पूछ रहे हैं न यह इ. चत्तिरपट्टी क्या चीज है? यह भी अजीब तमाशा है। बिजली बोर्ड की कोविलपट्टी शाखा में जाकर अगर आप इडैचेवल का नाम लेकर पूछेंगे तो साफ जवाब मिलेगा, "ऐसी कोई जगह नहीं है।" तब आप इ. चत्तिरपट्टी का नाम लेंगे, तभी उत्तर मिलेगा।

बिजली बोर्ड की कयत्तार शाखा को आप कयत्तार में चलकर कोने कोने में छानिए, बस्ती और परिसर में खोजिए, आप ढूंढ़ नहीं पाएंगे, वह तो गंगैकोण्डान के पास से आप को टुकुर-टुकुर ताकती बैठ रही है। अगर आप सोचेंगे कि कयत्तार वाली शाखा को कयत्तार में ही होना चाहिए, आप अव्वल दर्जे के अहमक हैं।)

साल भर की, राशि अदा की गई बारहों रसीदों का जोड़ लगाकर देखा तो किसी भी वर्ष में डेढ़ सौ रुपए से अधिक नहीं आया था। एक अश्व शक्ति पर 75 रुपए किस हिसाब से लगाए गए हैं, समझ में नहीं आ रहा था। संभव है, तट प्रदेश को मद्देनजर रखकर यह प्रभार लगाया हो। काली माटी अंचल के लिए यह दर एकदम ज्यादा है।

1985 के लिए उनके द्वारा प्रेषित बिलों को देखकर मैं सकते में आ गया। कारण, 5 अश्व शक्ति को लिए प्रभार लगाया गया था। मेरे पास जो पंप सेट था, वह तीन अश्व शक्ति वाला था। यह गलती कहां किस स्तर पर आ गई? इसके पीछे एक कहानी है।

यह सच है कि मेरे नाम दर्ज सर्विस नंबर 13 जो है, उसके अंतर्गत 1974 तक 5 अश्व शक्ति वाला पंप सेट ही रहा था। 1973 की जुलाई में मेरे और मेरे छोटे भाई के बीच में जो लिखित समझौता हुआ था उसके अनुसार हम दोनों ने तय किया आगे से उस कुएं में तीन तीन अश्व शक्ति के दो पंप सेट लगा लेंगे। तदनुसार हमने काम शुरू किया था।

अपने महिमामंडित तमिलनाडु बिजली बोर्ड से आप इतनी आसानी से नए पंप सेट के लिए कनेक्शन नहीं पा सकते, इतने समय के अंदर आप सीधे देवलोक जाकर देवामृत

ले आ सकते हैं।

हम दोनों भाई कोविलपट्टी स्थित कनिष्ठ अभियंता (एस.एस.) के कार्यालय की तीर्थयात्रा पर चले कंधे पर "कांवर" लेते हुए। उन्हें यह बात विस्तार के साथ समझाई; इस बात का भी ध्यान रखा मन में कि उन्हें यह बात विस्तार के साथ बताने से खीझ न पैदा हो।

मेरे पास जो 5 अश्व शक्ति वाला पंप सेट था उसे 3 अश्वशक्ति में बदलने की अनुमति तथा मेरे भाई के लिए नए पंप सेट का कनेक्शन नए सर्विस नंबर सहित, 1974 में ही प्राप्त हो गया था।

मैंने कनिष्ठ अभियंता ग्रामीण क्षेत्र (एस.एस.) से मिलकर ये सारी बातें सिलसिलेवार समझाई और लिखकर भी दिया। फिर भी बेताल जिस तरह फिर से सेंजनी के पेड़ पर चढ़ गया था, वैसे ही 5 अश्व शक्ति का बिल आ गया। "हे भगवान ! यह कैसा अन्याय है।" यों सोचते हुए फिर कनिष्ठ अभियंता के पास भागा। उन्होंने पुनः एक बार लिखित रूप में आवेदन पत्र मांगा और आश्वस्त किया कि इस पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे। (क्या हम पूछ सकते हैं उनसे "क्यों बे, पिछली बार जो आवेदन पत्र लिखकर दिया था, उसका क्या हुआ?") चुपचाप पालन किया फिर हर महीने उनके कार्यालय की तीर्थ यात्राएं कीं। इन सब के बावजूद कुछ नहीं हुआ। फिर एक बार मैं कनिष्ठ अभियंता के समक्ष मिला। वे कुछ जरूरी सरकारी पत्रों पर दस्तखत कर रहे थे। उनके पास जाकर खड़ा हो गया मैं। तब उनकी नाक ने शायद उनके दिमाग को यह सूचना संप्रेषित की होगी कि आसपास कहीं से आदमी की बू आ रही है। चश्मे के ऊपर से झांक कर देखा। उस दृष्टि का मतलब था, यह तो वही फिसड्डी आदमी है। मैंने हाथ जोड़ कर उन्हें "नमस्ते" समर्पित की। उसे स्वीकार करते हुए उन्होंने निर्देश दिया, "आप क्या करेंगे, सीधे मेन रोड वाले हमारे राजा बिल्डिंग वाले दफ्तर में जाएंगे। ठीक है? वहां जाकर फलां से मिलेंगे, अच्छा? मिलकर मेरा नाम लेंगे और उनसे पूछेंगे कि इस मामले पर फलां फलां पेपर उनके पास है कि नहीं। पूछकर अगर हो तो उनका नंबर नोट करवा के ले आएंगे। समझे?" इस निर्देश के साथ उन्होंने मुझे पठा दिया। मैं वहां से चल पड़ा "राजा बिल्डिंग" को देखने के लिए।

जिस तरह किसी उब्बे को उलटकर ठोक-पीट कर ढूंढ़ा जाता है, वहां पर उपलब्ध फाइलों के सारे कागज देख लिए गए। चालीस साल पहले मेरे द्वारा हस्ताक्षरित करारनामे तक वहां मौजूद थे। किंतु 1974 में 5 अश्व शक्ति को 3 अश्व शक्ति में बदलने के लिए पेश किया गया आवेदन पत्र नहीं मिल रहा था।

"तिरुनीलकंठ" फिल्म में एम.के.त्यागराज भागवतर गाते हैं :

माटी में छिपाया थाल

छिप गया कहां, ना जानूं
यह कैसी माया है !
हे महामुनि, कैसा यह मंत्र है !
माटी में छिपाया दुनिया की नजर बचा के
अब कहां छिप गया मेरी नजर बचा के
ईश जाने, दीमक खा गया उसे
या चोर ने उठा लिया
पूर्व जन्म का यह कर्म फल है?
या कि भगवान ले रहे परीक्षा?
माटी में छिपाया थाल.....।

राग दरबारी में इस गीत को गुनगुनाते हुए मैंने उनसे आज्ञा ली और गाड़ी हांकते हुए गांव पहुंचा। अगली बार से जब भी कोविलपट्टी जाने का प्रसंग आता तो कनिष्ठ अभियंता के दफ्तर में चढ़ाई कर देता।

बार बार चढ़ाई करने वालों की फेहरिस्त में दो नाम बड़े मशहूर हैं—(1) मुहम्मद गजनी (2) राबर्ट ब्रूज।। लगातार की कोशिश से अपने मकसद में कामयाब हुए इन दोनों ने जितनी बार हमले किए थे उतनी से कहीं अधिक बार मैंने हमले किए। एक कहावत है "नहीं चलेगा तुम्हारा काम, भले ही बारह बार यात्रा करो पलनी की, कांवर लेकर। इसी तर्ज पर अब एक नई कहावत बन सकती है, "नहीं चलेगा काम तुम्हारा, भले ही तीन सौ बार हमला करो बिजली बोर्ड पर।" मैंने तीन सौ चक्कर काटे थे।

कनिष्ठ अभियंता ने सलाह दी, "आप चुपचाप 3 अश्व शक्ति वाले पंप सेट के लिए एक दूसरा करारनामा लिख दीजिए।" समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उन्हें क्या जवाब दूं।

"ठीक है, फर्ज क़ीजिए कि मैं दूसरा करारनामा लिख देता हूं। लेकिन 3 अश्व शक्ति वाले पंप सेट के लिए किस दर पर बिल चुकाऊं?"

"सो तो 5 अश्व शक्ति के हिसाब से चुकाना होगा।"

मुझे यह सरासर अन्याय लग रहा था। चौदह साल के लिए 5 अश्व शक्ति की दर से पैसा चुकाने के लिए कह रहे हैं, यह कहां का न्याय है?

तीन महीने में एक बार 5 अश्व शक्ति के लिए बिल चुकाने का तकाजा करते हुए नोटिस मेरे कार्ड में दर्ज होता गया। हमारे गांव में पंप सेट के लिए बिल की रकम उचित समय पर बिला नागा जमा करने वाले लोगों में मैं भी एक था। गांव में ऐसे भी आसामी हैं जिन्होंने कई वर्षों से बक़ाया रख छोड़ा है। अब तो मैं इन लोगों की भी अवहेलना का पात्र बन गया।

4

कोविलपट्टी में सबसे बड़े अधिकारी हैं मुख्य बिजली अभियंता। उनसे मिलकर फरियाद करने क़ा विचार बनाकर मैं घर से चल पड़ा।

बड़े अधिकारी हैं इसलिए तो उनसे मिलने के लिए बड़ी देरी से इंतजार करना पड़ा। उसके बाद अंदर जाने की अनुमति मिली। "धकेलो" वाले दरवाजे को धकेलते हुए मैं भीतर दाखिल हुआ। बड़े साहब थे न ! पद के लायक शान के साथ विराजे थे। मुझे अचानक "जूनियर विकटन" में अपने द्वारा लिखी कहानी "करेंट" की याद आ गई। जिन पाठकों ने वह कहानी नहीं पढ़ी है, उन पाठकों के हित में वही वर्णन यहां दुहरा रहा हूं।

"रामस्वामी नायकर जब बड़े अधिकारी के कमरे में दाखिल हुए, अधिकारी थर्मस फ्लास्क से काफी उंड़ेल उंड़ेल कर पी रहे थे, अपना जबड़ा ऊंचा करके छत को देखते हुए। जब वे इस तरह ऊपर को मुंह किए काफी निगल रहे थे, उनके गले के मध्य भाग में उभरा हुआ गोल-सा कोई पिंड ऊपर-नीचे हुआ जा रहा था।

उस अधिकारी की नाक लंबी थी और बदन छरहरा था। सिर के बाल सन की तरह सफेद हो चले थे।

अपने समीप किसी व्यक्ति की उपस्थिति का आभास उन्हें अवश्य लग रहा था, देखने की आवश्यकता नहीं है, अपने आप जान लेते हैं।

जिन लोगों को अधिकारी होने का तजुर्बा है, वे ही इस ढंग से "देख" सकते हैं। उनके ख्याल में जो खड़ा है वह कोई "तुच्छ आदमी" है, यदि बाघ आकर खड़ा हो जाए तो क्या वे यों अनदेखी कर सकते थे?

अधिकारी अखबार उठाकर पढ़ने लगे। उस कमरे में दीवार की घड़ी थी, और उसके पेंडुलम के हिलने की आवाज को छोड़कर और कोई आवाज नहीं थी। कभी कभी कमरे में हवा दाखिल होती और कागजों में फड़फड़ाहट पैदा करती।

यह मौन जो कि एक आदमी को दूसरे आदमी के सामने नम्र बना देता है, अधिकारी के लिए उल्लासमय और किसान के लिए विषादपूर्ण था।

निराशा भरी लंबी सास छोड़कर नायकर बिल्ली की तरह धीमे कदमों से लौटने लगे।

तब जाकर अधिकारी ने अखबार से अपना चेहरा बाहर निकाला जैसे किसी खिलौने का मुखड़ा हिल रहा हो। फिर पूछा, "क्या चाहिए ....?"

इस़ तरह कहानी में मेरे द्वारा वर्णित अधिकारी और मेरे समक्ष बैठे इस अधिकारी में पर्याप्त अंतर था।

मुझे बिठाकर उन्होंने अथ से इति तक पूरा विवरण ध्यानपूर्वक सुना। फिर एक एक मुद्दे का जवाब दिया :

"मीटर को उतार लेने के बाद, निश्चित राशि जमा करने का आदेश जो दिया गया, जहां तक हम समझते हैं, हमें भी वह बात सही नहीं जंचती। वह 'पालिटिक्स' की बात है, न हम उस पर बहस कर सकते हैं, न कोई फैसला ही दे सकते हैं।

आपका कहना है कि पांच अश्व शक्ति के पंप सेट को 3 अश्व शक्ति में बदलें। चौदह वर्ष हो गए हैं। इसके लिए कोई पक्का सबूत न आपके पास उपलब्ध है, न हमारे पास ही।

"इन सारे तथ्यों और अपनी मांगों को विस्तार से लिखकर हमारे पास दे जाइए, जो भी संभव होगा, अवश्य करेंगे।" बड़े अधिकारी ने हमें बड़े आराम से समझाया। तदनुसार आवेदन पत्र देकर मैं लौट आया।

एक दिन अपने पास बिजली बोर्ड से संबंधित जितने सारे कागजात थे उन सबको उलट-पुलट कर देख रहा था, माथे पर चिंता की शिकन के साथ। एकाएक मैं उछल पड़ा क्योंकि मुझे एक "प्रमाण" मिल गया। कनिष्ठ अभियंता के नाम रु. 2.30 पै. जमा करके प्राप्त रसीद थी वह सौभाग्य से उस में स्वयं कनिष्ठ अभियंता ने अपने हाथ से एक पंक्ति लिखी थी - "5 अश्व शक्ति को 3 अश्व शक्ति में बदलने के लिए।" उसे लेकर मैं कनिष्ठ अभियंता के पास दौड़ा। रसीद देखकर वे बोले "अच्छी बात है। तब तो आप से संबंधित कागजात हमारे पास भी होने चाहिए, ढूंढ़कर देखते हैं।" फिर कहा, "इसे हिफाजत के साथ अपने पास रख लीजिए, इसकी फोटो प्रति लेकर हमें दे जाइए।" उसके मुताबिक मैंने फोटो कापी निकलवाकर उन्हें दे दी।

उसी रसीद को लेकर मैं बड़े अधिकारी से मिलने चला।

ये वही अधिकारी थे जिनसे मैं पहले एक बार मिला था। अधिकारी वही थे, लेकिन अब "चेहरा" अलग ही था। मैंने सुना है राजाओं और अधिकारियों के मुखड़े इसी तरह बार बार बदलते रहते हैं। जनसाधारण के साथ सहज ढंग से बातचीत करते हुए उसी समय अनायास "मुंह फुला लेने की" तबीयत भगवान ने इन्हें दी है।

मेरे द्वारा बढ़ाई रसीद पर दृष्टिपात करने के बाद अधिकारी बोले :

यह तीन अश्व शक्ति में बदलने के लिए रसीद है भई, 3 अश्व शक्ति बनाने का रिकार्ड नहीं है?" (सही जमा दिया मामला उन्होंने फिट कर लिया अपने पक्ष में)।

किसान समझ तो लेता है कि उसके साथ ठगी हो रही है, पर उसकी स्थिति ऐसी है कि वह चूं तक नहीं कर सकता।

तीन अश्व शक्ति में बदलने के संबंध में कोई आदेश मुझे विद्युत बोर्ड से नहीं मिला है, यह सच है। किंतु वायरमैन आकर हमें सूचना देता है कि फलां तारीख को कनिष्ठ अभियंता आने वाले हैं। फिर सूचना मिलती है आज आ रहे हैं। उसके मुताबिक उक्त तिथि में वे आते हैं और अपने सामने बिजली का कनैक्शन दे जाते हैं। यही कार्यविधि

है और यही दस्तूर है।

इस दस्तूर के मुताबिक तीन वर्ष में एक बार निरीक्षण हुआ है, घर घर में जाकर निरीक्षण हुआ है।

निरीक्षण के दौरान इस बात की जांच होती है कि बत्तियां करारनामे में लिखित संख्या में हैं या अधिक, इसी प्रकार पंप सेटों की भी जांच तीन साल में एक बार होती है। उसमें यह देखा जाता है कि अश्व शक्ति बढ़ी तो नहीं है। तदनुसार, इन 14 वर्षों में चार बार आकर आपके अधिकारी मेरे पंप सेट का मुलाहिजा कर चुके हैं और यह प्रमाणित कर गए हैं कि हां, 3 अश्व शक्ति ही है।

जब मैंने इस दृष्टांत का सहारा लिया तो अधिकारी का चेहरा इतना-सा हो गया और साथ ही उनका दृष्टिकोण भी बदल गया।

गौर से देखा जाए तो यह किसी खास किसान और अधिकारी के बीच का कोई व्यक्तिगत मामला नहीं है। इसलिए इसमें प्रतिष्ठा का सवाल उठता ही नहीं है। यहां व्यक्ति को नहीं, विषय को अहमियत दी जानी चाहिए। मैं समझ गया कि इसके आगे भी वहां खड़े होकर उनके कान में अपने शब्दों की धारा बहाना चट्टान के ऊपर जल गिराने के समान है सो, भारी हृदय के साथ मैं उनके कमरे से निकला।

अपने अनुभव में मैं कई सारे अधिकारी देख चुका हूं। अब तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, जब तक सरकार रहेगी, अधिकारी भी अवश्य रहेंगे। एक कहावत है, "जब तक नाक रहेगी तब तक जुकाम भी रहेगा।"

कहा गया है कि यदि हमने पूर्वजन्म में पुण्य किया हो तो उसके अनुसार हमें आज्ञाकारी पुत्र, सुशील पत्नी, सुंदर गृह, अच्छा पड़ोसी, उपजाऊ जमीन—यह सब प्राप्त होगा। इस सूची में "अच्छा अधिकारी" मिलने की बात भी अवश्य जोड़ी जानी चाहिए।

लेनिन इस पर काफी माथा-पच्ची करने के बाद भी यहीं पर अटके : "इंकलाब अच्छी चीज है, हम क्रांति करके सरकार पर भी कब्जा कर सकते हैं, लेकिन हुकूमत—प्रशासन—किसे सौंपा जाए?"

सहस्रों बार सरकारें बदली हैं, पर अधिकारी वर्ग कहां बदलता है? नौकरशाही ज्यों की त्यों रहती है। फलां दल का मंत्रिमंडल गिर जाता है और ठिकां दल अपना मंत्रिमंडल बनाता है। पर अधिकारी वर्ग जस के तस अपनी कुर्सी पर चिपका रहता है, उनकी कुर्सी मजबूती के साथ जड़ जमाए है, वह उसी शान से कुर्सी पर बैठा रहता है।

इन्द्र बदलता है, इंद्राणी वही रहती है, उसे बदल नहीं सकते। कहते हैं, उसे बदलना नहीं चाहिए। शुरू शुरू में मंत्री की सहायता करने के लिए ही अधिकारी की नियुक्ति हुई थी। आगे चल कर यह इंद्राणी वाली कहानी हो गई। राजाजी ने जब मद्रास प्रांत के प्रधान के रूप में पदभार संभाला था, उन्होंने डा. टी.एस.एस. राजन को अपने मंत्रिमंडल

में शामिल कर लिया था। राजन द्वारा शपथ ग्रहण का कार्यक्रम संपन्न हुआ, उसके बाद स्वयं राजाजी उन्हें मंत्री-कक्ष तक छोड़ने गए। राजन को उन्होंने मंत्री की कुर्सी पर आसीन कराया और एक सूत्र-वाक्य सुनाया मंत्र समान—उनके कान में।

"अधिकारियों को आदेश दिया करो, उनसे सलाह कभी न लेना।" यह था वह सूत्र-वाक्य, यही था वह मंत्र। कितना अर्थपूर्ण कितना महत्वपूर्ण वचन था !

सलाह मांगने पर क्या होगा? बस, अधिकारी आपके कंधे पर सवार हो जाएंगे पिशाच की तरह। जब तक आपके पास पद और अधिकार रहेगा या जब तक आपका अधिकार और पद छिन न जाता, आपको उन्हें अपने कंधे पर ढोये रहना पड़ेगा।

सरकार बदलने के प्रत्येक अवसर पर अधिकारी वर्ग पुराने मूषक की भांति कुछ न कुछ उपद्रव मचाता है। अंग्रेजों ने जब हिंदुस्तान की हुकूमत हमारे नेताओं के हाथ में सौंपी थी उस समय हमारे देश के कुछ बड़े हाकिम अजीब ढंग से पेश आए थे, उनका बरताव बड़ा अटपटा रहा था, इसकी जानकारी नई पीढ़ी के लोगों को नहीं है। यह चालीस साल पुरानी बात है।

1947 अगस्त की 14वीं तारीख। तिरुनेलवेली जिले के कलेक्टर को (नाम का उल्लेख करने की जरूरत नहीं है) हमारी आजाद सरकार के अधीन मुलाजिम रहना गवारा नहीं हुआ।

उनका भी जन्म इसी देश की मिट्टी में हुआ था, पालन-पोषण भी यहीं हुआ था। सिर्फ आई.सी.एस. की दीक्षा उन्होंने इंग्लैंड में ली थी। बस, उसी क्षण से लेकर वे अंग्रेजी हवा में सांस लेने लग गए (बोलचाल, सोच-विचार, खान-पान, सोना-उठना सब कुछ अंग्रेजी में)। उनके मन को यह विचार कचोट रहा था कि अगले दिन का सूर्योदय अगस्त 15 को होगा।

हमारे "काले साहब" को कुछ नहीं सूझ रहा था। दुनिया वाले जरूर पागल हो गए हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के शानदार झंडे—यूनियन जैक—को नीचे उतार कर उसकी जगह मोटी खादी का बना तिरंगा झंडा फहराने वाले हैं ! कितना बड़ा उत्पात है यह !

हिंदुस्तान की जमीन पर चमकता हुआ यह सूरज शाम होते ही अस्त हो जाएगा। वे जिस ब्रिटिश साम्राज्य में हुकूमत चला रहे थे, उस साम्राज्य में सूर्यास्त कभी नहीं होता। ऐसे महिमा-मंडित साम्राज्य में अधिकारी रहने के बाद केवल मात्र चावल और रोटी खाने वाले देशी नेताओं के अधीन नौकरी करने के लिए क्या उनका दिमाग इतना खराब हो गया है?

कलेक्टर ने तैश में आकर कागज का एक टुकड़ा फाड़ लिया। झट से इस्तीफा दे दिया—यह ले तेरी दो कौड़ी की नौकरी, हमें नहीं चाहिए यह। अपने इस्तीफे में उन्होंने स्पष्ट रूप से कारण का उल्लेख किया था, "स्वतंत्र भारत में सेवा करने की मेरी इच्छा

नहीं है।" नये कलेक्टर भागे भागे आए तिरुनेलवेली। अगली सुबह स्वतंत्रता दिवस की सुबह है, वह भी पहला स्वतंत्रता दिवस। नए कलेक्टर को अपना पदभार बाकायदा सौंप दिया हमारे "काले साहब" ने।

कुर्सी तो उन्होंने खाली कर दी, लेकिन अपना सरकारी आवास नए कलेक्टर के रहने के वास्ते खाली करने को राजी नहीं हुए। हमेशा दस्तूर यही चला आ रहा था कि जाने वाला कलेक्टर बंगला छोड़ जाता, क्योंकि परंपरा से वह कलेक्टरों के रहने का "कलेक्टर बंगला" था। ताम्रपर्णी नदी के किनारे बना हुआ शानदार बंगला ! वह असल में एट्टयपुरम जमींदार का निजी बंगला था।

"जमींदार से मैंने उस बंगले को अपने नाम लिखा लिया है, आप अपने लिए कोई दूसरी जगह ढूंढ़ लें" यों कहकर उन्होंने नए कलेक्टर को अंगूठा दिखा दिया, दूसरे शब्दों में उन्हें बेदखल कर दिया। आजाद हिंदुस्तान के पहले तिरुनेलवेली कलेक्टर को इस तरह बेघर होकर बीच सड़क पर खड़ा रहना पड़ा।

5

नए कलेक्टर के लिए सरकारी बंगला खाली करने से इंकार कर दिया पुराने कलेक्टर ने। मुझे अभी भी याद है कि उनका यह दुस्साहस जिले भर में गली चौराहों में कई दिनों तक चर्चा का विषय बना रहा।

जब वे कलेक्टर थे, अपने अधिकार का "उपयोग" करते हुए उन्होंने उक्त कलेक्टर बंगला अपने नाम लिखा लिया था।

जब मैं बड़े अधिकारियों के बारे में इसी तरह की बातें लिखता जा रहा हूं, इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए ... "टोकरी भर पत्थर हैं सबके सब भुतहा पत्थर हैं।"

बढ़िया से बढ़िया, सोने और कुंदन के समान बढ़िया अधिकारियों का भी जिक्र करना चाहता हूं।

भारत के आजाद होने के साथ साथ हमारे यहां ऐसे अधिकारी भी हुए हैं जो नवयुग के नए जागरण के अनुरूप सक्रियता से पेश आए। उनकी इस सक्रियता को संवर्धित करने के बजाए तिल तिल करके उसका दम घोंटने का श्रेय हमारे राजनीतिज्ञों को है। देखते देखते ऐसे नेक अधिकारी भी "गधे" बन गए।

हमारे जिले में एक अनोखे कलेक्टर आए। गली-नुक्कड़ सब कहीं उन्हीं की चर्चा थी। उनका स्मरण आते ही सिनेमा घर के मालिक थर थर कांपते थे। जनता को किसी तरह की कोई सुविधा दिए बिना थिएटरों के अंदर उन्हें ढोर की भांति ठूंसे जाने का इस कलेक्टर ने विरोध किया। इनके आने के बाद यों "ठूंसा जाना" बंद हुआ। जिन थिएटरों

में पेशाव-घर जैसी जन-सुविधाएं और स्वास्थ्य रक्षा संबंधी कोई प्रबंध नहीं था, उनका लाइसेंस उन्होंने रद्द कर दिया। सीटों की संख्या से अधिक टिकट जारी करने वाले सिनेमा-घरों पर वे भारी जुर्माना लगाया करते थे। बसों के मालिक अपने वाहनों में "ओवर लोड" करके स्त्रियों और बच्चों समेत जनता को ठूंस कर पैसा नहीं निचोड़ पाते थे। कलेक्टर ऑफिस जो पहले मछली बाजार जैसा दिखाई देता है, सिर्फ इनके कार्यकाल में सही माने में कलेक्टर आफिस के रूप में शोभायमान रहा। ठेकेदार लोग सीमेंट में अंधाधुंध रेत मिलाने में असमर्थ थे, दम घुटने लगा था उनका। सीमेंट के बोरे काले बाजार में बेच नहीं पा रहे थे। हर कहीं कलेक्टर का दबदबा था। और तो और दूध में पानी मिलाना, चीनी में सूजी मिलाना, काली मिर्च में गुलबाज के बीज या चावल में कंकड़, लाल मिर्च के पाउडर में ईंट का चूरा—यों मामूली और स्वाभाविक "मिलापों" के भी दुश्मन थे यह कलेक्टर। वणिक महाप्रभुओं का धंधा चौपट हो रहा था, वे नए कलेक्टर के लिए "यमराज" की गाली निकालते थे।

कोई नहीं बता सकता था कि यह कलेक्टर सोते कब हैं और उठते कब हैं। कोई कहता कि उन्हें सुबह कोविलपट्टी में देखा था तो दूसरा कहता मैंने दोपहर को उन्हें नांगुनेरी में देखा। मुख्य मार्ग पर चलती उनकी जीप किस समय किस गांव में प्रवेश कर जाए, कोई नहीं बता सकता। पता नहीं क्यों, कुर्सी पर बैठकर सोने के लिए उस स्कूल मास्टर को वही समय मिला जब इनकी जीप स्कूल के अहाते में आकर रुकी। कलेक्टर ने उस मास्टर से साफ बता दिया, "काहे को आप इस तरह स्कूल में आकर सोने का कष्ट उठाते हैं। चलिए न घर और सोइए आराम से बिस्तर लगाकर।" यों इस कलेक्टर के मारे अध्यापकों की भी नींद हराम हो गई।

इस तरह के एक तूफानी कलेक्टर को तिरुनेलवेली जिले ने इससे पहले नहीं देखा था। एक कहावत है, "खाने में अति शूर, काम करने में अति शून्य।" इस कलेक्टर ने इस कहावत को उलट दिया। प्रत्येक विख्यात पुरुष के साथ उनका दिया एक सूत्र वाक्य प्रसिद्ध होता है। इसी न्याय से इस कलेक्टर के नाम से कई किस्से और सूत्र वाक्य लोगों की जबान पर चढ़ गए। उनमें से दो किस्से अभी भी याद हैं।

कलेक्टर अपने कार्यालय के अहाते में खड़े हैं। एक आदमी उनसे मिलने आता है। आगत व्यक्ति को पता नहीं कि यही कलेक्टर साहब हैं। कलेक्टर ने पूछा, "किनसे मिलना है?" आने वाले ने कहा, "मुझे कलेक्टर पशुपति से मिलना है?"

कलेक्टर से मिलना हो तो दफ्तर के अंदर चलिए, पशुपति से मिलना हो तो उनके घर चलिए।

एक दिन शासक दल के एक संसद सदस्य ने आकर इन्हें धमकी दी, "जानते हैं मैं कौन हूं? मैं एम.पी. हूं, एम.पी. .... समझे?" इस पर कलेक्टर ने यों जवाब दिया :

"ओह, यह बात है? मैं कौन हूं, पता है? एक जिले का कलेक्टर हूं, आदरणीय

आई.ए.एस. अधिकारी हूं। यदि मैं चाहूं तो अपनी यह नौकरी छोड़ कर चुनाव लड़ सकता हूं, और एम.पी. बन सकता हूं, लेकिन आप लाख बार कलाबाजी दिखाइए, तब भी मेरी तरह कलेक्टर नहीं बन सकते, इसे गांठ में बांध लेना ...." (आप कह रहे हैं न? यह किस्सा तो हमने भी सुन रखा है। पर जनाब, पहले इस वाक्य का प्रयोग करने वाले हमारे कलेक्टर थे, हां।) कलेक्टर के इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण वचन पता नहीं शहर के अंदर कैसे फैल जाते हैं।

जहां देखो, लोग लोकप्रिय सिनेमा के किसी लोकप्रिय संवाद की भांति इन बातों को दुहरा कर खुश होते हैं। लोग कहते हैं "मैं चाहूं तो एम.पी. बन सकता हूं, लेकिन आप चाहें तो कलेक्टर नहीं बन सकते। वाह क्या बात है। नहले पे दहला इसी को कहते हैं।"

कलेक्टर उस जमाने में ऐसा कह गए। उस जमाने को देखते हुए बात सही भी थी। अब संसद सदस्य का चुनाव लड़ना कोई हंसी-मजाक नहीं है। चुनाव जीतना हो तो जिस तरह बस स्टैंड पर खड़े होकर किसी नाटक का नोटिस बांटा जाता है, हर मांगने वाले को नोट बांटते रहना होगा, बीच बीच में जहां आवश्यक हो किनारा करना भी आना चाहिए। अगर आप पचास से लेकर पचहत्तर लाख तक खर्च कर सकते हैं तभी एम.पी. बनने का सपना देख सकते हैं। यही नहीं, आज के राजनैतिक माहौल में खुद महात्मा गांधी आकर चुनाव के मैदान में खड़े हो जाएं, उन्हें भी लोहे के चने चबाने होंगे, कमल हासन या रजनीकांत को उनके खिलाफ खड़ा किया जाए तो महात्मा गांधी भी डगमगा जाएंगे।

यही सही है कि उक्त कलेक्टर ने जनता के बीच में तो नाम कमा लिया, लेकिन शासक दल के विधायकों और संसद सदस्यों से उन्हें गालियां ही खाने को मिलीं। व्यापारियों और दबदबे वालों की नजर में यह कलेक्टर "बुरे" निकले। ऐसे लोग इनके बारे में यही कहते थे, "यह कलेक्टर तो छंटा हुआ कम्युनिस्ट लगता है।" (उस जमाने में अवांछित लोगों पर यही मुहर लगाई जाती थी, "कम्युनिस्ट कहीं का।") जैसे तैसे आखिरकार कलेक्टर हार गए—अर्थात यहां से उनकी बदली हो गई। उसके बाद उनका क्या हुआ, यहां के लोगों को इसका कोई पता न चला। फिर एक नायब कलेक्टर आए, नौजवान पूरे देशभक्त। अभी अभी उनका चयन हुआ है, धार अभी पैनी है, जैसे कि म्यान से अभी अभी निकाला खड्ग हो।

उन दिनों चावल की बड़ी कमी थी, भारी तंगी। लोग भुखमरी की हालत से गुजर रहे थे। जितना चावल उपलब्ध था, हमारे प्यारे-न्यारे व्यापारी सोने की भांति छिपाकर रखते थे और काले बाजार में बेचकर खूब पैसा बनाते थे।

महानगर कलकत्ता की किसी जनसभा में बोलते हुए हमारे प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू इसी बात पर अचानक भावावेश में आ गए। "चावल को काले बाजार में बेचकर मुनाफा खाने वाले को पकड़ कर लाना चाहिए, चौराहे के लैंप-पोस्ट पर चढ़ाकर उसे फांसी

पर लटकाना चाहिए।" पंडित जी गुस्से में ऐसा बोल गए। लेकिन कहीं इस पर अमल हो सकता है? पंडित जी के प्रधानमंत्रित्व के काल में हिंदुस्तान में कहीं भी ऐसा दृष्टांत सुनने में नहीं आया कि खाद्य-पदार्थ को जनता की आंखों से बचाकर काले बाजार में बेचने वाले किसी भी "पापी" को सजा दी गई हो। मालूम है, इस नौसिखिए नायब कलेक्टर ने क्या किया? चावल की चोर बाजारी करने वाले किसी व्यापारी को पकड़ा। यहां रुके नहीं, कानून के मुताबिक उन्हें सजा भी दी। (इस अपराध के लिए कानून में फांसी की सजा देने की गुंजाइश नहीं है।) उस जमाने में कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों अधिकार कलेक्टर के पास थे। प्रशासन को न्याय करने का भी अधिकार था। अब तो कार्यपालिका अलग है, न्यायपालिका अलग।

जेल की सजा सुन कर वह व्यापारी तिलमिला उठा। उसके अहंकार का पारा चढ़ गया। उसने नायब कलेक्टर को चुनौती दी, "अब देखना बच्चू, तुम्हारा और तुम्हारी सजा का क्या अंजाम होता है।" व्यापारी को जादू करना भी आता है।

जादूगर अपने जादू के खेल के दौरान बड़े से टोकरे को औंधा करके किसी आदमी को गायब कर देता है। उसी तरह उस व्यापारी का मामला, अपील के दौरान खारिज हो गया। वह साफ बरी हो गए, यही नहीं, नायब कलेक्टर को ऊपर से यह हुक्म हुआ कि कब्जे में लिए गए चावल के बोरों को बाइज्जत उन्हें लौटा दिया जाए। आर्डर का वह कागज अपने हाथ में लिए वह व्यापारी नौटंकी के नट की तरह अपनी कमर मटका मटका कर नाच दिखाता रहा, नायब कलेक्टर के सामने उनकी खिल्ली उड़ाते हुए। यह अपमान बर्दाश्त के बाहर था नायब कलेक्टर के लिए। तत्काल उन्होंने कागज का टुकड़ा फाड़ा, चार पंक्तियों में कारण बताते हुए नौकरी से इस्तीफा दे दिया। उसके बाद ही वे चैन की सांस ले पाए।

आई.ए.एस. अधिकारी का इस्तीफा स्वयं मुख्यमंत्री द्वारा मंजूर किया जाता है। मुख्यमंत्री के पास उपर्युक्त फाइल गई उनकी मंजूरी के लिए। मुख्यमंत्री की कुर्सी पर उस समय बैठे थे अनुभव के पके मानव श्रीमान ओमंदूर रामस्वामी रेड्डियार। पत्र पढ़कर वे सकपका गए। तार भिजवा कर भूतपूर्व नायब कलेक्टर को अपने समक्ष बुलवाया। उनसे तलब किया, "क्या बात है, तफसील से सुनाओ।"

मामले को आदि से अंत तक सुनने पर ओमंदूर रेड्डियार का मन पसीज गया। वे पुलकित हो गए। नायब कलेक्टर को शाबाशी देते हुए बोले "इस देश को तुम्हारे जैसे निष्ठावान अधिकारियों की जरूरत है। बेटे, तुम्हें हारना नहीं चाहिए। अगर तुम हार गए तो इसका मतलब है धर्म की हार हुई है ....।" यों ढाढ़स बांधकर उन्होंने उस अधिकारी को सेवा में बहाल कर दिया यहीं रुके नहीं, उस व्यापारी को पकड़वाकर जेल की हवा खिलवाई, चावल के बोरे फिर से सरकारी कब्जे में लिवा लिए गए। ऐसा कदम उठाया था ओमंदूर रामस्वामी रेड्डियार ने।

6

पिछले साल गर्मियों में हमें—मुझे और मेरी सहधर्मिणी को - शिवगंगै जाने तक का मौका मिला। उस समय तक मैंने कभी शिवगंगै नहीं देखा था। यह वह नगर है जहां से मेरी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। यही वह नगर है जहां मुझे चाहने वाले कुछ अच्छे अच्छे लोग रहते हैं। फिर भी इस शहर की सैर किए बिना इतने साल गुजार दिए हैं मैंने। (इस तरह कुछ मामलों में मैं बड़ा "वह" हूं।)

मेरे अजीज दोस्त मीरा ने शिवगंगै में फिल्म "एप्रीशियेशन वर्कशाप" का आयोजन किया था। उन्होंने लिखा था, "चार पांच दिन यहां रहकर .... अच्छी अच्छी नायाब फिल्में .... देख सकते हैं, जरूर आना।" यहां के लोगों ने भी उत्साहित किया, "हो आओ न, इतने प्रेम से कौन बुलाता है? हवा भी बदल जाएगी।" वहां अपने द्वारा देखी फिल्मों और तमिल फिल्मों के बारे में फिर कभी मौका मिलने पर लिखूंगा। (अब तो अधिकारियों को गले में बांधकर रो रहा हूं।)

शिवगंगै अभी अभी एक जिले का मुख्यालय बना है। इसके लिए आवश्यक प्रशासनिक कार्यालयों का निर्माण कार्य पूरा हो गया है। उन्हें योजनाबद्ध ढंग से बनाने की जिम्मेदारी एक नामी इंजीनियर को सौंपी गई थी। जब मैं शिवगंगै गया था, निर्माण कार्य करीब करीब समाप्ति पर था। इस जिम्मेदारी को निभाने वाले इंजीनियर का नाम, जहां तक मेरी याददाश्त जाती है, बालकृष्णन था। उन्होंने आश्रम की शैली में "अतिथि-गृह" का निर्माण किया था। मीरा चाहते थे कि मैं इस अतिथि-गृह का वास्तुशिल्प अवश्य देखूं। यह अतिथि-आवास दो चरणों में बना था और उस इंजीनियर ने दो मुनिश्रेष्ठों के नाम पर उनका नामकरण किया था। जब मुझ से पूछा गया, "आप वहां ठहरना चाहेंगे? तो मैंने झट "ना" कर दिया। मीरा के साथ उनके घर में ठहरने की मेरी इच्छा थी। लेकिन अपने शहर का प्रमुख स्थान मुझे दिखाने की मीरा की इच्छा थी। रात के सात बजे होंगे। हमारे लिए कलेक्टर आफिस से जीप आई। मीरा ने बुलाया, "चलो चलें।" मैं बेमन से निकल पड़ा। मैंने अपनी श्रीमती को आवाज दी, "तुम भी चलोगी?" "मैं क्यों चलूं? आप हो आइए न?" पत्नी ने मना कर दिया। मेरा मन कह रहा था, "कहां से आ पड़ा यह गोरखधंधा।" फिर भी अपने इष्ट जन जब बुलाते हैं तो "ना" नहीं कर सकते न !

वहां पहुंचने के बाद पछतावा होने लगा, "हाय .... हमसे गलती हो गई। इतनी सुंदर और कलात्मक चीजों को दिन की रोशनी में देखने क्यों नहीं आए?" रसिकमणि टी.के. सी. हमारे इंजीनियरों की हमेशा खिल्ली उड़ाते थे। क्योंकि इन लोगों को जीवन-शास्त्र का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं रहता। ये लोग किताब के कीड़े होते हैं, व्यावहारिक ज्ञान इनका शून्य होता है। लेकिन मैंने पाया कि शिवगंगै में मिले उस इंजीनियर के अंदर एक कलाकार

निवास कर रहा है। उनके अंदर रसिकता थी। आधी रात की इस वेला में भी वे अपने साथियों के साथ मधु-मक्खी की तरह कैसे व्यस्त हैं। पेड़-पौधों और फूलों से उनका अपार प्रेम है।

मैं अपने अनुभव से जानता हूं कि एक पौधा या लता लगाकर उसकी हिफाजत करना और परवरिश करके उसे बड़ा करना कितना मुश्किल काम हैं। कमाल की बात है, इन्होंने जाने कितने किस्म के पेड़-पौधे लगाए हैं।

चार-पांच बृहदाकार कुएं खुदवाएं हैं, सभी कुओं में पानी लबालब भरा हुआ है। हां, इतनी गर्मी में भी।

मैंने मन ही मन उनकी तारीफ की, "अजी तुम लाखों में एक हो। विधाता से वरदान पाकर आए हो।"

जुही के किस्म में एक है "पारिमुल्लै" (पारी जुही), हमारे उद्यान-कला विशारदों द्वारा विकसित है यह किस्म। इंजीनियर ने उनमें से कुछ फूल हमें उपहार में दिए। कोई जवाब नहीं .... इस महक का।

जब हम वहां गए थे, मुख्यालय का निर्माण लगभग पूर्ण हो गया था उन्होंने सूचना दी कि दूसरी एक परियोजना में काम करने के लिए उनकी बदली मद्रास को हो गई है। इसे सुनकर उनसे ज्यादा मेरे दिल को दुख पहुंचा। इतनी मेहनत से लगाए पेड़-पौधों और फूलों-लताओं को छोड़कर ये कैसे जा सकेंगे मद्रास? दुष्यंत के पास चलने से पूर्व अपने आश्रम की लताओं और फूलों को छोड़कर जाने में शकुंतला के हृदय को कितनी ठेस पहुंची, इसका सुंदर वर्णन किया है कालिदास ने अपने "अभिज्ञान शाकुंतलम्" में।

मीरा के घर पहुंचते ही जुही की कलियां अपनी श्रीमती के हाथ में रखते हुए मैं बोला, "अच्छा रहता, तुम भी आतीं।" वह तो यह सोचकर परे हट गई थी कि वहां जाने पर लेखन और साहित्य के नाम पर ये लोग दिमाग चाट डालेंगे। अब "पारिमुल्लै" सूंघने के बाद उसके मन में भी पछतावा हुआ।

मनमोहक सुगंध और अमृत तुल्य स्वाद प्रदान करना माटी और पानी का ही कमाल है। इस फूल के अंदर ऐसी महक का योग करने के मूल में है शिवगंगै की रक्तिम माटी और यहां का पानी।

बड़े से बड़े चमत्कार करने की क्षमता जल के अंदर है। वह संगीत और कलाओं का संवर्धन भी कर सकता है।

"नलके में भी पानी आता है, किंतु यह तो इसी जल का चमत्कार है जो संगीत बनकर गूंजता है, कला के रूप में विकसता है, मंदिर के रूप में उन्नत होता है, प्रतिभा के रूप में चमकता है" यों अपनी तंजाऊर की माटी और कावेरी के पानी की महिमा गाते हैं जाने-माने लेखक जानकिरामन।

मेरी घरवाली पूछ रही है, "क्यों जी, इस जुही का एक पौधा मिल जाए तो अपने इडैचेवल ले जा सकते हैं? मैं क्या जवाब दूं? हमारी महिलाएं ऐसी ही होती हैं। न जाने कब क्या मांग बैठें। हालत ऐसी नाजुक हो जाती है ''न हम इन्हें मना पाते न 'ना' कर पाते ....।" इनकी अबोधता का आस्वादन करते रह जाते हैं, बस।

छुटपन में मैं एक बार कुट्रालम जल-प्रपात में स्नान करने गया था। वहां की किसी गली में कटहल का पौधा बिक रहा था। मैंने उसे बड़े प्रेम से मोल लिया और घर ले आया। छोटे से गमले में प्यार से पाला गया कटहल का वह पौधा, बस में गंगैकोण्डान पार करते करते अपनी गर्दन झुकाने लगा। इडैचेवल पहुंचते ही मैंने उसे आधा प्याला पानी पिलाया। तुरंत कुम्हलाकर धराशायी हो गया पौधा। मेरे अफसोस का कोई हिसाब नहीं था।

दूसरी बार जब कुट्रालम गया, फिर से एक कटहल का पौधा खरीद लाया। गंगैकोण्डान पार करके कयत्तार पहुंचते ही वह तेज बुखार में तपते शिशु के समान कुम्हला उठा। मैंने सोच लिया था, अब की बार इसे तालाब का पानी दूंगा, कुएं का पानी नहीं। यह प्रयोग भी करके देख लिया। पर हाय, तीसरे ही दिन सूखे पत्ते की तरह कुम्हला गया।

तब मैंने समझा—माटी और पानी ही नहीं .... उसके लिए अनुकूल हवा भी चाहिए। चमेली जिस तरह तेनकशी में महकती है, वैसे यहां नहीं महकती। फिर भी हम लोग वहां से बार बार फूल का कोई पौधा लाते और अपने यहां लगाते। फिर जब वह कुम्हला जाता है हमारा दिल भी मुरझा जाता है।

तूत्तुकुडी के वकील पाल नाडार के नाम लिखे अपने पत्र में रसिकमणि टी.के.सी. कहते हैं "कुट्रालम से कटहल के पेड़ को जड़ समेत और जड़ की मिट्टी समेत ले जाकर आप तूत्तुकुडी में लगा के देखिए, वह उस जगह पर पनपेगा नहीं।"

इस प्रकार प्रकृति ने खुद नियत किया है कि फलां मिट्टी में फलां पौधा ही लगेगा। इस प्रकार जहां तहां पले-बढ़े स्थानीय वृक्ष "स्थल-वृक्ष" के रूप में जनता द्वारा प्रशंसित और पूजित होते हैं। कुट्रालम के पर्वत के ऊपर मंगुस्तान नामक फल-वृक्ष को आप कुट्रालम नगर में लाकर लगाइए, वहां वह पनपेगा नहीं। आदिवासियों की भांति वह भी पर्वत से नीचे नहीं उतरता।

7

बीमारियों में भयंकर बीमारी "कुर्सी की बीमारी" होती है? वह जानी-मानी बात है कि यह लाइलाज बीमारी है। बीमारियों के किस्म में ही नहीं, भूतों के किस्म में भी एक किस्म होता है "कुर्सी का भूत"। जिन लोगों पर यह भूत सवार हुआ, उनमें से फलां आदमी इससे मुक्त हुआ, ऐसी बात कहीं सुनने को मिली है अभी तक?

हमारे अनजाने में यह भूत किसी किसी कुर्सी में बसा रहता है। भूले भटके यदि हम जाकर उस कुर्सी पर बैठ गए तो बस गए काम से। अपनी गोदी में बैठने वाले शिशु को बाप अपने आलिंगन पाश में कसकर पकड़ लेता है न, उसी तरह कुर्सी में बसे इस भूत की गोदी में बैठने वाले व्यक्ति को वह अपने साथ जोर से जकड़ लेता है। उस "सुख" से बिछुड़ने का कभी मन नहीं करेगा।

चुनाव महोत्सवों में हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं न, उम्मीदवार एक दूसरे को किस तरह गाली देते हैं और फ़िर परस्पर एक दूसरे की चोटी पकड़ते हुए "तू-तू मैं-मैं" करते हैं। पता है यह सब किसलिए करते हैं? उस कुर्सी पर जाकर बैठने के लिए ही तो करते हैं!

विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइनस्टीन को इस्राइल का राष्ट्रपति बनाने का प्रस्ताव किया गया तो आइनस्टीन ने इस पद को ठुकरा दिया था। इस खबर को सुनते ही रसिकमणि टी.के.सी. तनकर बैठ गए। उन्होंने दुबारा इस खबर को पढ़कर सुनाने का आग्रह किया। गद्गद होकर आइनस्टीन की सराहना करने के बाद हमसे प्रश्न किया "इस मौनस्वामी-मठ के पीठाधीश के पद पर आसीन होने का अनुरोध किया जाए तो क्या मैं उसे स्वीकार करूंगा?"

बहुत से लोग नहीं जानते होंगे कि कुट्रालम में मौनस्वामी—मठ नाम से एक मठ है। अन्य मठालयों की तरह इस मठ के पास भी काफी सारी चल अचल संपत्ति है। ऐसे एक मठ के मठाधीश के रूप में अभिषिक्त होने का अवसर मिले—वह भी कोई हाथ पकड़ कर आपको खींचे और बताए कि आपको मठाधीश का आसन हम दे रहे हैं, कृपया इस पर बैठ जाइए—तो इसे ठुकराने की इच्छा किसके मन में उठेगी? किंतु इसमें एक संकट है—महासंकट है वह। इस संकट को ध्यान में रखकर ही रसिकमणि ने ऐसा कहा होगा। मठाधीश होने के बाद मुंह नहीं खोल सकेंगे (भोजन का समय छोड़कर)। यह कितना महान संकट है ! सहृदयों के बीच में बैठे कविताएं गा गाकर आस्वादन करने में आनंद पाने वाले रसिकमणि मौनस्वामी-मठ के अध्यक्ष पीठ पर आसीन होकर "चुपचाप" कैसे रह सकते हैं ....?

"राष्ट्रपति'' कहने पर उसे कोई सर्व-तंत्र-स्वतंत्र आसन नहीं समझना चाहिए। राजाजी जब गवर्नर जनरल थे, अपने वाइसराय भवन में (इस समय राष्ट्रपति भवन) अपने गुरुनाथ रसिकमणि टी. के. सी. का स्वागत करके उनके साथ वार्तालाप का आनंद ले रहे थे। रसिकमणि के साथ बातें करने का मतलब है काल और समय को भुलाकर काव्यानंद में, साहित्य लहरी में तिरना। जब ये दोनों बड़े प्रेम से बतरस का आनंद ले रहे थे एक अधिकारी बीच में बरबस घुस आते हैं और गवर्नर जनरल के उनके अलग कार्यक्रम के संबंध में स्मरण दिलाते हैं। इससे राजाजी का चेहरा "छोटा" हो जाता है। रसिकमणि से क्षमायाचना के स्वर में किंतु अपनी स्वाभाविक हास्य-मुद्रा के साथ राजाजी ने कहा : "कुछ नहीं कर सकते हम, इस महल में मैं महज एक कैदी हूं।"

हमारी पौराणिक कथाएं बखान करती हैं कि ऋषियों और मुनियों ने भी इस देश के सिंहासन पर बैठकर राज किया है। इसका उदाहरण हैं जनक महाराज।

वे कुर्सियां कहां और इन अफसरों की "बदबूदार" कुर्सियां कहां ! दोनों के बीच में बहुत अंतर है। वह बेलाग होना, वह अनासक्ति यह सब अफसरों की कुर्सियों में कहां? तीस-पैंतीस वर्षों तक इन्हें उसी में पड़े रहना होगा—मुर्दे की तरह। ये उठकर खड़े होते हैं, तब भी कुर्सी नीचे नहीं गिरती, पृष्ठभाग के साथ चिपकी रहती है। चलने पर साथ में इनके साथ चलती। वे इसी "भंगिमा" में घर लौटते हैं। चूंकि कुर्सी पृष्ठ के साथ लगी रहती है, इसीलिए ऐसे अफसरों के घर के सामने आफिस की जीप खड़ी रहती है और ये उसमें अपनी बीबी तथा बाल-बच्चों के साथ थिएटर जाते हैं। बीबी के साथ बतियाते वक्त भी वे अफसर हैं, खाते और सोते समय भी वे अफसर हैं। जाति-भेद मानने वाले किसी व्यक्ति से एक ज्ञानी पूछ रहे हैं, "जब तुम सोते हो, तब क्या तुम्हारे अंदर जाति-बोध रहता है?" निद्रा की अवस्था में जाति-बोध नहीं रहता, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन निद्रा-अवस्था में अधिकारी वाला बोध बना रहता है। खर्राटे में भी "अफसर खर्राटा" अलग होता है। उक्त ज्ञानी को इन सब बातों का ज्ञान नहीं है। उनके युग में इस प्रकार के अफसर कहां थे ....?

राजनारायणन (लेखक) की अफसरों से दुश्मनी नहीं है। असल में अफसरों में कई उनके घनिष्ठ मित्र हैं, राजनारायणन के प्रिय पाठक वर्ग में बड़े बड़े अधिकारी भी हैं, यह अलग बात है, मैं यहां जिन अफसरों का जिक्र कर रहा हूं, वे जुल्म करने वाले अफसर हैं, जनता के दुश्मन हैं, समाज के विरोधी हैं।

काली माटी के अंचल में "अनफली फसली" के लिए किश्त मांगते हैं ये अफसर। जनता के कष्ट ये लोग बिल्कुल नहीं जानते। तकलीफों का बयान करने पर भी इनकी समझ में नहीं आता। उस वर्ष लगान की किश्त न अदा करने के लिए हमारे घर की संपत्ति जब्त की गई। मेरे घर में जिस थाली में मैं भोजन करता हूं, वह भी जब्त की गई।

विट्लापुरम गांव के रंगस्वामी के घर में घुसकर ये लोग बैलों का जोड़ा खोल कर ले गए। अच्छी कद काठी के तगड़े बैलों का जोड़ा। किसान के लिए बैलों का जोड़ा ही उसके खेत से ज्यादा बेशकीमती पूंजी है। आदमियों को जेल में बंद करने की तरह उन बैलों की कांजी हाउस में ले जाकर बंद कर दिया गया।

कांजी हाउस गाय-बैलों की जेल होती है। मान लीजिए कि कोई बकरी या गाय चोरी से आपके खेत में घुसकर फसल चरती है। ऐसी स्थिति में आप उसे पकड़ कर कांजी हाउस में बंद करवा सकते हैं। किंतु इन बैलों ने ऐसी चोरी नहीं की। उनका कुल सारा कसूर यही था कि ये आदमी के लिए कड़ी मशक्कत करते रहे, बैलों की तरह काम में जुते रहे। जोत के बैलों को यों कांजी हाउस में बंद करने के द्वारा उनके ऊपर जो जुल्म ढहाया गया,

उससे स्थानीय जनता के दिल को भारी धक्का लगा। जब अफसर लोग उसे पकड़वा के ले जा रहे थे, उस सम्मय ग्रामवासियों के नयन सजल हो गए। देखने वालों ने देखा कि कांजी हाउस के अंदर उन्हें हांकने के बाद ताला लगाते समय पटवारी के हाथ कांप उठे थे। उस समय हमारे ऊपर राज करने वाले शासक दल का चुनाव चिह्न भी जोत के बैल ही थे। अगले चुनाव में जनता ने उस दल को इस जुल्म का मजा चखाया। लगातार चार चुनावों में वह दल हारता रहा।

यह न सोचें वही जमाना ऐसा था। वह "कल" जो घटना हुई, उसका बयान करता हूं, सुनिए ....।

सारी "दुनिया" जानती है कि पिछले साल सारे तमिलनाडु में क्यों, देश भर में भयंकर सूखा पड़ा था, फसलें सूख गई थीं। काली माटी के अंचल में उस साल पानी की एक बूंद भी नहीं पड़ी। लेकिन यहां ऐसे भी अफसर मौजूद थे जिन्हें इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। (सच तो है, उनके लिए क्या सूखा है और क्या अकाल? एक कहावत है "तालाब म्लान होता है, चट्टान को म्लानता से क्या मतलब?" वर्षा के बाद जब जलाशय भर जाते हैं तालाब बड़ा प्रफुल्ल हो आता है। बारिश के अभाव में तालाब सूख जाता है और उसका मुख म्लान दिखाई देता है, म्लानता और प्रफुल्लता का अनुभव तालाब को होता है, चट्टान को कुछ भी नहीं होता।)

पिछले वर्ष 1396 वीं फसली के लिए कर लगाने के मकसद से नायब कलेक्टर अपने साथी अधिकारियों सहित इडैचेवल चले आए। हम सब लोग चकित रह गए।

8

किसी ने आकर मुझे यह सूचना दी, "नायब कलेक्टर आकर पंचायत बोर्ड के दफ्तर में बैठे हैं, आपको याद कर रहे हैं।" मैं उनसे मिलने चला गया।

इनसे मेरी थोड़ी-सी वाकफियत है। रेल की मित्रता कहते हैं न .... उसी किस्म की समझ लीजिए। पिछली गर्मियों की शुरुआत में मैं मद्रास से लौट रहा था, उस समय मेरे सामने वाली सीट पर एक शख्स बैठे थे। विरुदुनगर पहुंचने तक उन्होंने यह बात नहीं खोली कि वे कलेक्टर हैं, कोविलपट्टी बदली पाकर आ रहे हैं। (हम दुनिया भर की दूसरी बातों पर चर्चा कर रहे थे, इसका जिक्र ही नहीं हुआ।)

उन्होंने मुझसे पूछा, "कोविलपट्टी में आप क्या काम कर रहे हैं?" मैंने जवाब दिया, "मेरी रिहाइश खास कोविलपट्टी में नहीं है, वहां से दस-बारह किलोमीटर दूर एक छोटा-सा गांव है और मेरा पुश्तैनी पेशा खेती है।" उन्होंने तब पूछा, "इस साल बारिश का क्या हाल है? कैसी है?" मैंने स्थिति का बयान किया, जैसी चल रही थी।

रेलगाड़ी ज्यों ज्यों दक्षिण की ओर बढ़ती गई, सूखे का दृश्य उनकी आंखों के सामने खुलता गया। उपजाऊ खेतों के चेहरे तनाव से भरे नजर आ रहे थे। नारियल के पेड़ों का बुरा हाल था, उनका शीर्ष कट कर गिर गया था या दयनीय रूप से लटक रहा था। उन्होंने "पृ...च्" की आवाज निकाली अफसोस में। रेल दक्षिण की तरफ और आगे बढ़ी तो ताड़ के वृक्ष भी सूखे से बेहाल खड़े थे। लेकिन इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ा, उन्होंने इसे कोई अहमियत नहीं दी। ताड़ के पेड़ जो हैं एक हद तक सूखे को सहन करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे ताड़ भी जब मर गए तो इसी से सूखे का अंदाजा लगाया जा सकता है। "नारियल के पौधे" हमसे काफी सेवा और मेहनत मांगते हैं। छोटे बच्चों की तरह उनकी परवरिश करनी पड़ती है, तभी वे पनपते हैं। ताड़ बेलाग होकर बढ़ने वाला पेड़ है। फल भी काफी देर से देता है। एक कहावत है, "नारियल लगाने वाला खाकर मरता है, ताड़ लगाने वाला देखकर मरता है।"

सात्तूर के दक्षिण में आने पर उन्होंने पूछा, "लगता है यहीं से आपका जिला शुरू होता है।" सूखे की भयंकर तपिश में काली माटी के खेतों पर दरारें पड़ी थीं, मैंने उन्हें काली माटी के खेत दिखाए जो लू लगने से मुंह बाए मरे पड़े थे।

"इस माटी ने जाने क्या गुनाह किया है?"—मैंने अपने आप से प्रश्न किया। कोविलपट्टी स्टेशन पर उतरने तक लगा रहा दर्दनाक नजारे का यही तांता। रेल से उतरते ही हमारी "रेल मित्रता" में भी पूर्ण विराम लग गया।

जिन खेतों पर फसल नहीं हुई, बिवाई लगे पैर की तरह जिन पर दरारें पड़ी थीं, ऐसे खेतों पर लगान की किश्त वसूलने के लिए पधारे हुए हैं हमारे न्यारे नायब कलेक्टर। किसान और गांव के प्रमुख लोग वहां उपस्थित थे। लोगों ने एक स्वर में उनसे निवेदन किया, "सरकार! इस साल फसल बिलकुल नहीं हुई है। जितना बीज बोया था, धान की कटाई उससे कम हुई है। बहुत से खेतों में बुआई तक नहीं हुई। ढोर को चारा खिलाने में असमर्थ होकर हमने उन्हें चमड़ी के मोल बेच डाला। फैक्ट्री के लिए दियासलाई चिपका कर हम लोग जीविका चला रहे हैं।" गांव का अधिकारी प्रतिवर्ष महसूल की रिपोर्ट लिखकर भेजा करते हैं। उनसे हमने अकेले में पूछा था, "इस वर्ष में आपने कितने प्रतिशत महसूल की रिपोर्ट भेजी है?" उनसे मालूम हुआ कि 20 प्रतिशत की रिपोर्ट गई है। अंग्रेज सरकार के दिनों में 25 प्रतिशत की रिपोर्ट भेजने पर लगान की माफी हो जाती थी।

भयंकर सूखे को मद्देनजर रखते हुए ग्राम अधिकारी ने 20 प्रतिशत महसूल की रिपोर्ट भेजी है। इस तरह सच्चाई लिखने के लिए भी साहस होना चाहिए। ऊपर से तलब किया जाता है, "कैसे लिखा? किससे पूछकर लिखा?" ऊपर के अधिकारी घोड़े से भी गए बीते हैं। घोड़े तो पिछाड़ी जाने पर ही मारते हैं। ऊपर वाले अफसर के अगाड़ी जाएं तो वे सींग मारते हैं, इनके पिछाड़ी जाइए तो ये लात मारते हैं।

पोय्यमोष़ी आशारी भूख से ही मरा था। उससे पहले भी गांव में कई लोग भूख की वजह से मर चुके थे। लेकिन उन लोगों की मौत के बारे में हमारे ग्राम-मुंसिफ ने लिखा था कि उन सब की मौत पेचिश की वजह से हुई थी। पोय्यमोष़ी आशारी जब भूख से बेहाल हो रहे थे, अखबारों में जगह जगह से भुखमरी की खबरें आ रही थीं। इसलिए भी हमारे ग्राम-मुंसिफ ने जन्म-मृत्यु बही में सच्ची घटना को सही सही दर्ज किया - "भूख से मृत्यु हुई" लिख तो दिया, पर उसके बाद ही समझ में आया - इसका "मजा ....।" तहसीलदार भागे आए, नायब कलेक्टर भागे भागे आए। किसलिए? पोय्यमोष़ी आशारी के परिवार के दूसरे सदस्यों को भूखमरी से बचाने की सदिच्छा लेकर आए थे? नहीं, हरगिज नहीं। उन्होंने आकर ग्राम-मुंसिफ को आड़े हाथों लिया। उन पर बरस पड़े अंग्रेजी में। (इसलिए कि तमिल में बोलने पर कहीं दूसरे लोग असली बात समझ न लें।) हमारे गांव के उक्त ग्राम मुंसिफ वेंकटरंग राव जी को कन्नड़ आती थी, संस्कृत का ज्ञान था, तमिल भी मालूम थी .... लेकिन अंग्रेजी बिल्कुल नहीं आती थी।

राजाजी जब एट्टयपुरम आए थे (वे भारती मंडप की नींव रखने के लिए पधारे थे) उन दिनों वे पश्चिम बंगाल के राज्यपाल थे। उनके साथ रसिकमणि टी.के.सी. भी पधारे थे। पास में खड़े राम अय्यंगार को बुलाकर रसिकमणि ने उनके हाथ में एक चिट्ठी रखते हुए कहा, "यह पत्र राजाजी के पास पहुंचा दीजिए।" (राजाजी और रसिकमणि के लिए अलग अलग अतिथि-गृहों का प्रबंध था।)

राम अय्यंगार ने पत्र हाथ में तो ले लिया, लेकिन न जाने क्यों, हिचक रहे थे। रसिकमणि ने "क्यों, क्या बात है?" वाली प्रश्न मुद्रा से उन्हें देखा। राम अय्यंगार बोले "मैं वहां तक चला तो जाऊंगा। राजाजी को घेर कर बड़े बड़े पुलिस अफसर और अन्य अधिकारी खड़े रहेंगे। मान लीजिए कि वे लोग मुझ से अंग्रेजी में कुछ पूछते हैं तो मैं उन्हें क्या जवाब दूं? मुझे तो अंग्रेजी नहीं आती ....।"

"सो क्या हुआ? अगर वे लोग अंग्रेजी में बोलने लगें तो आप साफ कह दीजिए, मुझे जर्मन ही आती है। उन लोगों को जर्मन नहीं आती। उसके बाद वे ठीक ढंग से तमिल में बात करेंगे।" रसिकमणि ने उन्हें समझाया।

इडैचेवल मुंसिफ को संबोधित करते हुए बड़े अफसर फर्राटे से अंग्रेजी में खरी-खोटी सुना रहे थे। लेकिन मुंसिफ ने उनसे नहीं बताया "मुझे केवल संस्कृत का ज्ञान है।" अगर ऐसा जवाब दिया होता तो किस्सा ही दूसरा होता। पोय्यामोष़ी आशारी भूख से ही मरा था, यह कोई झूठी बात नहीं थी। सारे गांव को इसका पता है। अकाल के मारे कई लोग अपने सिर पर बर्तन-भांडे लाद कर तंजाऊर चले गए थे, पेट की आग बुझाने के लिए। गांव के गांव खाली हो गए। कहीं कोई चलता फिरता नजर न आता है। गांव में बेसहारा बुड्ढे रह गए जो चल नहीं पाते थे।

मैंने अपनी जान-पहचान के एक छोटे मोटे अफसर से चुपके से पूछा "असलियत क्यों नहीं लिखनी चाहिए, सच कहने में क्या गलती है?" उन्होंने समझाया :

"आपने क्या समझ रखा है? भूख से किसी प्रजा के मर जाने की बात, जिस तरह यह ग्राम मुंसिफ समझते हैं, उतना सरल सीधा मामला नहीं है। अरे, मालूम है इसकी कितनी व्यापक प्रतिक्रिया होती है देश भर में? इससे एकदम चारों तरफ सनसनी फैल जाएगी न? फिर बात का बतंगड़ बनाने वाले ये पत्रकार क्या चुप रह सकते हैं? इन सब परिणामों के बारे में ये नालायक ग्राम-मुंसिफ क्या जानें? पत्रकार आकर पहले हमीं से पूछेंगे, "हालत इस हद तक बिगड़ने तक अधिकारी लोग क्या रहे थे?"

सबके लिए आसान काम है अफसरों पर चढ़ बैठना। जब इस बात की पुष्टि हो जाएगी कि उस व्यक्ति की मौत भूख से ही हुई तो जिला कलेक्टर को वहां भागकर आना पड़ेगा, अपना सारा काम धंधा छोड़कर। (मानों उनके पास और कोई काम नहीं है।) तुरंत उस गांव में गरीब जनता को "कंजी" पिलाने के लिए "कंजि तोट्टी" खोलनी होगी। बिना सांस लिए जरा गरम होकर बोले जा रहे थे ....।

सच बात तो है! पोय्य मोषी आशारी और वेंकट रंग राव दोनों ने मिलकर अधिकारियों को यों कांटों में घसीट दिया। लेकिन "रिपोर्ट" दुबारा लिखवाकर किसी तरह मामला ठीक कर सकते हैं। पर पोय्यामोषी आशारी जो चल बसा, सो चल बसा। उसे वापस नहीं ला सकते, वापस लाएं भी तो ये लोग "संभाल" नहीं पाएंगे।

यह सब ठीक है। पर "कंजि तोट्टी" शब्द मेरे अंदर खीझ पैदा कर रहा है। (पता नहीं, किस अफसर ने यह नाम रखा) पालतू कुत्तों को "कंजी" पिलाने के लिए काठ का बर्तन जो होता है, उसका नाम "पत्तल" है। वही चीज पत्थर से बनाई जाए तो "कंजि तोट्टी" (कंजी का हौज) हुई। शायद इन अधिकारियों की यही मंशा रही होगी कि प्रजा यह कंजी पी ले और देश के लिए निष्ठावान बनी रहे।

9

मेरे भूतपूर्व "रेल मित्र" मुझे पहचान नहीं पाए। इसमें मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ।

एक बार की बात है। मैं मद्रास के ओट्टेरी अस्पताल में तीन महीने तक बीमारी की हालत में बिस्तर पर लेटा था। तब उस अस्पताल में परिचर्या करने वाली कुछ बहनों से—नर्सों से—परिचय हुआ। यह सचमुच शंका का विषय है कि क्या कोई सगी बहन भी इतने अधिक स्नेह वात्सल्य के साथ अपने बीमार भाई की तीमारदारी कर पाएगी, जैसे कि ये नर्सें किया करती हैं। इनकी तत्परतापूर्ण सेवा-सुश्रूषा पर मैं विस्मित था। एक दिन मेरा कोई दोस्त आया था अस्पताल में मुझसे मिलने के लिए। मैं नीचे उतरकर उसे छोड़ने गया। (डाक्टरों

ने मुझे बिस्तर से उठकर थोड़ी दूर टहलने और घूमने की अनुमति दी थी।) बस के लिए जो भीड़ इकट्ठी थी, उसमें से एक महिला मुझे देखकर मुस्कराई। मै बड़ी उधेड़बुन में पड़ गया। यह महिला कौन हो सकती है? (उस समय के आंकड़े के अनुसार) चालीस लाख की आबादी वाले इस मद्रास महानगर में ज्यादा से ज्यादा दो तीन महिलाएं मेरी जान पहचान में थीं। यह महिला उनमें से नहीं है। तब जरूर मद्रास के बाहर की कोई हो सकती है। फिर भी क्या बताऊं, चेहरा-मोहरा बहुत जाना पहचाना लग रहा था। शहरों में आप किसी व्यक्ति को देखकर भी अनदेखी करते हुए निकल सकते हैं। आपको इसकी पूरी छूट है, शहर की अनगिनत सुविधाओं में यह भी एक है। लेकिन गांव में ऐसे काम नहीं चल सकता। इस तरह मुंह मोड़ कर निकलिए तो आप पर मानव-अवहेलना का दोष मढ़ा जाएगा। आज नहीं तो कल आपको इसका जवाब देना ही पड़ेगा।

सिटि बस आई। चढ़ने के लिए हुई धक्का-मुक्की में वह महिला भी फंस गई और फिर बस में सवार होकर निकल गई। अपने दोस्त को बस में चढ़ाने के बाद मैं अस्पताल की ओर चलने लगा। तभी मुझे एकाएक याद आ गया, "अरे, यह तो हमारी पंचरत्नम सिस्टर थी न?" मैंने उसे नर्स की वर्दी में ही देखा था, अब साड़ी में वह एकदम नई महिला दिख रही थी। पोशाकें सचमुच भ्रम में डालती हैं।

गांव में जिन्होंने मुझे कमीज के बगैर, बिना कंघी किए या बिना दाढ़ी बनाए, बगैर धुले कपड़ों के घूमते देखा हो, "यात्रा के लिबास" में देखने पर वे मुझे बिल्कुल नहीं पहचान सकते। इसी तरह भूतपूर्व रेल मित्र नायब कलेक्टर भी मुझे पहचान नहीं पाए। याद दिलाया तो स्मरण आया। गांव वालों ने समवेत स्वर में उनके सामने अपना दुखड़ा रोया, "दो साल से भयंकर सूखा पड़ रहा है, इस साल फसल ही नहीं हुई है, ऐसे में लगान मांगना एकदम अनुचित है।" अफसरों को जब समझाया जाता है, बस केवल एक क्षण के लिए उन्हें महसूस होता है कि लोगों की बात में न्याय है। नायब कलेक्टर भी ऐसे ही दिखाई दिए, पर अगले ही क्षण वे अपनी उसी टेक पर आ गए। "किसी न किसी तरह इन पर कर लगाना ही चाहिए" अपनी इसी बात को वे तर्ज बदल बदल कर कहते रहे।

मैंने कहा, "इस गांव के लोग हर फसली में बिला नागा लगान अदा करते आए हैं। इस फसली में, जबकि चारों ओर सूखा है, आपके द्वारा यों लगान मांगना सचमुच अजीब लगता है।"

"... नहीं, बात ऐसी है खुद जिला कलेक्टर इस विषय में जोर दे रहे हैं। परसों विलात्तिकुलम के नजदीक एक गांव में वे स्वयं जाकर बैठ गए और उन्होंने एक ही दिन में दो हजार रुपए से अधिक की वसूली दिखाई है" नायब कलेक्टर ने हमें बताया और बात जारी की "तब कलेक्टर ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों से कहा, 'देखा न ... गांव के लोग लगान देने के लिए तैयार बैठे हैं। आप लोग वसूली में तत्परता नहीं दिखाते, उनसे

जाकर मांगते नहीं। सचमुच का सूखा हो तो गांव के अंदर एक ही दिन में दो हजार रुपए कैसे वसूल होंगे?' कलेक्टर हमसे जब इस तरह पूछ रहे हैं, तो सोचिए, हम क्या करें? यह कैसा बवेला उठ खड़ा हुआ है, किसके पास जाकर रोएं हम ...."

भूत-प्रेत से डर कर मंदिर गई कोई, वहां पर भी दो भूत नाचते दिखाई दिए वाली कहानी याद आई। मैंने तब दूसरा तर्क अपनाया। इस फसली के लिए लगान माफ करने का निर्णय सरकार में उच्च स्तर पर लिया जा रहा है। अखबारों में यह खबर छप गई है। ऐसी प्रतीक्षा की जाती है कि आज या कल इसकी घोषणा हो सकती है। मैंने विनम्रता के साथ इन तथ्यों की ओर उनका ध्यान दिलवाया। किंतु मेरे इस तर्क के लिए भी उनके पास जवाब तैयार था। "सो क्या हुआ? .... सरकार माफ कर दे तो कोई बात नहीं। अगले साल हम उसे काट लेंगे .... समायोजन कर लेंगे. ..."

बस, यह जवाब सुनकर किसानों का चेहरा उतर गया।

(किसी ने कहा था, "भूख न लगने के लिए मेरे पास एक दवाई है, मैं जरूर दूंगा, तुम्हें। लेकिन उससे पहले अगर तुम्हारे घर में बासी भात या खाने की कोई और चीज हो तो मुझे अभी खिलाना।" यह कैसा है?)

अगर अपने अंदर लगान अदा करने की क्षमता हो तो किसान कभी नागा नहीं करता। लगान अदा करने में उसे फख्र का अनुभव होता है। राजाजी जब मुख्यमंत्री थे, उनके मन में यह विचार आया, "आखिर इस भूमि-कर से सरकार को कुल आय सिर्फ आठ करोड़ की होती है। लेकिन इसकी वसूली के लिए तैनात अमले पर साढ़े आठ करोड़ का खर्चा होता है। (बेर पच्चीस रुपए उसकी ढुलाई पचहत्तर रुपए) इसलिए क्यों न लगान समाप्त कर दिया जाए।"

तंजाऊर के मीरासदारों ने सम्मिलित रूप से इस पर अपनी आपत्ति जाहिर की। राजाजी से मिलकर उन्होंने निवेदन किया, "भूमि के लिए लगान अदा करने में ही भू-स्वामी होने का अभिमान है। भूमि पर लगान खत्म हो जाए तो हम इस गर्व से वंचित हो जाएंगे। इसलिए मेहरबानी करके ऐसा कदम न उठाएं।" किसान बराबर लगान देता है, वह लगान चुकाने से तभी इंकार करता है जब महसूल नहीं होती। लेकिन नायब कलेक्टर का सोचने का ढंग अलग ही था। उन्होंने अफसोस के साथ कहा, "बात ऐसी है तो आपके गांव में लगान बकाया नहीं होना चाहिए। है न? पर बकाया तो बराबर बना हुआ है। एक लंबे अरसे से दस-पंद्रह हजार रुपए का बकाया चला आ रहा है। ऐसा क्यों है ...?"

यह बात सुनकर हम सब हैरानी से एक दूसरे को देखने लगे। "यह कैसे हो सकता है? हर जमाबंदी में कलेक्टर और दूसरे बड़े अफसर गांव के अधिकारियों का जीना मुश्किल कर देते हैं, पूरी वसूली दिखाए बिना उन्हें दम नहीं लेने देते। अभी यह जो कह रहे हैं दस-पंद्रह हजार रुपए लंबे अरसे से बकाया है, इस पर विश्वास नहीं आ रहा था.... ।"

मैंने अनुरोध किया, "ऐसे दो नाम बताएंगे जिनके नाम पर लगान बकाया है?"

रेवन्यू इंस्पेक्टर ने बही पलटने के बाद शिकायती अंदाज के साथ एक नाम लिया, "पिछले आठ साल से इन्होंने एक पैसा भी लगान नहीं चुकाया है .....।" इडैचेवल के लोग एक दूसरे को देखकर विस्मित हुए - "इस नाम का कोई व्यक्ति हमारे गांव में नहीं है।"

वह किसान हमारे पड़ोस के गांव कुमारपुरम का था। उनके खेत जरूर हमारे गांव की सीमा के अंदर आते हैं। मैंने दूसरा नाम पढ़ने का अनुरोध किया। उनकी भी यही कहानी थी।

"इन पर क्यों आठ साल का बकाया है ....?" अपने पास बैठे तहसीलदार से तलब किया नायब कलेक्टर ने।

"इन खेतों के पट्टे एट्टयपुरम जमींदार के नाम हैं।"

"तब तो एट्टयपुरम जमींदार के पास जाकर लगान क्यों नहीं मांगते ....?"

जमींदार कहते हैं। : "सारी जमीनें मेरे हाथ से निकले एक अरसा हो गया है—जमींदारी समाप्त होने के साथ ... अब तो मुझे इन जमीनों से कुछ लेना देना नहीं है ....।"

"ये लोग कितने साल से इन जमीनों पर काश्त करते आ रहे हैं ....?"

"पीढ़ी-दर-पीढ़ी से ये लोग काश्त कर रहे हैं।" "तब लगान अदा करने में क्यों अनाकानी कर रहे हैं ....?" "ये कह रहे हैं, जिनके नाम पर जमीन का पट्टा है उनसे जाकर मांग लो। ये अड़े हुए हैं इस बात पर कि जब तक हमारे नाम पर आप पट्टा जारी नहीं करेंगे हम लगान भी अदा नहीं करेंगे।"

एक क्षण के लिए अधिकारी लोग एक दूसरे का मुंह ताकते रहे।

10

जमींदारी उन्मूलन के बाद अब एक जमाना बीत गया है। फिर भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी से जिस जमीन पर किसान काश्तकारी कर रहे हैं, उसका पट्टा अभी तक उसके नाम दर्ज नहीं हो पाया है; आज भी उसी जमींदार के नाम पर है आपको विश्वास नहीं हो रहा है। पर यह बात सूरज की रोशनी की भांति सच है। (इस पर तुर्रा यह है कि सुबह-शाम इस देश में यही नारा बुलंद है, "जमीन उसकी है जो उस पर काश्त करे।)

एक दिन क्या हुआ, मैं अपने गांव के विद्यालय के अंदर चला गया। छुट्टी का दिन था, फिर भी स्कूल खुला हुआ था। प्रधान अध्यापक दफ्तर के अंदर कागज-पत्र और दूसरे सामान करीने से सजाने में मशगूल थे। अचानक मेरी नजर पड़ गई वहां पर रखे ब्रिटिश साम्राज्य के "यूनियन जैक" झंडे पर। मैंने उस झंडे को उठाया और खोलकर देखा। रंग जरा-सा फीका पड़ गया था, जगह जगह से फट गया था। फिर भी इन लोगों ने उसे अभी

तक हिफाजत के साथ रखा है। मैंने पूछा, "इस बला को अभी तक क्यों रखे हुए हैं? कोई भाड़ नहीं मिला फेंकने के लिए?"

"कैसे फेंका जा सकता है? यह तो स्टॉक की सूची में है न? यह सारा स्टॉक एक हेडमास्टर ने मुझे सौंपा था, उन्हें यह स्टॉक उन हेडमास्टर से मिला जो उनसे पहले वहां काम करते थे यही नहीं, किसी मद को स्टॉक की सूची से निकालना हो तो ऊपर के अधिकारियों को लिखकर उनसे अनुमति लेनी होगी। अब उन्हें ऐसी बातें लिखें तो वहां से यही जवाब आएगा, 'इस समय जो मामले हमारे सामने हैं, उन पर ध्यान देने के लिए हमें समय नहीं मिल रहा है और आपको नई समस्याएं खड़ी करने की सूझ रही है।' उन्हें खीझने का मौका ही क्यों दें? यह झंडा जहां है, वहीं रहे। इससे हमारा क्या बिगड़ता है?" प्रधान अध्यापक ने यों उत्तर दिया। मेरी भी समझ में नहीं आ रहा था कि इसके लिए क्या जवाब दूं।

मुझे महान किट्नाजारी के "सुनहले विचार" याद आए। बेचारे किट्नाजारी (कृष्णमाचारी) अब नहीं रहे। अगर वे जिंदा रहते तो यह जानकर फूले न समाते कि अंग्रेजों का झंडा अभी तक हमारे स्कूल में हिफाजत के साथ रखा हुआ है। अपनी अंतिम सांस तक वे यही "मंत्र" रटते रहे :

"अरे, एक बात कान खोल कर सुन लो। तुम लोग इस माटी से अंग्रेजों को भगाना चाहते हो न? यह कभी संभव नहीं होगा।"

दो बातों पर उनकी निष्ठापूर्ण आसक्ति थी। एक, तमिल के प्रति, दूसरे, ब्रिटिश साम्राज्य के शासकों के प्रति।

इसी वजह से मेरी उनसे कभी पटती नहीं थी।

हम दोनों जब भी झगड़ते थे। हमारी क्षेत्रीय भाषा तमिल है, घर में बोलचाल की भाषा तेलुगु है। कम्बरामायणम पर तीव्र आसक्ति के कारण उन्हें "कृष्णमाचारी" का खिताब मिला। लोगों ने इसी नाम को हंसी-मजाक में "किट्नाजारी" बना दिया था। तीव्र वैष्णव थे कृष्णमाचारी, "तीव्र" के स्थान पर "अति तीव्र वैष्णव" कहें तब भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गांधी जी और स्वराज्य की बात को लेकर हम उन्हें छेड़ते और बार बार रुला देते। एक दिन दुख से रोते हुए उन्होंने जो बात कही थी, अभी तक मुझे याद है "अरे, बुद्धि-शून्य हो तुम लोग। कैसी अटपटी बात करते हो? भगवान कृष्ण के साथ गांधी की तुलना? हाय ...." कहते कहते किट्नाजारी आंसू बहाने लगे।

बात कोई खास नहीं थी, हमने महात्मा गांधी के बारे में कहा था, "गांधी जी अवतार पुरुष हैं जो गोरों के साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए धरती पर अवतरित हुए हैं, यह भगवान का ग्यारहवां अवतार है।" बस, इसी पर किट्नाजारी की भावना को ठेस पहुंच गई। शैवों को "क्षारावृत अग्नि" (राख से ढकी आग) की संज्ञा दें तो हमारे वैष्णव "जलती

लपटें" हैं। जिस तरह ईसाइयों के बीच में "ज्ञान-स्नान" (बपतिस्मा) की प्रथा है, वैष्णवों के बीच में "मुद्रा-स्नान" (लौह-मुद्रा को आग में तपाकर भुजा में लगाया जाना) प्रचलित है। इस मुद्रा को धारण करने के बाद उनकी हैसियत वही होती है जो पार्टी का कार्ड पाने के बाद किसी कम्युनिस्ट सदस्य की होती है। इसके ज्वलंत उदाहरण मेरे पिताजी हैं। पूर्व में वे कृष्णस्वामी नायकर थे, मुद्रा-स्नान के बाद श्री कृष्ण रामानुजम बन गए। अपनी दूसरी पत्नी (मेरी सौतली मां) का नाम मारियम्मै था। उसे बदलकर उन्होंने नया नामकरण कराया, "मणवालम्माल"। हम सभी भाई-बहनों के नाम पक्की श्रीवैष्णव-परंपरा के अनुरूप बदले गए। लड़कों के नाम के आगे "रामानुजम" लगता है।

हमारे परिवार का कोई भी सदस्य भूले-भटके भी शिव का नाम नहीं ले सकता। भूल से कहीं यह नाम मुंह से निकल जाए तो निश्चित रूप से उसे कोड़े खाने पड़ते। हमारे यहां काम करने वाले नौकरों के नामों में भी शिव-संबंध नहीं होता। इस विषय में मेरे पिताजी बड़े जागरूक थे। हम लोग ''घंटी-धारी वैष्णव-परंपरा'' में आते हैं। घंटी-धारी वैष्णवों से मतलब है कि उनके दोनों कानों में चांदी की दो छोटी-छोटी घंटियां टंगी हुई होती हैं। कहीं कोई व्यक्ति शिव नाम उच्चरित कर दे तो उसके श्रवण से पहले ही हम जोर से अपना सिर हिला देते। इससे घंटियां बज उठतीं और इस तरह हमारे कानों में शिव नाम को घुसने से रोक देतीं।

इस तरह की ढेर सारी कहानियां हैं जिनमें "घंटी-धारी वैष्णवों" की खिल्ली उड़ाई गई है।

(वैष्णवों ने भी शैवों के उपहास में किस्से बनाए हैं, यों एक दूसरे पर कीचड़ उछालने के लिए बनाई कहानियां अनगिनत हैं, इस तरह के असंख्य गीत हैं।)

एक धर्मशाला में तीन "शिव-पंडारम्" (शैव-साधु) आकर ठहरे। उनमें से दो पंडारम-साधुओं के बीच में किसी बात को लेकर हाथापाई हो गई। तीसरे "पंडारम" इसे देखकर चिल्ला उठे। धर्मशाला का कारोबार देखने वाले "कारबारी" ने उन्हें सरपंच के सामने लाकर खड़ा कर दिया। संयोग की बात थी कि गांव के सरपंच "घंटी धारी वैष्णव" थे, इसका प्रमाण था उनके कानों में टंगी घंटियां।

धर्मशाला के कारबारी इन शैव-पंडारम साधुओं को सरपंच के सामने उपस्थित करने के बाद हट गए। क्योंकि झगड़े का गवाह तीसरे "पंडारम" ही थे। उन्होंने अपने द्वारा देखे दृश्य का बयान यों किया।

यह तीसरे "पंडारम" श्वास लेते तो "शिव", श्वास छोड़ते तो "शिव"। ये बड़े शिवयोगी "शिव-पंडारम" थे या "पंडार-शिवम" थे। इनका साक्ष्य शुरू हुआ इस तरह से।

पहले पंडारम की ओर संकेत करते हुए बोले, "इस शिव ने उस शिव को शिव।" अर्थात इन्होंने—इस पंडारम ने—उस पंडारम को पीटा।

दूसरे पंडारम ने जो प्रतिक्रिया की उसका विवरण सुनिए, "उस शिव ने इस शिव को शिव शिव।" अर्थात इन्होंने दो तमाचे लौटाए। आगे क्या हुआ?

"इस शिव ने उस शिव को शिव शिव शिव ...." यों पूरा घटना क्रम उन्होंने त्वरा के साथ शिव शिव कहते हुए सुनाकर पूरा किया, "इस शिव ने उस शिव को .... उस शिव ने इस शिव को .... शिव शिव शिव शिव शिव शिव ...."

बेचारे घंटीधारी सरपंच का बुरा हाल हो गया। कहने की जरूरत नहीं कि उन्होंने अपना सिर जोर जोर से कितनी बार हिलाया होगा।

यह अर्थगर्भित हास्य-कथा दो तथ्यों की ओर इंगित कर रही है;

(1) न्यायालय के मामले का बयान करने वाले गवाह का मन यदि किसी पूर्व-धारणा से बंधा रहे तो वह खुले मन से मामले का सही बयान नहीं कर सकता।

(2) मामला सुनकर न्याय देने के लिए नियत न्यायाधीश का मन यदि पूर्वग्रह से ग्रसित हो तो वे सत्य को स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि उनके दोनों कान पहले से ही बंद हैं।

इस प्रकार दोनों की स्थितियां वास्तविक व्यवहार—यथार्थ—से विलग हो जाती हैं, इसलिए हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यही इस कहानी का सार है।

यह भी संभव है कि घंटी धारी वैष्णव सरपंच के कानों में लटकती घंटियों को देखने के बाद ही उस पंडार-शिवम् के मन में आया होगा कि अपनी गवाही को यों शिवमय शिव-बहुल बना दें। किसी विषय पर तीव्र आसक्ति व्यक्ति को अपने साथियों और समाज से विलग कर देती है। हो सकता है उसका सिद्धांत न्यायोचित हो, किंतु सीमातीत आसक्ति के कारण वह सिद्धांत हास्यास्पद लगने लगता है। "लंगोटी रहित लोगों के गांव में लंगोट-धारी पगला कहलाता है" वाली कहानी के मूल में यही बात है।

हमें जीवन का और व्यवहार का रास्ता सुझाती है यह उक्ति, "समाज के साथ कंधा मिलाए चलो, जमाने के साथ कदम मिला के चलो।" अर्थात "दुनिया वालों के अनुरूप व्यवहार करो।"

अबोध, ज्ञानी और पागल—तीनों तबकों के लोग सदा ही समाज के उपहास के पात्र रहे हैं। इन तीनों में से किट्नाजारी किस किस्म के अंदर आते हैं, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर लें।

हिंदुस्तान में चल रही आजादी की लड़ाई और उसके कर्णधार गांधी को लेकर किट्नाजारी आए दिन खिल्ली उड़ाते थे। ऐसे में एक दिन समाचार पत्रों में यह खबर आई—"अंग्रेज सरकार हमें आजादी देने को राजी हो गई है।" समाचार पत्रों में इस खबर को देखने-पढ़ने के बाद भी किट्नाजारी ने इसे मानने से इंकार कर दिया था। वे हमारे नारे दुहरा कर ही हमें चिढ़ाया करते थे, - "देश हमारा राज भी हमारा।" इसे दुहराते हुए

उपहास की मुद्रा में अपना मुंह टेढ़ा करते थे।

15 अगस्त 1947 का सुनहरा दिन आया। हम लोगों ने तोरण और तिरंगे झंडों से पूरी बस्ती सजायी और पुरजोर नारे लगाते हुए कोलाहल के साथ प्रथम स्वतंत्रता-दिवस मनाया। वे व्यंग्य और उपहास भरी दृष्टि से हमें देखते हुए अलग बैठे थे। फिर एक दिन मैं उनके पास जब इतमीनान से बैठकर कंबरामायणम् की कड़ियां सुन रहा था। (आजादी मिल गई .... अब क्या चिंता है फुरसत में बैठकर कविता और तमिल का आस्वादन करने के अलावा ....?) मैंने धीरे से उन्हें यों छेड़ दिया, "क्यों चाचा, आप कह रहे थे न अंग्रेज हिंदुस्तान को छोड़कर नहीं जाएगा, कभी नहीं जाएगा .... अब क्या कह रहे हैं?"

"हाय कैसे अनाड़ी हैं ये लोग !" उन्होंने हम पर व्यंग्यपूर्ण दृष्टि डाली और विद्रूप के साथ हंसे। यहां पर एक बात का उल्लेख अवश्य करना आवश्यक है। हमारे द्वारा आयोजित प्रत्येक सभा में किट्नाजारी जरूर हाज़िर होते, जरा दूर हटकर वहां खड़ी की गई किसी बैलगाड़ी में बैठकर वे हमारे भाषण सुनते। उस जमाने में माइक नहीं होता था, इसलिए वक्ताओं को जोर से बोलना पड़ता था और ऊंची आवाज में गाना पड़ता था। जब हमें पता चलता कि किट्नाजारी आए हुए हैं, हमारे अंदर एक खास तरह का जोश पैदा होता। हम उन्हें अंग्रेजों का खुफिया समझते थे। यही नहीं हमारी यह भी (गलत) धारणा थी कि किट्नाजारी आजादी की लड़ाई के संबंध में यहां की एक हलचल की सूचना सरकार को जब के तब दे रहे थे। ऐसा सोच कर हम मन ही मन उनसे कुढ़ते थे।

चालीस के दशक की शुरुआत में ही मैंने अपनी स्कूल की पढ़ाई को पूर्ण विराम दे दिया था—अर्थात मैंने एकबारगी उसे तिलांजली दे दी। आठवीं जमात में फेल होने का पहला कारण यह था कि स्कूल की पढ़ाई मेरी अक्ल में घुस नहीं पाती थी, उत्तर-पत्र के शीर्ष पर "श्रीरामजयम्" से प्रारंभ करने के बजाए मैंने "वंदे मातरम्" जो लिखा था, वह दूसरा कारण था। इस तरह "वंदे मातरम्" लिखना और "वंदे मातरम्" का नारा लगाना उन दिनों बहुत बड़ा अपराध माना जाता था, इस बात को आजकल किसी से कहें तो कौन इस पर विश्वास करेगा? सुबह बिस्तर से उठते ही हम तारक मंत्र सदृश तीन वाक्यों का उच्चारण करते थे :

1. वन्दे मातरम्
2. हमारा यह देश है
3. (आजादी) पाकर ही रहेंगे

सन् बयालीस में गांधी जी सहित बहुत से नेताओं को पकड़ कर जेलों में बंद कर दिया अंग्रेज ने। हम बच्चों से रहा न गया। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें, क्या न करें। इडैचेवल एक छोटा-सा गांव है। यहां पर कुल मिलाकर दो-तीन दुकानें हैं, हमने व्यापारियों से दुकानें बंद करने का आह्वान किया। वे इसे मान गए और खुशी से दुकानें

बंद कर दीं। इडैचेवल के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी, न इससे पहले इस तरह की पूरी हड़ताल हुई है न आगे कभी हो सकती है। इस सफलता के बाद हम आगे की कार्य योजना बनाने बैठ गए। समझ में नहीं आ रहा था कि अगला कदम कौन-सा उठाएं। अगले दिन सात-आठ लोग मिलकर एक दिन के अनशन पर बैठ गए—गांव की चौपाल पर। दिन में तीन तीन बार—कभी कभी तो चार बार—खाने के आदी मेरे पेट ने खासी अच्छी मुसीबत पैदा कर दी। भिखमंगों के मुंह से हमने सुना है - "बाबू जी ! तीन दिन से खाए नहीं।" पहले इसे सुनकर हमें कोई फर्क नहीं पड़ता था। कभी तो "ओह, ऐसी बात है।" यों प्रतिक्रिया करते हुए सरक जाते। अब हमें पता चल गया कि एक दिन खाए बिना रहने पर शरीर के अंदर क्या गुजरता है। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था, मेरे साथ साथ अनशन करने वाले मित्र भूख की ओर से निश्चिंत कैसे बैठे हैं। सुबह बीती, दुपहरी भी टल गई और हाय, अब शाम होने वाली है। हमारे उपवास से किसी महानुभाव का दिल पसीज गया था, उन्होंने हमारे लिए "पानक्करम्" भेजा था। "पानक्करम्" वह मीठा शरबत है जो ताड़ के गुड़ को जरा-सी इमली और नमक के साथ पानी में घोल कर बनाया जाता है। हमारे सामने लाकर रखे गए उस पेय को देख कर गुस्सा आ गया जी. के. को, उन्होंने उसे तुरंत वहां से हटाने का हुक्म दे दिया। जी.के. हमारे नेता थे। मैं तो इधर भूख से तड़प रहा था, अपने को जब्त नहीं कर पा रहा था। किसी "खास जरूरत" का बहाना बनाकर मैं घर आया चुपके से रकाबी भर चावल उड़ा लिया और अपना उपवास जारी करने के लिए पुनः चौपाल पहुंच गया।

एक दिन के उस "निराहार सत्याग्रह" के बाद हमने अपना राष्ट्रीय आंदोलन जारी रखा। हमें गुप्त रूप से जो पर्चे मिले थे, उसकी प्रतिलिपियां बनाकर गुप्त रूप से उसे बांटने का काम। पर्चे की विषय-वस्तु रेल की पटरियां उखाड़ने, तार के खंभे पर चढ़कर तार तोड़ने के बारे में रहती थी।

एक बार की बात है। रात के समय हमारे गांव में एक पुलिस वैन आयी, पुलिस वालों ने मेरा नाम लेकर अता-पता पूछा। इत्तफाक से उस समय मैं गांव में नहीं था। हमें शक हुआ, पुलिस को इन सब बातों का कैसे पता चला ....? जरूर यहीं-कहीं अंग्रेजों का कोई खुफिया रहता है। जब शक होने लगता है, तो हर किसी पर संदेह करना स्वाभाविक तो है। ऐसे में हमने किट्नाजारी पर संदेह किया तो इसमें गलती ही क्या थी?

मंच पर खड़े होकर हम लोग जोर शोर से लेक्चर झाड़ते थे, "अंग्रेज लोग हर साल हमारे देश से इतने करोड़ रुपए की राशि लूट कर ले जा रहे हैं।" इसे बारह से भाग देकर, उस राशि को फिर तीस से भाग देकर हम ठीक ठीक हिसाब बनाते थे कि प्रतिदिन हमारे यहां से इतनी दौलत इंग्लैंड जा रही है। उसके बाद मंच पर हम गाते थे- "लूट रहे हो देश की दौलत आए दिन .... सोचते हो चुप रहेंगे रोके बिन ....?"

अब देश आजाद हो गया है। उसकी पहली सालगिरह भी मनाई जा चुकी है। आप कुछ भी मनाइए, किट्नाजारी में लगता है कोई सुधार नहीं हो सकता। वे अब भी मौका मिलने पर हमारी खिल्ली उड़ाने से नहीं चूकते। वे खूब पढ़े-लिखे हैं, जानकार हैं, बुजुर्ग हैं, तमिल के सागर हैं। इतने सयाने होने पर भी क्या फायदा ....? छिछोरापन नहीं गया है ....। मैंने एक दिन उनसे इस तरह पूछा, "अब क्या बता रहे हैं ....?"

किट्नाजारी ने उसी परिहासपूर्ण दृष्टि से मुझे देखा। पलट कर उन्होंने एक जबर्दस्त सवाल किया कि सुनकर मेरा माथा ठनक उठा, "अरे बच्चू ! अंग्रेजों की चालाकी अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आई है। बोलो वह किसलिए हिंदुस्तान आया? व्यापार करने के लिए ... यही न? तुम लोग मंच पर खड़े होकर आए दिन हाथ हिला हिलाकर कहते थे" वह हर साल इतना ले गया, हर दिन इतना ले गया। वह जब यहां से चला गया तो क्या उतने करोड़ रुपए तुम्हें वापस दे करके गया?" यह सवाल उठाने के बाद उन्होंने एक बार मुझे घूर कर देखा।

यह सवाल सुनकर मैं सकते में आ गया। मैं सोचने लगा, कितनी ही बार हमने कितने कितने मंचों पर खड़े होकर गर्जन किया था, "पूर्ण स्वतंत्रता ले कर रहेंगे, तब तक दम न लेंगे, गठरी बांध कर जहाजों में तुम्हें चलता न करेंगे।"

सन् 1942 की बात है। बम्बई में कांग्रेस महासभा के मंच पर से वल्लभभाई पटेल दहाड़ते हुए बोले : "अब अंग्रेजों से कोई भी वार्ता नहीं होगी ...."

सभा में उपस्थित जे.बी. कृपलानी फौरन उठे और अपनी स्वाभाविक हास्यपूर्ण अदा के साथ बोले, "हमें उनसे कम से कम एक बार तो वार्तालाप करनी ही पड़ेगी", 'बोरी-बिस्तर के साथ आपको जहाजों में भेजने के लिए कितने जहाजों की जरूरत होगी', यह बात पूछने के लिए बात करनी होगी।" (सभा में जोर जोर से हंसी ... तालियां ....) मेरी समझ में नहीं आ रहा था .... किट्नाजारी ने जो सवाल उठाया, उसका क्या जवाब दिया जाए।

कोई जानकार आदमी इसका जवाब सुझाए तो बड़ी कृपा होगी ....।

11

आजादी को इतने साल बीत गए, तब भी अंग्रेज सरकार का यूनियन जैक झंडा हमारे गांव के स्कूल में सुरक्षित है, अगर किट्नाजारी को यह सूचना मिले तो इस पर उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी? पर क्या करें? किट्नाजारी आज हमारे बीच में नहीं हैं, उनके बताए सुनहरे बोल अब भी हमारे कानों में गूंज रहे हैं। जिस प्रभु ने खाने के लिए केला दिया उन्होंने नहीं बताया कि केला खाने के बाद छिलका फेंक दिया करो। नए राष्ट्रीय ध्वज स्कूलों को भेजने वाले हाकिम साफ साफ हिदायतें देना भूल गए कि पुराने झंडे का क्या किया जाए। अध्यापक बेचारे क्या करेंगे?

"तमिलनाडु की ग्रामीण कथाएं"*, नामक पुस्तक में एक कहानी आती है, पुरानी लीक पर गोलाई में घूमने वाले कोल्हू के बैल को वहां से मुक्त करके राजमार्ग पर पहुंचाया गया। पर क्या करें? कोल्हू का बैल राजमार्ग में भी गोलाई में चक्कर काटता नजर आया।

कई लोग इस तथ्य को भूल जाते हैं कि इस तरह के अधिकारियों को तैयार करने के लिए आदि काल में अंग्रेजों को कितनी मेहनत करनी पड़ी होगी।

अगर आप चार-पांच सरकारी दफ्तरों में झांककर देखें आपको एक अजीब तमाशा देखने को मिलेगा। आप देखेंगे कि वहां पर बहुत सारे कागजों में क्या क्या लिखकर फाइलों का अंबार बनाया हुआ है। पहले फाइल के अंदर एक ही कागज लगता है, फिर और एक आता है, उसका जोड़ा बनकर। बस, उसके बाद तो जिस तरह चूहे-चुहिए बच्चे जनते हैं पेपर धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं। कभी जब गर्भिणी महिला की तरह उस मिसिल का पेट बुरी तरह फूल जाता है। फिर वह और कई बच्चे जनती है। लेकिन इसमें पते की एक बात है। कागज बढ़ते जा रहे हैं, तो इसका मतलब है काम सिकुड़ता जा रहा है।

एक बार की बात है कुट्रालम नगर में कोलतार की पक्की सड़क डाली गई। सड़क को जल-प्रपात तक ले जाने की योजना बनी तो सड़क लंबी होती चली गई। देवस्थानम के अधिकारियों को किसी तरह इस बात का पता चल गया। तब उनकी ओर से कागज का एक तीर सर ... से निकला लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों को लक्ष्य करते हुए यह अस्त्र भेजा गया। क्या उनके तरकस में अस्त्रों की कोई कमी है? उन्होंने उत्तर में एक अस्त्र का प्रयोग किया।

पौराणिक युग के अस्त्र लौटकर अपने तरकस में घुस जाते थे। लेकिन आधुनिक युग में इन लोगों द्वारा प्रयुक्त अस्त्र मिसिल में जाकर लेटा करते हैं। उन दिनों अस्त्र बहुत ही दुर्लभ होते थे, उन्हें प्राप्त करने के लिए तपस्या करनी पड़ती थी। अब हमारे पास कागजी अस्त्रों का कोई अकाल नहीं है। हम निरंतर एक के बाद एक कागज के कारखाने खोलते जा रहे हैं, इसलिए कागद-अस्त्रों की कमी होने की संभावना नहीं है। यों कई महीने तक चला कागद-युद्ध अंततः समाप्त हुआ। देवस्थानम के अधिकारियों के सामने लोक निर्माण विभाग के अधिकारी हार गए।

फिर भी जिस काम को शुरू किया, उसे कैसे छोड़ा जा सकता है?

पहाड़ की तराई से लगते लगते, झरने का पानी चित्रा नदी के रूप में बह रहा था। चित्रा नदी के किनारे किनारे एक पगडंडी थी। यदि उसे चौड़ा करके सड़क का निर्माण किया जाए तो जल-प्रपात तक कारें जा सकती हैं। कार को दूर खड़ी करके झरने तक पैदल जाने की झंझट से बच सकते हैं फिर देवस्थानम के अधिकारियों के साथ झगड़ा मोल लेने की जरूरत भी नहीं है। पर्वत से लगी कुछ चट्टानों को तोड़ने से काम चल जाएगा।

---

* लेखक की एक अन्यकृति

यह कौन बड़ी मुश्किल का काम है? ऐसा सोचते हुए लोक निर्माण विभाग वालों ने सड़क निर्माण का काम शुरू कर दिया।

यह वन विभाग के अधिकारियों की आंखों में ही नहीं, उनके कानों में भी पड़ गया। सुरंग लगाकर चट्टानें उड़ाई जाएं तो कान में अवश्य पड़ेगा ही। बस, द्वितीय कागद-युद्ध शुरू हो गया वन विभाग के अधिकारियों और लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों के बीच में। जनसाधारण को यह देख कर आश्चर्य होने लगा .... ऐसा भी होता है? सड़क निर्माण सबके लिए उपयोगी काम ही तो है ...इसे क्यों रोका जाना चाहिए? आम लोग इस प्रश्न को लेकर जहां तहां वाद-विवादों में लग गए।

आम लोगों की बात छोड़ दीजिए, पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी भी इस प्रश्न के पक्ष-विपक्ष में दलीलें देते हुए शास्त्रार्थ में उतर आए। सभा-सम्मेलनों में यह चर्चा-परिचर्चा का विषय बन गया। एक व्यक्ति ने मुझसे कहा "मित्र, जरा मेरी बात सुनो। भला, वन विभाग को क्यों पीछे हटना चाहिए, तो यह नहीं हो सकता। यदि वन विभाग इसे मान ले तो सभी पर्वत सड़कों के रूप में बदल जाएंगे। जरा उस दृश्य की मन में कल्पना तो करो मित्र।"

मुझे चुप रहना चाहिए था। अनाड़ियों की तरह मैंने एक सवाल उठा दिया। मैंने पूछा, "बताइए असल में किसकी संपत्ति है यह झरना?" मतलब यह है, "अगर स्वामित्व का प्रश्न उठे तो कौन इसका मालिक होने का दावा पेश कर सकता है? और इसमें किसका पक्ष प्रबल हो सकता है?" मेरे प्रश्न का सार यही था।

"डेफिनेटली, निश्चित रूप से यह झरना वन विभाग का ही है। क्योंकि पर्वत पर उसी विभाग का अधिकार है।"

"नहीं, हरगिज नहीं। पर्वत के ऊपर तो तेनरूवि और शेणृबग अरूवि हैं इन झरनों के विषय में आपकी बात सही हो सकती है, 'पेरिय अरूवि' (बड़े प्रपात) के विषय में यह सही नहीं है।"

"हां, ठीक तो है। पर्वत से निकालने पर भी वह जमीन पर ही तो गिरता है।"

जिन्होंने ऐसा समर्थन किया, उनकी वास्तविक मंशा क्या थी, समझ में नहीं आ रहा था। उनके चेहरे से पता नहीं चल रहा था कि वे सचमुच यही करना चाहते थे या तमाशे के लिए यह दलील पेश कर रहे थे।

"जल-प्रपात समिति नाम से एक कमेटी है। वही कमेटी इन सब झरनों की देखभाल करती है। इसलिए यदि वे लोग इसके स्वामित्व का दावा करें तो उसमें कोई गलती है?"

"क्यों जी .... नहाने वालों से पैसा वसूल कर रही है कुट्रालम नगर पालिका (उदा. 'चिट्रुवि' अर्थात छोटे प्रपात में) .... उसका कोई दावा नहीं हो सकता।"

"सच पूछा जाए तो इस जल-प्रपात का स्वामित्व कुट्रालम के मंदिर का ही है। युग-युगों से इसी प्रपात से जल ले जाकर भगवान का अभिषेक किया जा रहा है। इसलिए निस्संदेह

यह मंदिर की संपत्ति है।"

असल में यह मंदिर की संपत्ति ही रही। उन दिनों मंदिर में हरिजनों का प्रवेश वर्जित था, यही नहीं, स्थिति ऐसी भी रही कि झरने में स्नान करना हो तो मंदिर के सामने से होकर जाना पड़ता था। क्योंकि सड़क मंदिर के सामने होकर जा रही थी। अगर मेरी याददाश्त सही है तो 1934 जनवरी में महात्मा गांधी इस जल-प्रपात में स्नान के लिए यहां पधारे थे। वे झरने की तलहटी तक पहुंच गए थे। किंतु झरने के जल के नीचे अपना सिर दिखाने से पहले गांधी जी ने आसपास के लोगों से एक प्रश्न किया, "इस झरने में हरिजन भाई भी नहाते हैं?"

लोगों ने सच्ची सच्ची बात बताई, "नहीं, चूंकि सड़क मंदिर के सामने से होकर आती है, इसलिए हरिजनों को यहां आकर स्नान करने की अनुमति नहीं दी जाती।" बस गांधी जी ने अपना सिर पीछे की ओर खींचते हुए कहा, "जिस दिन आप लोग इस झरने में हरिजनों को स्नान करने की अनुमति देंगे, उसके बाद आकर मैं इसमें नहा लूंगा।" यों कहकर वे सरपट वहां से चले गए, पीछे मुड़कर देखा तक नहीं।

"लेकिन आज तो सभी लोग इसमें स्नान करते हैं। झरना किसी की निजी संपत्ति नहीं है, जनता की सम्मिलित संपत्ति है" किसी ने बताया।

"आप जो कह रहे हैं ठीक है, किंतु जनता के ऊपर भी एक रहता है", नीली छतरी वाले की ओर हाथ का संकेत करते हुए दूसरे ने कहा, यह सारा जगत ईश का है। "ईशावास्यं इदं सर्वं।"

यह जो कुछ ऐश्वर्य हम देखते हैं, सब उसी का है, हम लोग बीच में आए हुए हैं और बीच में जाने वाले हैं। ''वर्षों तक पढ़ने-लिखने के बाद ऊंचे ओहदों पर आए अधिकारियों को इन सब बातों का अवश्य पता होना चाहिए। फिर जिस तरह राजमहल के कोठार में रखे अनाज के लिए मूषक आपस में छीना-झपटी करते हैं, ये अधिकारी लोग आपस में क्यों इस तरह झगड़ा करते हैं?''

12

मेरा विचार है, अब बहुत हो गया, अधिकारी पुराण को जरा यहीं रोक लिया जाए। (उनके ऊपर एक हजार पृष्ठों का उपन्यास लिखने की एक योजना है मेरे मन में। विश्व के सर्वप्रथम अधिकारी चित्रगुप्त से लेकर वर्तमान युग में हमारे ग्राम-अधिकारी तक सभी का कच्चा-चिट्ठा खोला जाए तो वर्णन इतना दिलचस्प होगा कि सुनते सुनते न आप अघाएंगे, न बोलते बोलते मैं ही थक जाऊंगा। वाकई रोचक आख्यान है इनका।)

अब हम जमीन पर उतरते हैं - वापस तमिलनाडु विद्युत बोर्ड पर। अपने ग्राहकों के

साथ यह बोर्ड तरफदारी करता है—एक आंख में मक्खन लगाता है, तो दूसरे में चूना। मिल-मालिकों के लिए वह चार पैसे फी यूनिट की दर पर बिजली देता है और किसानों से पंद्रह पैसे प्रति यूनिट धरवा लेता है। इसके लिए दो कारण बताता है : पहला कारण—खेती को अभी तक उद्योग नहीं माना गया है।

मिट्टी खोदते खोदते हमारी आपकी जिंदगी बीत गई है। हम भी कितने अहमक हैं जो अभी तक खेती को उद्योग समझे बैठे हैं !

जिन महाकवि ने (सुब्रह्मण्य भारती) गाया था, "वंदना करें हम खेती की उद्योग की," वे पागल नहीं थे बल्कि महापागल थे क्योंकि उन्होंने खेती को उद्योग से पहले रख दिया।

"एर् एषुपदु" (हल सत्तर) नाम से महाकवि कम्बन ने (यह भी सनकी हैं) एक प्रबंध-काव्य लिख मारा है। बाप रे बाप ! इस काव्य में वे खेती की ओर कृषि कर्म करने वाले किसानों की सराहना जो करते हैं, उसे आप सुनिए तो आपको दिन भर भोजन की सुध ही नहीं रहेगी।

उसके बाद हमारे "दाढ़ी वाले" कवि तिरुवल्लुवर आते हैं। अपने हिस्से में उन्होंने भी काफी कुछ कहा है इस "निकम्मे" कृषि-कर्म के संबंध में।

इन लोगों को मारिए गोली। फिसड्डी कहीं के। चुनावों को आने दीजिए। हमारे आदरणीय राजनीतिज्ञ और नेतागण आकर गांव गांव में लेक्चर झाड़ेंगे। अपनी जिह्वा पलट पलट कर किसानों की दुर्दशा का बखान करते हुए ये जोर जोर से रोएंगे, मगरमच्छ की तरह आंसू बहाएंगे।

कारण नंबर - 2 : "एक मिल मालिक लाखों यूनिट बिजली की खपत करता है और तुम तो केवल सैकड़ों या हजारों यूनिट की ही खपत कर पाते हो।"

अरे, आपको तो उस व्यक्ति से ज्यादा पैसा वसूल करना चाहिए जो लाखों की संख्या में यूनिट की खपत करता है। ज्यादा दूध देने वाली "जेरसी" गाय छोड़कर छंटाक भर दूध देने वाली देशी गाय से क्यों जूझ रहे हैं?

जनतंत्र की वकालत करने वाली सरकार को चाहिए कि वह बहुसंख्यक उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करे। अरे, तुम भूल जाते हो कि तुम्हें "वोट" देने वाला वर्ग यही है।

"ज्यादा यूनिट खरीदने वाले को ज्यादा रियायत" देने की नीति व्यवसाय प्रधान है, मुनाफे को तरजीह देने वाला नजरिया है। जनतंत्र की व्यवस्था में, जनता के लिए, जनता द्वारा चलाए जाने वाले राज को शोभा नहीं देता कि वह गूंगे किसानों पर जुल्म करे, बेरहम मुनाफाखोरों की तरह उन्हें निचोड़ दे।

"या तो हमारे लिए भी प्रति यूनिट चार पैसा कर दो या उनके लिए भी—मशीनें चलाने वाले मालिकों के लिए भी—15 पैसे लगाओ। तब तक हम बिल का पैसा अदा नहीं करेंगे।" अगर हम ग्रामवासी यह रवैया अपनाएं तो हमारी मांग को कौन गलत करार दे

सकता है ?

कहा जाता है कि बिजली के कुल उत्पादन में से सत्रह प्रतिशत की चोरी होती है। लगता है, सरकार इस क्षति की भी पूर्ति हम से करवा लेती है जैसे कि जौहरी बनावट में जल जाने वाले सोने का पैसा ग्राहक से वसूलता है।

विद्युत-धारा को रोक कर तांबे के तार की चोरी बेहिसाब हो रही है। इस तरह की चोरी करने वाले थोक के हिसाब से चुराते हैं; ये गाड़ियों में घूमते हैं और टन के टन लादकर ले जाते हैं।

यों बड़े पैमाने पर जब तांबे की चोरी हो जाती है, तो उसकी जगह नए एल्यूमीनियम तार लगाते हैं, तब बिजली की सप्लाई बंद रहती है। इसमें कम से कम दो हफ्ते का समय लग जाता है। तब तक फसलें खड़ी खड़ी मुरझा जाती हैं। हम अपनी तरफ से विभाग के सामने सुझाव रख चुके हैं कि आप के पास तांबे का जितना तार है, सारा उधेड़ कर अच्छे दामों पर बेचा जाए और उनकी जगह एल्यूमीनियम के तार लगाए जाएं तो तार चोरी के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। पर कौन सुनता है? कुल मिलाकर हमारा विद्युत बोर्ड उच्छृंखल कपूत बन गया है, इसे सही रास्ते पर लाना असंभव दीखता है। पता नहीं, खेती से इसे जन्मजात शत्रुता क्यों हैं? किसानों को यह केवल विषफल ही खिलाता है।

"हैदर अली" के जमाने के ट्रांसफार्मर लगे हैं। पूरे चालीस साल बीत गए हैं, बदले नहीं गए हैं। दिन-ब-दिन लोड बढ़ता जाता है और सर्विस ज्यादा देनी पड़ती है। इसके अनुपात में ट्रांसफार्मर की क्षमता बढ़ाने की ओर या उसे नवीकृत करने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। (यहां पर खुशी के साथ जाहिर करना चाहता हूं कि जब से "जूनियर विकटन" में यह लेख-माला लगातार प्रकाशित होने लगी, हमारे घरों की बत्तियां अपेक्षाकृत अधिक वोल्टेज के साथ जलने लगी हैं। इसके लिए संबंधित अफसरों का आभार मान रहा हूं।)

सड़क से मकानों की ओर आने वाले तार घिस घिसकर जर्जर हो गए हैं, उनकी "खाल" उधड़ कर जगह जगह से टंग रही है। ये तार किसी भी क्षण टूट कर हमारे सिर पर गिर सकते हैं। क्योंकि ये तार उस समय के हैं जब गांव में पहले पहले बिजली आई थी। अगर उनसे पूछें, "इन्हें क्यों नहीं बदलते?" तो फट जवाब मिलता है, "बदलना चाहते हैं? अपने खर्च पर करवा लीजिए न !" विद्युत बोर्ड का रवैया उस घोड़े के समान है जो कहता है, "चना लाओ तो मुंह खोलूंगा, लगाम लाओ तो मुंह बंद कर लूंगा।" अन्यथा तथ्य को जानते हुए भी कि मेरे पास तीन अश्व शक्ति वाला पंप सेट ही है, लगातार पांच अश्व शक्ति वाले पंप सेट का बिल ये लोग क्यों भेजते रहते हैं? तमाशा यह है कि पांच अश्व शक्ति पंप सेट वालों को तीन अश्व शक्ति के पंप सेट का बिल भेजा जाता है, ये वे लोग हैं जिन्होंने तीन अश्व शक्ति को पांच अश्वशक्ति में बदलवा लिया था। (विद्युत बोर्ड की

अनुमति के साथ ही।) विद्युत बोर्ड का प्रशासन "सराहनीय" है और "अनुकरणीय" भी। इन लोगों के भरोसे हम आत्मविश्वास के साथ इक्कीसवीं सदी में पदार्पण कर सकते हैं।

इडैचेवल के लिए एक वायरमैन और एक हेल्पर तैनात हैं। ये चिड़ियों की भांति सुबह आकर शाम को लौट जाते हैं। यहां स्थाई रूप से रहने के लिए उनके योग्य कोई मकान नहीं है। सिर्फ इन्हीं के लिए नहीं ... बल्कि हमारे ग्राम अधिकारी के लिए, डाकपाल, ग्राम सेवक, ग्राम सेविका, सहकारी अधिकारी इत्यादि सभी के लिए हमारे गांव में रहने योग्य मकान नहीं हैं। किसान अपने टूटे-फूटे मकानों में किसी तरह गुजर-बसर कर लेते हैं, ऐसे में इनके लिए मकान कहां से आएंगे? शहर में आवासीय बोर्ड होते हैं, विकास-प्राधिकरण होते हैं और न जाने कौन कौन-से अभिकरण होते हैं। यह तो आखिर गांव है .... इसके लिए ऐसे तामझाम की क्या जरूरत है। अरहर की टट्टी और गुजराती दाल? जो है, वही बहुत है।

वर्तमान पंचवर्षीय योजना जिला-स्तर से शुरू होने वाली है। अगली पंचवर्षीय योजना तहसील स्तर से शुरू होगी। उसके बाद की पंचवर्षीय योजना ही ग्राम-स्तर से आरंभ होगी। योजना विशेषज्ञों का कहना है कि इस अवधि में उपर्युक्त तबके तक सभी कर्मचारियों के लिए सरकारी आवास के निर्माण का काम पूरा हो जाएगा। इसके लिए खास कोई लंबा इंतजार करना नहीं पड़ेगा। पंद्रह साल ही तो हैं। उसके बाद विद्युत बोर्ड के वायरमैन और हेल्पर इडैचेवल में ही रहने लगेंगे। फिर हमें आज की तरह दुखी होना नहीं पड़ेगा— "हाय .... वायरमैन तो चला गया।"

अनवरत प्रयास के फलस्वरूप सहायक लेखा अधिकारी रवेन्यू इकाई, कोविलपट्टी से मेरे नाम एक पत्र मिला।

उसका सार था, "आपके मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करके यथावश्यक कार्यवाही की जाएगी।" इस पत्र को मिले अब दो साल पूरे हो गए हैं। मैंने भी बीच बीच में अनुस्मारक भेजकर देख लिए। तमिलनाडु विद्युत बोर्ड "पत्थर का देवता" बना हुआ हैं आखिर इस नाटक में चरमसीमा कब आएगी और कैसे आएगी?

हो सकता है आगामी चुनावों के बाद एक दिन अचानक पुलिस-बल के साथ विभागीय लोग आ धमकें और कुएं वाले पंप सेट के पीस-कट को निकाल लें। ऐसी हालत में हम लोग अपने बीवी-बच्चों के साथ इसका प्रतिरोध करेंगे और उन्हें ऐसा करने से रोकेंगे। कौन जाने उसके बाद क्या होगा? लाठी-चार्ज, अश्रुगैस, गोलीबारी या जेल? .... किसी को पता नहीं।

पहले आजादी के लिए अंग्रेजों से लड़े थे, अब जिंदा रहने के लिए अपने लोगों से लड़ रहे हैं हम।

वीर के लिए जनता का बनाया स्मारक

"लड़ाई" शब्द का अर्थ व्यापक होता है। फर्ज कीजिए दो शख्सों के बीच में किसी बात पर कहासुनी हो जाती है और वे "तू तू मैं मैं" पर उतर आते हैं तो वह भी "लड़ाई" कही जाती है। दो देशों के बीच में युद्ध छिड़ जाए या विश्व स्तर पर महायुद्ध ही शुरू हो जाए तो भी आम आदमी के लिए वह "लड़ाई" ही है। (पहले और दूसरे विश्वयुद्ध भी आम लोगों की भाषा में "लड़ाई" ही थे।) युद्ध के दौरान दोनों पक्ष में जीव-हानि होती है, किंतु न्याय के लिए समाज या देश के लिए लड़ने वाला कोई पुरुष चाहे जीते चाहे हार जाए अथवा युद्ध में वीर गति पर जाए तब भी वह वीर है, बहादुर है ...।

(यह नहीं सोचते कि लड़ाई हार जाने के कारण वह वीर कैसे हो सकता है? छत्रपति शिवाजी की जीवनी याद कर लीजिए। वे पराजित हुए और कारागार में बंदी बनाकर रखे गए, आखिर मिठाई के झावे में छिपकर बच निकले थे।) वीर पंडिय कट्टबोम्मन के बारे में जनता के बीच में दो राय होने पर भी, हिंदुस्तान की भूमि को हड़पने के लिए आए अंग्रेजों के खिलाफ उसने जो लड़ाई ठानी थी, वह न्यायपूर्ण एवं साहसिक कार्य था।

इस लड़ाई में यद्यपि कट्टवोम्मन हार गया, फिर भी उसकी बहादुरी उसकी वीरतापूर्ण मृत्यु ने जनता के दिल को छू दिया, यही नहीं झकझोर दिया। जनता ने अपनी जिह्वा से, अपने गीतों से उसे कीर्तिहार पहनाया। जनता के हृदय के अंतरतम से जो लोकगीत निर्गत हुए उन्हें आज भी वायु ढोती फिरती है। आम जनता ने एक और महत्वपूर्ण कार्य किया था। इस निबंध में उसी का उल्लेख हो रहा है।

कोविलपट्टी के समीप "इनाम मणियाच्ची" नामक एक छोटा-सा गांव है। वहां पर मालैयान नाम से एक पटवारी था। एक दिन लगान की किश्त का पैसा सरकारी खजाने में जमा कराने हेतु यहां से उसने पालैयंकोट्टै के लिए प्रस्थान किया। उन दिनों सरकारी खजाने का दफ्तर पालैयंकोट्टै में ही स्थित था। यह वह जमाना था जब अंग्रेज लोग हिंदुस्तान में अपने शासन की जड़ें जमा रहे थे। कोविलपट्टी के पास वाले इनाम मणियाच्ची से कोई पालैयंकोट्टै जाना चाहे तो उसे पैदल यात्रा ही करनी होगी। किसी तरह के सार्वजनिक वाहन की सुविधा नहीं थी। यही नहीं, लोगों के बीच में केवल सिक्कों का प्रचलन था। (उसके बाद 1861 से ही हिंदुस्तान में नोट की छपाई शुरू हुई थी।) रुपया शब्द, इस इलाके में आम जनता की जबान पर चढ़ने के लिए एक लंबा अरसा हुआ। "रुपया, आना, पैसा"

के उसी तर्ज पर "पणम्, तुट्टु, चल्ली" का चलन था। एक पणम में दस तुट्टु होते थे और एक "तुट्टु" में चार चाल्लियां। "मुक्काल्-तुट्टु" (मुक्काल=पौन) और इस मूल्य का सिक्का मेरे अपने जमाने तक—कल तक—प्रचलित था।

उन दिनों, जब कि रुपए का नोट प्रचलन में नहीं आया था, सिक्कों को थैली में भरकर पोटली बना के ले जाना पड़ता था। मालैयान भी इसी तरह सिक्कों की थैली कंधे पर डाले पैदल यात्रा पर निकला, पालैयंकोट्टै के लिए। जिस तरह प्राचीन काल में राजाओं के हाथ में राजदंड होता था, पटवारी के हाथ में भी लाठी जैसा एक दंड रहता था। इस लाठी के ठीक आधे से ऊपर एक एक बालिश्त के फासले पर कांसे के तीन छल्ले जड़े होते हैं। इसके अलावा उसकी भुजा पर अंडाकृति में पीतल का बना एक तमगा बंधा था, जिस पर ब्रिटिश राज के चिह्न सहित अंग्रेजी में "पटवारी" शब्द उकेरा गया था। इस बानगी के साथ मालैयान को किश्त का पैसा ले जाते हुए देखा था लुटेरों ने। मालैयान का कोई साथी नहीं होता था—धैर्यलक्ष्मी को छोड़कर।

अब की इस यात्रा में मालैयान को एक मुस्लिम हमसफर मिला। उस मुस्लिम भाई के बारे में ठीक ठीक कोई ब्योरा नहीं मिल रहा है, पता नहीं वह कौन था और किस गांव का था। ज्यों ही दोनों कयत्तार पार कर गए, लुटेरों ने इन्हें घेर लिया।

हाथ में मोटी झोली के साथ वह लाठी कैसे चला सकता था ...? इसलिए मालैयान ने पैसे की झोली अपने दोनों पैरों के नीचे डाली और लाठी के साथ खड़ा रहा।

लाठी टूटने के बाद ही, उसके प्राण निकलने के बाद ही धन पर लुटेरों का हक हो सकता है। जब तक हाथ में लाठी रहेगी तन के अंदर प्राण रहेंगे कर्तव्य-पथ से हटने का उसका इरादा नहीं था। पता नहीं, उसके साथी मुस्लिम नौजवान के हाथ में कोई हथियार था या कि वह निहत्था था। लुटेरों ने जब उन दोनों को घेर लिया था, मालैयान ने उस मुस्लिम साथी पर एक नजर डाली। वह मुस्लिम भाई रास्ते में बातचीत का साथी ही नहीं, संकट की उस घड़ी में सहायक के रूप में खड़ा मिला दुश्मनों का सामना करने के अंदाज में।

लुटेरों के क्रूरतापूर्ण आक्रमण के सामने वे दोनों ज्यादा देर तक टिक नहीं पाए। लुटेरे समूह में थे। पोटली के अंदर बंधे हुए सिक्कों ने वहां पर इंसान को खूंखार हैवान बना दिया था और वे इन दोनों पर बुरी तरह झपट कर नोच रहे थे भेड़ियों की भांति।

अंततः मालैयान गिर पड़ा। गिरने से पहले दो-एक दुश्मन को उसने धराशायी कर दिया था। धन से भरी झोली जब हाथ में आ गई, लुटेरे उसे लेकर भाग खड़े हुए। मालैयान को जब जरा-सा "होश" आया, उसने देखा कि लुटेरों का कहीं पता नहीं है, लगान का धन लुट गया, यहां तक कि वे मारे गए अपने साथियों को भी उठाकर ले गए हैं। लेकिन पास में किसी का रोदन-स्वर सुनाई दे रहा था।

बड़ी मुश्किल से अपना सिर उठाकर मालैयान ने देखा तो पाया कि सिरहाने पर वह मुस्लिम भाई अपने लिए आंसू बहा रहा है।

दीन हीन स्वर में मालैयान के मुंह से ये अंतिम वचन निकले थे :

"आंसू न बहाओ भई .... मुझे ले चल, किसी तरह मेरे अपने लोगों के पास पहुंचा दे ....।" वह मुस्लिम भाई मालैयान को तो जानता है। पर उसे न तो मालैयान का गांव का पता था, न उसके किसी नातेदार या साथी-संगी का। फिर उसने वादा किया कि मैं जरूर पहुंचा दूंगा।

उस मुस्लिम दोस्त के मन में एक ऐसी धुन सवार हो गयी—एक पैशाचिक जोश से वह प्रेरित हो गया, उसने मन में ठान लिया कि मालैयान के प्राण निकलने से पहले, खुद अपनी भी जान निकलने से पहले, मालैयान को उसके गांव में पहुंचाना है। मालैयान को अपने कंधे पर डालकर वह लगभग भागते हुए आगे बढ़ा। "मंगम्मा मार्ग" पर जब वह मुस्लिम भाई भाग भाग कर चला था, उसके बदन से टपके खून की बूंदें और उसके रक्त-रंजित तलुओं के निशान कई दिन तक उस मार्ग पर अंकित रहे, देखने वालों के मुंह से कइयों ने इसे सुना था।

मालैयान को लाकर "इनाम मणियाच्ची" गांव के पास "मंगम्मा मार्ग" पर एक पेड़ के नीचे मुस्लिम भाई ने ज्यों ही लिटाया था, मालैयान के प्राण-पखेरू तत्क्षण उड़ गए। उस समय तक वह मुस्लिम भाई खुद भी मृतप्राय हो गया था। आसपास में गाय-भैंस चराने वाले चरवाहे बालक तमाशा देखने के लिए पास में जमा हुए। मुस्लिम भाई ने उनसे गांव में जाकर लोगों को इत्तला करने का अनुरोध किया, फिर पानी पिलाने को कहते हुए बेहोश हो गया।

चरवाहे बालकों में से कोई सयाना लड़का भागता हुआ गया, पास वाले कुएं के पानी में अपना अंगोठा डुबोकर ले आया और उस मुस्लिम भाई के चेहरे पर और मुंह में उसने पानी निचोड़ दिया। जल-कण पाकर मुस्लिम भाई का होश लौटा और वह जहां तक हो सके जल्दी से घटना-क्रम सुनाने लगा। सुनाते सुनाते वह फिर बेहोश हो गया। लड़का फिर से वही अपना गंदा-सा अंगोछा लेकर कुएं के पास दौड़ा। दुबारा पानी लाकर निचोड़ा, लेकिन अबकी बार पानी मुंह से बाहर आने लगा। इसलिए मालैयान के बारे में ज्यादा विवरण हमें उपलब्ध नहीं होता। लेकिन एक बात स्पष्ट है, मालैयान केवल मात्र एक पटवारी नहीं था, वह एक नेक इंसान भी था, एक ईमानदार और बहादुर इंसान जिसने अपने इलाके की जनता के दिल में घर कर लिया था।

ऐसे एक बहादुर शहीद के लिए उस जनता ने किस प्रकार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी? अपने दुख और सहानुभूति को, अपने प्रेम और श्रद्धा को कैसे उसने प्रकट किया ....? उस विजन प्रदेश में उनको कोई पुष्प नहीं मिला। वहां जो कुछ उपलब्ध था,

कंकड़-पत्थर ही था। हर एक ने एक एक पत्थर उठाया और उसे श्रद्धा का अपना "सुमन" चढ़ाया।

उस मार्ग से आने-जाने वाले लोग एक पत्थर चाहे वह छोटा ही क्यों न हो—लाकर यहां डालते, श्रद्धांजलि के तौर पर चंद पल मौन खड़े रहते और फिर आगे बढ़ते। कालांतर में इस तरह लोगों द्वारा समर्पित पत्थर अंबार बन गया और वही उस वीर-शहीद के लिए लोगों द्वारा निर्मित स्मारक बन गया।

"मालैयान मंदिर" के बारे में जब मैंने पहले पहल सुना था, मुझे इसका ब्यौरा देने वाले सज्जन ने कहा था, "मालैयान के समकालीन लोगों में से कोई भी उसे गुस्सावर नहीं कहता है। लेकिन मौत के बाद वही भयंकर क्रोधी—बदला लेने की भावना रखने वाला उग्र स्वभाव वाला—बन गया। जिस वृक्ष के नीचे उसकी मृत्यु हुई थी, उसे उसने पहले साल में ही जड़मूल से उखाड़ कर फेंक दिया था।"

असल में मेरे एक प्रश्न, एक सुझाव के उत्तर में उन्होंने इस घटना का जिक्र किया था।

मैंने उससे पूछा था, या कहिए सुझाव दिया था, "सड़क के दोनों तरफ इतने सारे इमली के पेड़ हैं, आप लोगों को यह भी नहीं सूझा कि मालैयान मंदिर के पास कम से कम एक छायादार पेड़ हो ....।"

उनका जवाब था, "हमने कई बार वृक्ष लगाकर देख लिया। आसपास में कितने सारे पेड़ हैं। उन्हें तो वह कुछ नहीं करता। पर उसके अपने मंदिर में लगाए जाने वाले पेड़ को रहने नही देता।"

यह वार्तालाप बीस साल पहले हुआ था। अब ऐसी कोई बात नहीं है। मालैयान अब शांत हो गया है। वहां पर एक अंजीर का पेड़ छाया दे रहा है।

कयत्तार में एक इमली का पेड़ दिखाकर लोग कहते हैं इस पेड़ पर कट्टबोम्मन को फांसी पर चढ़ाया गया। दूसरे लोगों का कहना है, इस समय जो पेड़ है, वह बाद का है, उस पेड़ को अंग्रेज ने जड़ के साथ उखाड़ कर फेंक दिया था। यद्यपि इस विषय पर दो अलग अलग राय हैं, फिर भी मुझे इतना स्मरण है कि बचपन में मैं उस स्थान को देखने गया था, वहां पर एक बड़ा-सा इमली का पेड़ खड़ा था, लोगों ने उसकी ओर संकेत करते हुए हमसे कहा था "इसी इमली के पेड़ पर अंग्रेजों ने कट्टबोम्मन को लटकाया था ...।"
"आवारम्" का पौधा मैंने सुना है "कम्बलम नायकर" वर्ग के लिए—जिसमें कट्टबोम्मन का जन्म हुआ था—पूजनीय वनस्पति है। कहते हैं, उनकी कुलदेवी जक्कम्मा का आविर्भाव "आवारम्" पौधे के नीचे हुआ था।

जो लोग कट्टबोम्मन की वध-स्थली के दर्शन के लिए आते और जिन राहगीरों को उस मार्ग से होकर आगे जाना होता था वे दूर से ही अपने हाथ में एक पत्थर लेकर आते

थे। वहां पर पहले से ही बने पत्थर के अंबार के ऊपर यह पत्थर भी डालते। मेरी जवानी के दिनों तक यह परंपरा चली आई थी। पैदल यात्रा छोड़ कर लोग बसों पर यात्रा करने लगे, यहां बस रोक कर वीर शहीद के लिए पत्थर चढ़ाने का सिलसिला तब भी जारी रहा। कट्टबोम्मन की स्मृति में जनता द्वारा बनाया पत्थर का टीला, मालैयान मंदिर वाले पत्थर के अंबार से कई गुना बड़ा था।

लेकिन आज पत्थरों से बना वह टीला कहां है ...?

अचानक एक दिन वह टीला गायब हो गया उसका नामोनिशान तक नहीं रहा। आज आपको वहां पर एक भी पत्थर नहीं मिलेगा।

अभी चंद साल पहले की बात है, "वीर पांडिय कट्टबोम्मन" के जीवन पर बनी फिल्म तमिलनाडु और बाहर के राज्यों में लगातार कई महीने थिएटरों में सफलतापूर्वक चलती रही। शिवाजी गणेशन ने इस फिल्म में कट्टबोम्मन की भूमिका अदा की थी। कट्टबोम्मन को जिस स्थान पर फांसी लगाई गई थी, वहां पर उनकी एक मूर्ति स्थापित करने की इच्छा शिवाजी गणेशन के मन में उठी। यह बहुत ही स्वागत-योग्य और सराहनीय योजना है। लेकिन जनता ने अपनी शक्ति के अनुसार एक एक पत्थर जोड़ कर कट्टबोम्मन के लिए जो स्मृति-चिह्न बनाया था—पत्थर का टीला—उसे किसने और क्यों मिटाया ...?

विदेशों में कहीं इस तरह की जुर्रत कोई कर सकता है? जनता ऐसा होने देगी वहां ...?

यहां तो चुपके से हो गया यह निंदनीय कार्य! अंग्रेजों ने पांचालंकुरिच्ची के किले को तहस-नहस कर के मिट्टी में जो मिलाया उस क्रिया में और इस क्रिया में कोई खास फर्क मुझे नहीं दिखाई देता।

मिट जाए जात-पांत...

1

लिखना चाहता था "मिट जाए जातियां ...."

मगर जिस "गधी" को मिट जाना है, नष्ट हो जाना है, उसे "जाति" क्यों लिखूं, जो चली जाने के लिए अभिशप्त है, उसे "जात" कहना पर्याप्त है, यह ख्याल मन में आया। जो जाए वह जात। लेकिन अब देख रहा हूं "जात" इस देश की मिट्टी से जा नहीं रही है। जात-पांत को खत्म करने के लिए हम सैकड़ों उपाय करके देख चुके हैं—पंक्ति भोजन, मिश्र-विवाह न जाने क्या क्या? पर दाल नहीं गल रही है। मिश्र-विवाहों के फलस्वरूप जन्मी संतानों की एक नई जाति पैदा हो गई, इसे छोड़कर कोई परिणाम हाथ नहीं लगा है।

उस जमाने में जबकि मैं छोटा था, हमारे गांव में कोई अजनबी दिखाई देने पर उससे पहला प्रश्न यही किया जाता, "कौन-सा गांव ...?" (किस गांव में आ रहे हो?) अगला सवाल दागा जाता, "किस वर्ण के हो?" (वर्ण, जाति-व्यवस्था वाला वर्ण)। आजकल हम लोग किसी से ऐसा प्रश्न नहीं करते। लोगों के अंदर इतनी समझ आ गई है कि ऐसा सवाल करना उचित नहीं है, ऐसे प्रश्न सभ्यता की कोटि में नहीं आते। लेकिन यह बोध बुद्धि में आ गया है, हृदय में नहीं।

पहले अनुमान लगाने की कोशिश होती है, मन ही मन पूछ लेते हैं, "भला, यह आदमी किस जाति का हो सकता है?" अनुमान में कई बार पांच में दो सही नहीं निकलता। सब को पता है कि किसी की जाति जानने से स्वयं को धेले भर का भी फायदा होने वाला नहीं है, फिर भी मन का बंदर चुप नहीं रहता। इस तरह जाति का पिशाच अब भी लोगों को बुरी तरह सताता है ऐसे भी कुछ बुजुर्ग हैं जो जाति के विषय में जिज्ञासा रखते हैं, पर जाति के नाम पर भेदभाव नहीं करते। रसिकमणि टी.के.सी. को ऐसे लोगों में शुमार किया जाना चाहिए। जाति का पता लगाने के लिए वे सीधा सवाल नहीं करते, बल्कि पिता का नाम पूछते थे। यह उनका सभ्यतापूर्ण तरीका था।

पहली बार जब मुझसे मुलाकात हुई, तो रसिकमणि ने मुझसे पूछा, "आपके पिताजी का नाम ....?" मैंने उत्तर दिया, "श्रीकृष्ण रामानुजम।" झट अगला सवाल आया "नायुडु

है न?" मैंने हामी भरी। तब से वे मुझे "नायुडु" कहकर बुलाते, राजनारायणन के नाम से नहीं।

कुट्रालम में जब स्नान का "सीजन" होता, रसिकमणि का घर हर समय उनके रिश्तेदारों, मित्रों और साहित्य-रसिकों से भरा रहता। इसी तरह रसिकमणि के साथ ठहरे मेहमानों में से कोई बुजुर्ग मुझसे काफी हिल-मिल गए। जाने क्यों, मेरे साथ बातचीत करना और उठना-बैठना उन्हें अच्छा लग रहा था। एक दिन मैं भोजन के बाद उनके साथ बैठकर पान खा रहा था। बातों बातों में उन्होंने मुझसे मेरी जाति पूछी। मुझे भी तब मजाक सूझ गया। मैंने झट बता दिया कि मैं "हरिजन" हूं। उसी क्षण उन्होंने मुझसे बोल-चाल बंद कर दी। हाय, एक शब्द ने क्या गजब ढा दिया !

मेरे एक मित्र ने एक बार अत्यंत विवश होकर कहा था, "हम इस देश के लिए कुछ करें या न करें, कम से कम एक काम अवश्य करना चाहिए। इस देश से जात-पांत और भेदभाव मिटा देना चाहिए। अभी अभी जन्मे किसी को जाति का लेबल देना मूर्खता नहीं तो क्या है? हमें ऐसा संकल्प करना चाहिए कि नवजात शिशु की जाति कोई न पूछे और कोई उसकी जाति न कहे। मैं इस पर अमल नहीं कर पा रहा हूं। समझ में नहीं आता, जाति को कैसे समाप्त किया जाए।"

मैं अपने बेटे को पहले पहल स्कूल ले गया, उसका नाम लिखवाने के लिए। प्रधान अध्यापक ने पूछा, "इसका धर्म कौन-सा है?" मैंने बताया। अगला सवाल : "इसकी जाति कौन-सी है?" वह भी बताई। मैंने साम्यवादी पार्टी में और उससे भी प्रगतिशील अभियानों में शरीक होकर जन-सेवा की है। इस समय पछतावा हो रहा है कि प्रधान अध्यापक के जाति और धर्म विषयक प्रश्नों का उत्तर क्यों दिया? मेरे अंदर इसका विरोध करने की दृढ़ता क्यों नहीं आई। मुझे कहना चाहिए था कि स्कूल की बही में मेरे बेटे के नाम के आगे "हिंदू, वटुकन" दर्ज नहीं किया जाए। बच्चे को स्कूल में भर्ती कराते समय अगर सावधान न रहें तो जाति धर्म के राक्षस सिर उठा सकते हैं, इस बात की जानकारी होते हुए भी मैं उस समय निष्क्रिय बना रहा। इसी तरह जानते हुए "शोषण" का शिकार बने एक हरिजन की कहानी अब याद आ रही है।

उस गरीब हरिजन के पास जमीन की एक छोटी-सी पट्टी थी। उसके पास वाली जमीन के मालिक के मन में जमीन की उस पट्टी को किसी तरह हथियाने की लालच पैदा हो गई। किसी किसान से आप उसकी जान मांगिए, दे देगा; पर अपनी जमीन से बिछुड़ने के लिए वह कभी तैयार नहीं होगा। जमीन के लिए आखिर तक लड़ते लड़ते मिटना उसे मंजूर होगा, पर जमीन देने को राजी नहीं होगा।

पड़ोसी जमींदार उच्च वर्ण का हिंदू था, धनिक भी था। इस बल-बूते पर उसने उस गरीब हरिजन हिंदू पर बेहिसाब जुल्म किए। पड़ोसी की चाल यह थी कि इन अत्याचारों

से तंग आकर वह अपनी जमीन छोड़कर भाग जाए। लेकिन गरीब किसान के लिए जीविका का साधन वही जमीन थी।

जमीन हड़पने के लिए पड़ोसी ने आखिरी चाल चली। इस गरीब के बाप ने पहले कभी एक छोटी-सी रकम उधार ली थी, इसका लेखा उसे अपनी बही में कहीं मिल गया। उन दिनों इसके लिए कोई कागज-पत्र या दस्तावेज नहीं होता था। उसने इस राशि पर सूद और चक्रवृद्धि ब्याज आदि लगाकर एक बड़ी रकम बताई और कहा कि उस रकम के लिए जमीन की यह पट्टी बराबर हो गई है। इस तरह वह खुल्लमखुल्ला जमीन को "स्वाहा" कर गया।

गांव के अंदर दबंग आदमी के खिलाफ मुंह खोलने को कोई भी तैयार नहीं होता। पास पड़ोस के गांव में जाकर इंसाफ मांगने पर उल्टे यही घुड़की सुनने को मिलती, "क्यों बे, बाप के जमाने का कर्जा अभी तक क्यों नहीं चुकाया?" अदालत और पुलिस का द्वार वह जरूर खटखटा सकता था, लेकिन इसकी क्या गारंटी है कि उन स्थानों में गरीब की सुनवाई होगी?

दुनिया जानती है कि पुलिस किसका पक्ष लेती है। अदालत में जाने पर शायद इंसाफ मिल भी जाए। लेकिन क्या एक मामूली किसान जो अंगोछे को ही धोती के समान बांधने को मजबूर है, आक्रमक प्रतिद्वंद्वी से—ऐसे प्रतिद्वंद्वी से जो कमीज के ऊपर अंग वस्त्र पहने हुए समाज में इज्जत के साथ घूमता है—कैसे टक्कर ले सकता है? कैसे वह उच्चतम न्यायालय तक पहुंचकर अपनी दलील पेश करवाने के लिए साधन जुटा सकता है? अंत में कहीं भी सहारा नहीं मिला तो उसने एक वकील के पास जाकर शरण ली जो इंसाफ के लिए लड़ते थे और दिल के बड़े उदार थे। उस गरीब के साथ जो हादसा हुआ, उसे उन्होंने हमदर्दी के साथ सुना और उसके आंसू पोंछे। वे उसके साथ आखिरी मोर्चे तक डटे रहे, एक के बाद एक बड़ी बड़ी अदालतों में जाकर उसके लिए लड़े और आखिर उसकी जमीन वापस दिलाकर ही दम लिया। गरीब किसान उनके लिए धन्यवाद के शब्द नहीं जुटा पाया, पर कृतज्ञता से उसकी आंखें लबालब भर आईं। उन्हीं दिनों उस हरिजन के एक बच्चा हुआ। गरीबों के मसीहा वकील साहब के उपकारों को मानते हुए उन्हीं के नाम पर उसने अपने बच्चे का नाम "डेनियल थामस" रखा। (आगे चलकर वही वकील तमिलनाडु सरकार में मंत्री बने थे।)

वैसे तो एक हिंदू हरिजन ने अपने बेटे के लिए ईसाई नाम चुना था, किंतु बाद में इसके फलस्वरूप उसे कौन कौन-सी परेशानियां उठानी पड़ीं, यह अपने आप में एक कहानी है। इसका पहला "पुरस्कार" यह मिला कि हरिजन होने के नाते पढ़ाई के दौरान उसे जो जो रियायतें मिल सकती थीं, उनसे वंचित हुआ। हरिजन छात्रावास में निःशुल्क आवास और भोजन की सुविधा उसके लिए मना की गई। उसे जो छात्रवृत्ति मिल सकती थी वह

मंजूर नहीं हुई। आगे चलकर नौकरियों में आरक्षण की सुविधा उसे मना की गई। फिर भी वह आदमी अपने बेटे का नाम बदलकर उसे हिंदू नाम देने के लिए राजी नहीं हुआ। उसने साफ कह दिया, इसका नतीजा चाहे कितना बुरा हो, इसी बात पर मुझे और मेरे बेटे को भीख मांग कर गुजारा करना पड़े। तब भी मैं नाम नहीं बदलूंगा। वह अपनी इस बात पर दृढ़ रहा।

अब एक और मित्र की आपबीती सुनिए। मेरे इन मित्र ने अपने बच्चों के क्या नाम रखे थे? बच्चे स्कूल में भर्ती कराते वक्त वहां पर जाति और धर्म के बारे में पूछे जाने पर - क्या किया था? इसकी कहानी उन्हीं की जबानी पेश है।

2

"मेरी तीन संतानें हैं - तीन लड़कियां। पहली संतान को जनने के लिए मेरी पत्नी अस्पताल में भर्ती हुई थी। यह 1967 की बात है। पश्चिम बंगाल में हुई कामगार महिलाओं की शानदार रैली के बारे में एक महत्वपूर्ण समाचार उस दिन के अखबार में छपा था। जब कामगार महिलाएं जुलूस और प्रदर्शन कर रही थीं, महिलाओं की रैली को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने पहले उन पर लाठी चार्ज किया और फिर घुड़सवार दस्ते द्वारा आंदोलनकारी महिलाओं को कुचलवाया था। इस कांड में बीस वर्षीय लड़की गीता मर गई।

मैंने फौरन पत्नी के पास जाकर कहा कि हमें अगर लड़की पैदा हो तो उसका नाम "गीता" रखेंगे। उसने भी मान लिया। अगले दिन बच्ची ही हुई। उसका नाम "गीता" रखा।

हमारी अगली बेटी का नाम है "अजिता"। यह भी पूर्व-निश्चित नाम था। केरल राज्य के क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के अपराध में उसी समय अजिता गिरफ्तार हुई थी।

तीसरी बेटी के पैदा होने से पहले आंध्र प्रदेश में पुलिस ने निर्मला नामक एक लड़की को पेड़ से बांध कर पिटाई करके उसे मार डाला था। इससे हमने अपनी आखिरी बेटी के लिए "निर्मला" नाम चुना था।

तीनों बेटियों को तिरूप्पत्तूर नगर के स्कूल में भर्ती कराते समय आवेदन पत्र पर 'जाति' और 'धर्म' वाले खानों के सामने मैंने लिखा था, "जाति नहीं है", "धर्म नहीं है।" स्कूल ने इसी बात पर उनका नाम लिखने से साफ इंकार कर दिया। मैंने उनसे मांग की कि वे अपनी अस्वीकृति लिखित रूप में दें। मैंने उन्हें चेतावनी दी, अदालत ले जाऊंगा। मैं चुनौती दूंगा कि जिस तरह हमारे संविधान में बताया गया है, भारत सच्चे माने में धर्मनिरपेक्ष देश है या नहीं।

अंत में विद्यालय के अधिकारियों ने जिला शिक्षा अधिकारी के अनुमोदन की प्रत्याशा में अस्थाई रूप से दाखिला दिया। फिर भी हमारी बच्चियों से उनकी जाति का नाम पूछ-

पूछकर स्कूल वाले उन्हें बराबर तंग करते थे, हमें भी स्कूल में बुलाया जाता था।

मैं स्वयं जाकर जिला शिक्षा अधिकारी से मिला। उनके सामने मैंने यह दलील रखी, "यह कहां का न्याय है कि मैं अपनी इच्छा और विश्वास के विरुद्ध घोषित करूं कि मेरे बच्चों की कोई जाति है और उनका कोई धर्म है, जबकि ऐसा कुछ भी नहीं है। आवेदन-पत्र पर "राष्ट्रीयता" वाले स्तंभ पर "भारतीय" लिखने से भी मैं हिचकता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे बच्चे विश्व-राज्य की संतान रहें, "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श के अनुसार वे समस्त पृथ्वी को अपनी मातृभूमि मानें।"

इस पर जिला शिक्षा अधिकारी ने यह तर्क दिया, "आंकड़े देने के लिए ही हमें आपसे जाति और धर्म की बातें करनी पड़ती हैं। यही नहीं, एक बात याद रखिए। पढ़ाई के बाद आगे चलकर सरकारी नौकरी आदि में लगते वक्त आपके बच्चों के लिए परेशानी पैदा हो सकती है। इसलिए मेरे ख्याल में आपका यह रुख उचित नहीं है।"

मैंने तब अपनी दलील पेश की, "अगर इसके पीछे उद्देश्य आंकड़े देना ही हो तो ऐसा क्यों नहीं करते? मौजूद ब्यौरे के साथ एक और कॉलम जोड़ा जाए, "जाति-धर्म रहित लोग" के नाम से। इस कॉलम के अंतर्गत हमारे बच्चों का उल्लेख किया जा सकता है। दूसरी बात यह है, मेरे बच्चों के भविष्य के बारे में आपको चिंता करने की जरूरत नहीं है। वे अपने भविष्य का निर्माण स्वयं कर लेंगे।" उन्हें यों समझाकर मैं लौट आया। उसके बाद कोई परेशानी नहीं हुई।

मित्र के तर्क में जो दृढ़ता थी, सत्य का पक्ष लेते हुए असत्य से लड़ने की जो आस्था थी, उसे देखकर मैं विस्मित रह गया। साथ ही अपने आप पर मुझे लानत भी महसूस हुई। मैं सोचने लगा, अपने बच्चों को स्कूल में भर्ती कराते समय मैंने भी इसी तरह का रुख क्यों नहीं अपनाया। मित्र से मेरी यह मुलाकात एक दिन सुबह के समय हुई थी। स्थान था : शहर मद्रास, मुहल्ला नुंगम्बाक्कम का लेक एरिया, गली नंबर पांच, मकान नंबर 22—मित्र का निवास-स्थान।

मित्र के सामने प्लास्टिक की सुराही-सी रखी थी। पान की पीक थूकने और जरूरत होने पर कुल्ला करने के लिए यह पीकदान का काम दे रही थी। मैंने यह भी नोट किया कि मुझसे बात करने से पहले उन्होंने इसका उपयोग किया।

मित्र का व्यक्तित्व शानदार था और उनके शालीन मुख-मंडल पर काली-घनी मूंछें सोह रही थीं। जब भी किसी गोरे चेहरे पर तगड़ी मूंछें देखता तो मुझे रसिकमणि की याद आ जाती।

कुल्ला करने से मूंछ पर लगी पानी की बूंदों को रूमाल से पोंछते हुए मित्र ने कहानी आगे बढ़ाई।

पहली दोनों लड़कियों को स्कूल में भर्ती कराते वक्त उनके नाम के आगे "बी.एस."

आद्यक्षर दिए - इनमें "बी" मेरे नाम का आद्यक्षर था और "एस" मेरी पत्नी सुगंधा के नाम का प्रथमाक्षर था। जब तीसरी बच्ची को स्कूल में डालने की बारी आई तो मैंने आद्यक्षर का क्रम उलटकर "एस.बी." लिखवाया। पत्नी का आद्यक्षर पहले देने के पीछे मेरी दलील थी कि बच्ची को नौ महीने पेट में पालने की वजह से उन्हीं का उस पर पहला हक बनता है।

तीसरी बच्ची को स्कूल में डालते समय उसके लिए नियत आवेदन-पत्र पर "अभिभावक/माता-पिता" वाले कॉलम पर पत्नी के हस्ताक्षर करवाए और मैंने बच्चे को उन्हीं के साथ स्कूल भेजा। वह नगरपालिका द्वारा संचालित बालिका विद्यालय था। फिर भी वहां की प्रधान अध्यापिका ने जोर दिया कि भर्ती के आवेदन-पत्र पर पिता के ही दस्तखत होने चाहिए, यही नहीं नियमानुसार पिता को चाहिए कि वे स्वयं आकर बच्ची का नाम लिखाएं।

मुझे इसके लिए भी एक आंदोलन चलाना पड़ा था। मैंने प्रधान अध्यापिका से पूछा, "स्वयं महिला होते हुए आप स्त्रीत्व की अवमानना क्यों कर रही हैं? महिला को दासी बनाकर उसकी प्रतिष्ठा को गिराना आपको शोभा नहीं देता।"

यह सही है कि हम इंसाफ के लिए लड़ रहे हैं और हमारा मकसद ऊंचा है, लेकिन फिर भी अनेक विद्यालयों की प्रबंध समितियां इस न्यायपूर्ण मांग को स्वीकार करने और उस पर अमल करने के लिए कतई तैयार नहीं होतीं। आज की स्थिति यही है। यह मेरे वकील मित्र का कथन था। "मानव अधिकार समिति" में वे अहम भूमिका निभा रहे हैं।

ऐसे महानुभाव का नाम जानने की उत्सुकता आपके अंदर भी जग रही होगी। है न?

उनका नाम है "पी.वी. भक्तवत्सलम, एम.ए.बी.एल.।"

जातियों पर चिंतन

"इतना उपाय करने पर भी, "झाड़ू देकर" निकालने पर भी जाति क्यों नहीं निकल रही है? उसमें ऐसी क्या बात है?"

"बात है और जरूर है। उसमें खास तरह का एक "सुखानुभव" है। व्यक्तिगत मतभेद होते हुए भी जिस तरह खानदानी रिश्ता संबंधित लोगों को आपस में जोड़ता है, उसी तरह "अपना जातभाई है", वाले ख्याल में एक "किक" होती है।"

"इस तरह के मेल-मिलाप की एक बुनियाद होती है। जिस तरह हमउम्र के साथी इकट्ठे होते हैं, शराबी लोग एक साथ मिलते हैं, विशेष प्रकार की रसिकता रखने वाले जिस प्रकार एकत्रित होते हैं, जैसे शाकाहारी लोगों की अपनी जमात होती है ... यों मिसाल देते हुए लक्ष्यों और कार्यों के लिए बनने वाली जातीय एकता बाद में एकदम पलट कर दूसरे वर्ग के लोगों को काटने-कुतरने के लिए कारण बन जाती है।"

"यह भी देखा गया है कि जात्याभिमान, वर्ग का गर्व, देशानुराग, लिंग का अभिमान आदि साधुओं और ज्ञानी महात्माओं पर भी सवार हुए हैं और उन्हें भी मनचाहे ढंग से नचाया है।"

ऊपर जो उद्धरण दिए गए हैं, वे हमारी मित्र-मंडली में हुए वार्तालाप का एक अंश हैं।

आइए, अब हम एक दूसरा दृश्य देखें :

महामहोपाध्याय डा. उ.वे. स्वामिनाथय्यरजी और रसिकमणि टी.के. चिदम्बरनाथ मुदलियारजी के बीच वार्तालाप हो रहा है। किसी प्रसंग में उ.वे. स्वामिनाथय्यर ने बताया:

"बातचीत के दौरान आदमी जिन शब्दों की प्रयुक्ति करता है उसी से उसकी जाति का पता लग जाता है।" यों अपना विचार प्रकट करने के बाद उ.वे.स्वामिनाथय्यर ने उसका एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

"उच्चवर्ण के लोग "भात" के लिए "चोरु" का प्रयोग नहीं करते। निम्न जाति के लोग ही इसका प्रयोग करते हैं। "चादम्" शब्द का प्रयोग करने पर झट वे लोग पहचान में आ जाते हैं, कि वे उच्च वर्ण के हैं।"

इस मानदंड को सुनकर रसिकमणि पहले हंसे और फिर अय्यर साहब से कहा, "ओह, ऐसी बात है ! अब हम इसी कसौटी पर एक कविता को कस कर देखेंगे" ऐसा कहकर

रसिकमणि ने एक कविता सुनाई :

"चोरु मणक्कुम् मठंगल् ऍल्लाम्
चुवण मणक्कुम् आडै ऍल्लाम्
नीरु मणक्कुम् नेट्रि ऍल्लाम्
नेय्ये मणक्कुम् करिकलेल्लाम् ...."
("मठ मंदिर से "चोरु" महकता
परिधानों में इत्र महकता
भाल देश में भस्म महकता
व्यंजनों में घृत है महकता ...")

रसिकमणि के मुंह से इस गीत का निकलना था कि अय्यर उठ खड़े हो गए, हाथ जोड़कर कान पकड़ते हुए बोलने लगे, "अपराध हो गया ... क्षमा चाहता हूं ... अपराध हो गया।"

इस गीत को सुनने पर स्वामिनाथय्यर के मुंह में क्यों इतनी घबराहट हुई? कारण यह है कि इस कविता के रचयिता स्वयं उनके पूजनीय गुरुदेव महाविद्वान मीनाक्षी सुन्दरम पिल्लै महोदय थे। (ग्रंथ का नाम, "चेक्किलार पिल्लैत्तमिल") (उ.वे. स्वामिनाथ अय्यर और रसिकमणि के बीच हुए यह वार्तालाप-प्रसंग भी एम अरुणाचल मुदालियार से मैंने सुना था।)

"शब्दों की प्रयुक्ति के आधार पर किसी की जाति का पता लगाया जा सकता है——" अय्यर जी के इस कथन में एक हद तक सच्चाई अवश्य है। लेकिन कला और साहित्य के जगत में यह लागू नहीं होता।

जनक महाराज से महाराज दशरथ के नाम संदेश आ रहा था, वह ताड़पत्र में लिखित संदेश था। महाराज दशरथ आज्ञा देते हैं कि पत्र लाने वाले दूतों को सादर सभा में लाया जाए।

"कूरिय दूतरुम्, कोणन्द ओलैयै
ईरिल् वण् पुगषिनाय् ! इदु अदेन्रनर्,
वेरोरु पुलमगन् विरुम्बि वांगिनान्,
मारदिर् कष़लिनान् वाशि ऍन्रनन् ..."

(एष़ुच्चि पडलम्, कम्ब रामायणम्-बालकाण्डम्)

यों बखानि नृप सन्निधि में
किया निवेदन दूतों ने : "राजाधिराज !
दिग्दिगंत में व्याप्त है तव धवल यश
सुनिएगा यही है संदेश महाराज का

शुभ मंगल लगन का।"
दूत हस्त से ग्रहण किया ताड़पत्र अमात्य ने
निज हस्तचालन से दमकाते निज वीरशृंखला
आदेश दिया दशरथ ने : "बांचो सुनेंगे हम।"

ताड़पत्र हाथ में लेने वाले अमात्य को देखकर दशरथ ने ऐसा नहीं कहा, "उसे पढ़ो, सुनेंगे हम", वरन् उन्होंने कहा था, "उसे बांचो, सुनेंगे हम।" महाकवि कम्बन का यह शब्द-चित्र है।

इससे स्पष्ट है कि कवि-सार्वभौम के नाम से विख्यात महाकवि कम्बन ने जनसाधारण के मध्य में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हुए साहित्य-रचना की है।

पति-पत्नी की उम्र में फर्क कितना हो?

1

"शेक्सपीयर से उनकी बीवी नौ साल बड़ी थी" एक मित्र ने कहा। वे इस बात को बड़े इत्मीनान के साथ, इस अंदाज से कह रहे थे मानो उस दंपत्ति के साथ रहकर इस तथ्य को स्वयं देखा-परखा हो। दोस्त की बात बिना मैंने किसी प्रतिवाद के मान ली। (मानना ही होगा, तभी तो अपनी ओर से हम भी कोई गप्प उड़ा सकते हैं।) फिर मैंने भी अपना तीर छोड़ा, "क्या आप को पता है, महाकवि कम्बन से उनकी पत्नी दस साल बड़ी थी?"

"ऐं ...?" सारे के सारे दोस्त हैरान हो गए।

"क्यों, ऐसा नहीं हो सकता क्या?" मैंने प्रश्न उठाया। लेकिन साथ ही मेरी हंसी फूट पड़ी।

"ऐसी बातों को लेकर गप्पें नहीं हांकनी चाहिए, सम्मान्य व्यक्तियों के बारे में झूठी अफवाह उड़ाना गलत बात है" मित्र अलगिरि सामी ने हमें टोक दिया।

"मर्द की बनिस्बत उसकी बीवी की उम्र कम हो क्या यह लाजमी है?" एक दोस्त ने सवाल उठाया।

इसका उत्तर देने लगे हमारे साथी पी.एस.।

धोबी घाट के पुल पर हम लोग अक्सर शाम के समय में बैठकर इसी तरह गपशप किया करते थे—वक्त गुजारने के लिए। पी.एस. का सत्संग हमें कभी कभार ही मिलता जब वे अपने गांव से आते थे। उनमें ज्यादा बोलने की आदत नहीं थी। हमारे बीच में बैठे चुपचाप सुनते रहते थे। उनकी मुद्रा से यह तय करना मुश्किल होता था कि वे हमारी बातों पर ध्यान दे रहे हैं या नहीं। कभी लगता कि उनका ध्यान और कहीं है, कभी तो ऐसा लगता कि वे हमारी बातों पर गौर फरमा रहे हैं। जब वे बोलना शुरू करते तो बहुत धीमी आवाज में प्रारंभ करते। व्यक्तियों और घटनाओं को देखने का उनका नजरिया, उन पर चिंतन करने का विचार करके और बयान करने का ढंग—यह सभी हमारे लिए एकदम नवीन और कौतूहलवर्धक लगता, साथ ही हमारे चिंतन-मनन की खुराक भी बनता। वस्तुतया ये सभी बातें चालीस-पैंतालीस साल पहले उनके मुंह से सुनी हुई हैं। इतने समय का अंतराल होने के बावजूद इन बातों को आज भी मैं ज्यों-की-त्यों आपको सुना नहीं सकता। गांव

का माहौल ही कुछ ऐसा है। बैठे-बैठे बेकार की बला क्यों मोल ली जाए? इसलिए इन बातों को अपने सांचे में ढालकर आपको सुना रहा हूं।

अपने मन चाहे साथी के साथ मिलकर रहना या उससे शादी कर लेना अपनी अपनी पसंद की बात है। ऐसे मामलों में अक्सर स्त्री-पुरुष की उम्र में फर्क होता ही है। मां-बाप के इंतजाम पर होने वाली शादियों में ही बिना अपवाद के हम देख सकते हैं कि औरत की अपेक्षा मर्द की उम्र ज्यादा होती है।

इसका एक विशेष कारण भी है। एक निश्चित उम्र के बाद शरीर के अंदर ऐसी कुछ रासायनिक प्रक्रिया उत्पन्न हो जाती है कि औरत अपने मर्द के संग उस तरह नहीं रह सकती जैसे कि पहले रहा करती थी। इस संदर्भ में जाने-माने साहित्यकार पुदुमैपित्तन की उक्ति मुझे सटीक जंचती है। उन्होंने एक बार कहा था, "एक निश्चित वय के बाद पत्नी जो है अपने पति के लिए छठी उंगली बन जाती है।"

बहुत दिन पहले की बात है। हमारे गांव में अकसर एक व्यापारी आया करते थे जो गाय-भैंसों की खरीद-फरोख्त में दलाली करते थे। उनका नाम था—"छह उंगली आरुमुगम चेट्टियार।" पूजा की घंटी से लटकती जीभ की तरह उनकी छठी उंगली अलग से लटक रही होती थी। उस पर नाखून भी होता था। पर वह उंगली महज गिनती के लिए होती थी, वरना वह उनके किसी काम की नहीं थी।

पूशारी कवुंटर के दो पत्नियां थीं, फिर भी उनसे उन्हें कोई फायदा नहीं था। दोनों ही बीवियां दोनों हाथों की "छठी उंगलियां" बन गईं। उनसे प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तो जाने दो, पर क्या यह भी जरूरी था कि दोनों की दोनों उनकी जानी दुश्मन बन जाएं? लगता है, भगवान अपने भक्त की कड़ी परीक्षा लिया करते हैं।

जब पूशारी कवुंटर विवाह करके दोनों को घर लाए थे, उन दिनों वे बड़े मस्त और निश्चिंत रहा करते थे। झगड़ा या कलह जो भी हो, उन दोनों के बीच में ही मचता रहता था। अब तो कहानी उल्टी हो गई। पहले दोनों कुतियों की तरह गुर्राती थीं, अब "नाखून और गोश्त" की तरह एक दूसरे से लिपटी रहती हैं, दोनों के लिए अब पूशारी कवुंटर फूटी आंखों नहीं सुहाते। बीवियों की गुहार है, "हाय रे हाय ! बूढ़ा हो चला है, पर वासना अभी नहीं थमी है।" उनके खिलाफ दोनों ने सम्मिलित मोर्चा-सा बना लिया है।

गांव के लोगों की टिप्पणी है, "क्यों न हो? गुड़ और घी के साथ मीठा चावल खाते हैं न? उसकी चर्बी है।" पूशारी कवुंटर को क्यों बेकार दोष दें? कहने वाले ये लोग भी तो घी खाते हैं, खूब माल उड़ाते हैं। ऐसा देखा जाए तो पूशारी कवुंटर को कोई बड़ा खाऊ नहीं कह सकते। अगर सब लोग तीन बार भोजन करते हैं तो कवुंटर दो ही बार खाते हैं। एक सूक्ति है :

"तीन बार खाए सो रोगी
दो बार खाए सो भोगी
एक बार खाए सो योगी"

इस पर वे लोग दलील पेश करते हैं, "आप नहीं जानते, कवुंटर जो हैं तीन बार का खाना दो ही बार में खींच लेते हैं।" रात में भूखा नहीं सोना चाहिए, केवल इसी उद्देश्य से रात में खजूर के साथ (खूब औटा हुआ) दूध पी लेते थे, बस।

बेचारे पूशारी कवुंटर ! दूसरे मर्दों की तरह बेलगाम होकर गलत रास्ते पर चलने वाले नहीं हैं वे। इसलिए उन्होंने दूसरी शादी कर ली थी। पहली पत्नी जब गर्भवती हुई, छठा महीना पूरा होते ही "पुंसवन-सीमंत" संस्कार के बाद लोग उसे मायके ले गए। बच्चा होने में अभी तीन महीने बाकी थे। यह भी आशा नहीं थी बच्चा होने के बाद भी सातवें महीने से पहले मायके वाले उसे वापस पहुंचाएं। अंतराल की यह लंबी अवधि पूशारी कवुंटर के सब्र की परीक्षा सिद्ध हुई, यही सच्ची बात है। कुछ लोगों की तरह वे "अट्रम सट्रम" माल के पीछे जाने वाली प्रकृति के नहीं हैं।

सब्र करके देखा, किंतु उनसे रहा नहीं गया। सो झट जाकर एक लड़की देख आए और फट उससे शादी कर ली। नववधू को घर ले आए। यह तो अपनी मर्जी और खुशी की बात है, इसके लिए किससे पूछना है? उस जमाने में मर्द के लिए अपनी इच्छानुसार दूसरी शादी करने की पूरी छूट थी फिर दूसरी पत्नी के "पुंसवन-संस्कार" के बाद जब वह भी मायके चली गई, तभी पहली पत्नी प्रसव के बाद वापस आ गई। (यह बिलकुल संयोग की बात थी।) शरीर और मन के मामलों में पूशारी कवुंटर बड़े यथार्थवादी हैं। जैसे कि अन्यान्य लोग कहते हैं, मन पर नियंत्रण करना, अस्थाई रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन इत्यादि पर उनका कोई विश्वास नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि यह सब उनके बस की बात नहीं है।

"एक जाए, दूसरी आए" वाला सिलसिला हमेशा एक-सरीखा गणितीय क्रम से कब तक चलता? आखिर सभी एक ही घर के सदस्य हैं, वहीं सबको निभाना होता है। ऐसे मौकों पर पूशारी कवुंटर का हाल बड़ा नाजुक हो जाता। "दुइ पाटन के बीच में" फंस जाते। पर वे गजब किस्म की तबीयत के ठहरे। कुछ भी हो जाए, हिम्मत नहीं हारते। "दोनों गधियां आपस में दुलत्ती मार लें, हमारी बला से।" इस तरह सोचकर वे निश्चिंत रहा करते। उन्हें अपने काम से काम रहता था। इस दृष्टि से उनका हरेक काम बिना किसी रुकावट के आज तक बखूबी चला आ रहा था। पहली "दुलत्ती" देने वाली बड़ी बीवी थी। इसमें कोई अजीब बात भी नहीं है। यह कहावत सार्थक है, "एकादशी व्रत का दोसा और दूसरी बीवी पर आस दोनों ही स्वादिष्ट होते हैं।"

"दूसरी बीवी पर आस" वाली इस बात की व्याख्या करने के लिए पूरा एक अध्याय

लिखने पर भी इस जमाने के लोगों को वह बात ठीक तरह समझ में नहीं आएगी। क्योंकि दूसरी पत्नी और तीसरी पत्नी करने की परंपरा को बंद हुए लगभग दो पीढ़ियां समाप्त हुई जा रही हैं। राजा उत्तानपाद अपनी दूसरी रानी सुरुचि पर जान देते थे और महाराज दशरथ अपनी कनिष्ठ रानी कैकेयी पर मरते थे आदि आदि बातें कथा-प्रवचनों में सुनकर थोड़ी-बहुत समझी जा सकती हैं। इंसान अगर ऐशोआराम की तलब करता है तो उसे पाने के लिए ऊंचा दाम अदा करना ही पड़ता है। कष्ट उठाए बिना सुख की प्राप्ति नहीं होती। सुख-भोग हमेशा महंगा होता है, सस्ते दाम पर नहीं मिलता। फिर सुख-भोग के साथ, उसके पार्श्व-प्रभाव और पश्च-प्रभाव भी अवश्य आते हैं उन्हें भी भोगना ही होगा। बचना संभव नहीं है। एक प्रश्न उठता है पूशारी कवुंटर ने क्यों तीसरी शादी नहीं की थी ...? वे तीसरी जोरु भी कर सकते थे। लेकिन किसी अज्ञात भय ने उन्हें धमकी दी थी। कायाकल्प नामक औषध का नाम उन्होंने सुन रखा था, पर उसे खाने का मौका नहीं मिला। फिर पता नहीं, वह बला कहां मिलती है। इधर उम्र बढ़ती जा रही थी।

चक्रवती पुरुरवा की कामवासना थम नहीं पा रही थी। जीवन-भर वह उसी काम के पीछे लगा था। उसके अंतःपुर में कुलबुल करती रहती थीं खूबसूरत परियां, विश्व-सुंदरियां, देश-विदेश की। सुदीर्घ यौवन पाने के लिए पता है उसने क्या किया?

2

चक्रवती पुरुरवा को रतिसुख भोगने के लिए एक जन्म पर्याप्त नहीं हुआ। उसके अनगिनत बेटे थे। पुरुरवा ने सबको अपने पास बुलाया। फिर अपनी लाज तज कर उनसे बोला, "मैं अब वृद्ध हो चला हूं। फिर भी विषयेच्छा को छोड़ नहीं पाता। मैं चाहता हूं इस पिता की दशा पर तरस खाकर मेरा कोई बेटा मेरे लिए अपनी जवानी दे दे। जो भी बेटा ऐसा त्याग करेगा उसे मैं इसी क्षण अपना यह राजपाट सौंप दूंगा। राजकाज संभालते हुए विषय-सुख को पूर्ण रूप से भोग नहीं पाया। पूरी एक पीढ़ी की अवधि तक मैं केवल रति-सुख में सराबोर डूबा रहना चाहता हूं और उसे पूरी तरह से भोग कर अपनी कामेच्छा समाप्त कर देना चाहता हूं। मेरे प्रिय कुमारों, इस विषय में तुम लोग मेरी सहायता करो।" महाराज ने अपने बेटों से यों साग्रह अनुरोध किया।

राजकुमारों की ओर से विद्रूप की हंसी फूट पड़ी। सब के सब चुपके से उठकर चले गए। लेकिन उनमें एक राजकुमार उदारमना निकला। उसने कहा, "पिताजी, यह मेरी जवानी ले लीजिए।" अपने इस पुत्र पर महाराज फूला न समाया। पुरुरवा ने उसी क्षण उस राजकुमार का राज्याभिषेक कराया और स्वयं अंतःपुर पहुंच गया। नई ताजी जवानी के साथ महाराज फिर एक बार रति-सुख भोगने लगा। फिर से बूढ़ा होने तक सुख भोग में लिप्त रहा। महर्षि

व्यास कहते हैं कि तब भी उसकी कामवासना तृप्त नहीं हुई।

कुदरत ने केवल इस विषय में शारीरिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष के लिए अलग अलग हिसाब बनाया है, दोनों की शारीरिक प्रकृति और व्यवहार में अंतर जो कर दिया है, उचित ही किया है। वरना अगर औरत भी आदमी की तरह हाथ धोकर इसी सुख के पीछे पड़ जाए तो उसका परिणाम भयावह हो सकता है। कितनी सारी पारिवारिक जिम्मेदारियां हैं स्त्री के पास ! मैं ऐसे कुछ समर्थ पुरुषों को जानता हूं जिन्होंने साठ साल की उम्र के बाद, फिर से शादी करके बाल-बच्चे पैदा किए हैं। आपकी जानकारी में भी ऐसे दो-एक भाग्यवान जरूर होंगे। इस उम्र में नवयौवना को काबू में रखना कोई हंसी-ठट्टा नहीं है।

पूशारी कवुंटर तीसरी शादी भी कर सकते थे, कोई पूछने वाला नहीं था। फिर भी न जाने क्यों उनके मन में हिचक सी हो रही थी, कोई अनजान भय उन पर हावी हो गया था। गांव की जनता के बीच में प्रचलित कहावत उन्होंने भी जरूर सुन रखी होगी :

बीस में बीवी
चालीस में बारी
साठ में चोरी

मतलब यह है कि मर्द अगर बीस साल की उम्र में शादी कर ले तो बीवी पर उसका पूरा हक होता है। चालीस साल में विवाह हो तो आधी बीवी उसकी होती है। साठ में कर लिया तो बीवी पर उसका हक नहीं के बराबर होता है। पूशारी कवुंटर की दोनों बीवियों ने मोर्चा बनाकर चेतावनी दी, "देखोजी, घर में अब नाती-पोते हो गए हैं। सीधे ढंग से रहो ... आओ, खाना खाओ, उठके चले जाओ, दूसरे सारे ख्याल दिल से निकाल दो।"

बेचारे कवुंटर प्रलाप करते, "दोनों औरतें एक साथ मिलकर मुझे सता रही हैं हाय।" उनका बिस्तर भी घर से उठ गया, निद्रा उनकी अब कृष्ण मंदिर में है।

रात्रि-भोजन के लिए खजूर, चिउड़ा और दूध आदि भी कृष्ण मंदिर पहुंच जाता था। यह सारा प्रबंध इसलिए होता था कि सांझ के बाद वे घर के अंदर कदम तक न रखें। मंदिर में देर रात तक उन्हें नींद नहीं आती। पैरों पर घुंघरू बांध लेते और हाथ में इकतारा लेकर कृष्णगान में रमते, गाते हुए नाचते, तब तक नाचते रहते जब तक कि शरीर थककर चूर चूर न हो जाए।

पी.एस. ने पूशारी कवुंटर का ऐसा शब्द-चित्र खींचा कि कवुंटर की दशा के बारे में सोच सोचकर हम लोगों के मन में उनके प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ी। श्रोताओं में से राज मिस्त्री रामसामी नायकर बोले।

"जब माहवारी बंद हो जाती हैं, वह औरत नहीं रहती है जो, डायन होती है डायन, हां।"

"यह कैसे कहते हैं। आप? पूशारी कवुंटर जैसे मर्दों के विषय में शायद यह बात

सही हो सकती है। यह टिप्पणी सब के विषय में उचित नहीं है", चीनी नायकर ने प्रतिवाद किया।

राज मिस्त्री नायकर झुंझला कर बोले, "जीवन क्या है, बड़ी भारी छलना है। आंखों के सामने जो हरी-भरी बगिया लहलहा रही थी, आज समय के फेर से वही सूखा जंगल बन गया। यह दुर्दशा कितनी भयावह है !"

नारी रूपी बगिया जो फूलों से महक रही थी जिसमें सुख और संतान के फल लगे थे आज सूखकर मरुभूमि बन गई है, इसे देखते हुए मन में खिन्नता का होना स्वाभाविक है। पी.एस. कहानी के उपसंहार वाले भाग पर आ रहे थे। कहने लगे, "शरीर में चलने वाली रासायनिक क्रिया ही आगे चलकर मानव के स्वभाव के रूप में प्रकट होती है।" पूशारी कवुंटर के रंग-ढंग में एक बदलाव नजर आया। फिर उनका घर आना-जाना बंद-सा हो गया। भोजन-पानी सब कृष्ण मंदिर पहुंच जाता वहां वे आसन जमा कर बैठे होते। अब वे दाढ़ी बढ़ाने लगे। धोती और अंगोछा छोड़कर साधुओं की तरह लंबा चोगा पहनने लगे। उत्तर में ऋषिकेश जाकर संन्यास लेने की अभिलाषा उठ रही थी उनके मन में। लेकिन उससे पहले दक्षिण में स्थित 108 धामों की यात्रा पूरी करना चाहते थे।

एक दिन अचानक पूशारी कवुंटर ने घोषणा कर दी, "काशी-यात्रा पर निकल रहा हूं।" सारा गांव उनकी विदाई में एकत्रित हो गया। उस दिन कोई भी काम पर नहीं गया। हिमालय में जाकर कठोर तपस्या करने के लिए कृतसंकल्प पर दृढ़वती महापुरुष का उस दिन बस्ती की हर गली में जुलूस निकाला गया। प्रत्येक घर के द्वार पर उनको आसन पर खड़ा करके उनके पैर धोए गए। पाद-प्रक्षालन करने वाले गृहस्थों और इस पावन अनुष्ठान के दर्शकों के नयनों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। ग्राम-वीथियों में जब उन्हें सादर घुमाया गया, उस समय कुछ लोगों ने आकाश में दो गरुड़ पक्षियों (बाज) को चक्कर काटते हुए देखा था।

घर घर में तख्त बिछाकर पैर धोने वालों ने उन चरणों पर दक्षिणा भी चढ़ाई। धन का अंबार-सा लग गया। चोगा सीते हुए दर्जी ने अपनी ओर से अंदर एक और जेब बनाई थी। पूशारी कवुंटर ने उससे पूछा भी था, "संन्यासी के लिए इन सब की क्या जरूरत है?" अब वह काम दे रही थी। मित्र और बंधुजन उनके साथ कम से कम कोविलपट्टी तक जाकर उन्हें विदा करना चाहते थे। लेकिन उस बैरागी ने निर्ममता के साथ सबको वहीं गांव में रोक दिया, "खबरदार, मेरे पीछे एक चिड़िया तक न आए।" उसके बाद कई दिन तक गांव के प्रत्येक व्यक्ति की जबान पर पूशारी कवुंटर की कहानी चढ़ी हुई थी।

एक दिन आदिलिंगम पिल्लै नंबरदार नायकर के मकान में पहुंचे। उनकी मुद्रा कुछ ऐसी थी मानो उनके पास कोई महत्वपूर्ण सूचना है नंबरदार को सुनाने के लिए। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात करने के बाद आदिलिंगम पिल्लै ने सावधान होकर चारों ओर

दृष्टि डाली। फिर धीमे स्वर में शुरू किया, "सुना आपने ...."। नंबरदार नायक जरा ऊंचा सुनते थे। कानों के नीचे हाथ धरते हुए उन्होंने कान ऊंचे करके ध्यान दिया, "सुनते हैं, पूशारी कवुंटर यहीं तिरुनेलवेली में हैं। लोग दावे के साथ कहते हैं, उनको माड वीथी में देखा है ...."

समाचार को ग्रहण करने के बाद नंबरदार नायकर ने आराम-कुर्सी पर अपनी पीठ सटा ली और बिना आवाज किए जोर से हंसे, मूक हंसी, उनके नथुने फड़क रहे थे और बदन भी हिल रहा था। फिर आदिलिंगम पिल्लै को एक बार ऊपर से नीचे तक घूरकर देखा और न जाने किस विचार में खो गए। पिल्लै जी का सारा मजा किरकिरा हो गया। शायद वे अपने आपको कोस रहे थे, मैंने यह खबर इस बहरे को क्यों सुनाई? उन्होंने यही बात अम्बलकार कवुंटर को सुनाई। उनकी प्रतिक्रिया भी अजीब थी। मुंह बनाते हुए उन्होंने उल्टे पिल्लै से जिरह करनी शुरू कर दी, "किसने बताया? कब देखा? किसने देखा?" पिल्लै जी तंग आ गए, पछतावा होने लगा बेकार के गोरखधंधे में फंस गए। उन्हें लोगों पर तरस आया, कैसे लोग हैं ये? कोई बात सुनने पर उसका मजा लेना भी नहीं आता।

चार दिन बाद दलाल वेंकण्णा ने भी यही खबर सुनाई।

"माड वीथी के एक घर में से पूशारी कवुंटर बाहर निकल रहे थे। मैंने अपनी इन्हीं आंखों से देखा" जोर देकर कहा वेंकण्णा ने।

"क्या उन्होंने भी तुम्हें देखा?"

"नहीं उन्होंने मुझे नहीं देखा, मैंने उन्हें देखा।"

"ठीक है, ठीक है, कौन-सी बड़ी बात हो गई तूल देने को। बात का बतंगड़ मत बनाओ। जाओ अपना काम-धंधा देखो", गांव के बुजुर्गों ने उसे बुरी तरह लताड़ दिया। बुजुर्गों को इस पर कोई रस नहीं आ रहा था, बल्कि उनके मन में यह ऐसी लचर बात थी जिसे कहते-सुनते भी लोगों को शर्म आनी चाहिए। आदिलिंगम पिल्लै ने उन्हें सांत्वना दी, "यह कोई ऐसी बुरी बात नहीं है। संन्यास लेने से पहले एक बारगी पूरे दम से ख़ .... ब भोग लेने की इच्छा मन में उठ जाए, यह सहज बात ही है।"

कहानी सुनकर हम हंसते हंसते लोट पोट हो गए।

बात कहां शुरू हुई और न जाने कहां कहां से घूम कर कहां आकर रुकी। जब हम लोग उस मुद्दे पर आए जहां से बात शुरू हुई थी, पी.एस. ने अपनी राय बताई, "उम्र में फर्क होना लाजमी है।" पी.एस. के अनुसार हमारे पूर्वजों के अनुभव-ज्ञान ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रेरित किया होगा। उसके बाद इस बात पर बहस छिड़ गई कि अगर उम्र में फर्क होना लाजमी है तो कितने वर्ष का अंतर उचित माना जाए?

गरमागरम बहस के बाद मित्रों के बीच में इसी मापदंड पर मतैक्य हो पाया, "दोनों के बीच उम्र का फर्क इतना हो कि अंत में चलकर औरत के लिए "महावारी बंद होने"

की उम्र आए तो मर्द की उम्र "थमने की" हो।

शरीर की प्रकृति और गठन, खान-पान की सुविधा आदि को मद्देनजर रखते हुए देखने पर उम्र का सही निर्धारण करना कठिन लग रहा था।

पी.एस. ने यह भरत-वाक्य जोड़ा, "मन नाम की चीज भी है। उसको भी गणना में लेना चाहिए।"

कषुगुमलै तो है, कषुमरम (सूली) नदारद ...

धन के आकार (+) में कोई चीज जमीन पर गड़ी हुई मिले तो समझना चाहिए कि उससे किसी जान को खतरा है। इस चीज को मैंने पहले पहल हमारे गांव के पार्वती अम्मन (देवी) मंदिर में पोंगल उत्सव के अवसर पर देखा था। उस समय मैं बहुत छोटा था। उस धनाकार (+) प्रतीक की ऊंचाई पूरे एक हाथ की रही होगी और आड़े (चौड़ाई वाले भाग) में बालिश्त भर होगा। इस प्रकार जमीन पर गड़ी उस आकृति की नोक पर एक जिंदा मुर्गा चढ़ाया हुआ था।

उस मंदिर के पुजारी का पोता मेरा सहपाठी था, मेरी ही कक्षा में पढ़ता था। उस मुर्गे को छूने की इच्छा से मैं उसके पास गया। मेरे दोस्त ने आगे बढ़कर मुझे टोका और बताया, "ना बाबा ना, देवता के नाम बलि चढ़ाए पंछी को छूना नहीं, पाप लगेगा।" मैंने तब उससे पूछा, "क्यों रे, मुर्गे को धंसा गया है न ! इस चीज का क्या नाम है? उसने बताया, "यही कषुमरम (सूली) है।" मैं सोचने लगा "मरम" पेड़ होता है, अगर यह कमरम हो तो बड़ा होना चाहिए। उस समय तो समझ में नहीं आया। अब सोचने पर लगता है कि लकड़ी का बना होने के कारण संभवतया यह "कषुमरम" कहलाया। लेकिन जिस आकार में पहले पहल मैंने "कषुमरम" देखा था, उसे "क्षुचेडि" कहना उपयुक्त होगा (चेडि, अर्थात् पौधा)।

आगे चलकर मैंने जिस "कषुमरम" के बारे में सुना उसमें मुर्गे को नहीं, बल्कि आदमी को चढ़ाया जाता था। अगर वह इस तरह छोटी आकृति का होता तो काम कैसे चल सका होगा?

मेरी कल्पना में "कषुमरम" (सूली) ने तब रूप लिया था जब मैंने बचपन में सती नलायनी की कथा सुनी थी। किसी असाध्य और घिनौने रोग से पीड़ित अपने पति को टोकरे में रखकर अपने सिर पर उठाए हुए नलायनी जिस पगडंडी से होकर जा रही थी। उस तंग रास्ते के किनारे सूली पर चढ़े किसी मुनि से वह टोकरा टकरा जाता है। एक तो सूली पर चढ़े थे, ऊपर से ठोकर खाने से मुनि का दर्द बेहद बढ़ जाता है। वे नलायनी को श्राप देते हैं, "टूट जाए तुम्हारा मंगलसूत्र (अर्थात तुम्हारा सुहाग नष्ट हो जाए)... ।" हमारे गांव में "कषुवन् तिरडु" (सूली का मैदान) नामक एक बड़ा-सा मैदान है। कहते हैं, पहले इस मैदान पर बहुत सारी सूलियां लगी थीं। हत्या के अपराधियों को दंडित करने के लिए आजकल फांसी का तख्ता बना हुआ है, उसी तरह पहले "कषुमरम" होता था।

उस जमाने के राजाओं ने मृत्युदंड के तरीके ईजाद किए थे, जन-कल्याण (!) के लिए। दायां हाथ—बायां पैर अथवा बायां हाथ—दायां पैर कटवाना, "शिरच्छेद" अर्थात मुंड को साफ उड़वा देना, हाथी के पैरों तले कुचलवाना, चूने की भट्ठी में डलवाना इत्यादि विभिन्न प्रकार से मृत्युदंड देकर उस यंत्रणा को देखा भी है।

हमारे गांव में "कवन तिरडु" आखिरकार जिसे सूली पर चढ़ाया गया था, उसके बारे में भी लोगों से मैंने कहानी सुनी है। किसी राजा ने उसे यह दंड नहीं दिया था, असल में गांव की जनता ने यह सजा दी थी।

अपने उपन्यास "गोपल्ल ग्रामम" में मैंने सूली पर चढ़ाने के उपर्युक्त दंड के बारे में लिखा है। उसे लिखने से पहले खुद उसके बारे में अध्ययन करना चाहा। अब तो नमूने के लिए भी कोई "कषुमरम" (सूली) नहीं मिलेगा। बचपन में गांव के बूढ़ों से "कषुमरम" का जो वर्णन सुना था "गोपल्ल ग्रामम" में मैंने ज्यों का त्यों इस वर्णन का उपयोग किया है। जब मैं उसे लिख रहा था, बीच में उसे छोड़कर कोविलपट्टी की ओर भागा। जिला पुस्तकालय में जाकर पुस्तकपाल नम्बि जी से मिलकर तमिल विश्वकोश का संबंधित भाग दिलाने का अनुरोध किया जिसमें "क" वर्ण से शुरू होने वाले शब्दों का इंदराज था। मैं वहां बेवक्त पहुंचा था—पुस्तकालय बंद होने का समय हो रहा था। फिर भी नम्बि जी ने तत्परता से मेरी मदद की।

मैं विश्वकोश में "कषुमरम" शब्द ढूंढ़ने लगा। पन्ना पलटते हुए मेरे मन में यही आशा उठ रही थी कि "कमरम" के बारे में दो-चार अच्छे चित्रों के साथ कोई प्रामाणिक विवरण अभी मिलेगा। क्यों नहीं मिलेगा? सुना है, हमारे शिल्पियों ने सूली पर चढ़ाने का दृश्य पत्थर पर तराश कर रखा है। मैंने यह भी सुना है कि कहीं कहीं हमारे मंदिर के उत्सवों में सूली चढ़ाने के प्रसंग का अभिनय भी होता है।

इसी उम्मीद के साथ मैं पन्ने पलटता गया। लेकिन अत्यंत परिश्रमपूर्वक विश्वकोश तैयार करने वाले विद्वान संपादकों ने हमें घोर निराशा प्रदान की। "कषुगुमलै" (तिरुनेलवेली जिले में एक स्थान का नाम) तो मिल गया, पर "कषुमरम" (सूली) नदारद !

"कषुमरम" कैसे छूट गया? तमिल और कमरम का नाता अटूट है न ? श्रमणों को सूली पर जो चढ़ाया गया, क्या वह यों ही तमाशे के लिए किया गया था?

मन में इतना अमर्ष और आक्रोश उठा हुआ था कि जब तक चार जनों के सामने उसे प्रकट न करूं, मन का वह बोझ उतर नहीं सकता था। सो, अपने सामने से गुजरने वाले मित्रों को खड़ा करके जोश-खरोश के साथ मैंने यह मसला उनके सामने रखा। (पर हाय, किसी ने इस पर जरा भी दिलचस्पी नहीं दिखाई।) एक मित्र को राशन लाने की जल्दी थी, उनके हाथ में राशन-कार्ड था। छूटे हुए इंदराज के बारे में इनके सामने लेक्चर झाड़ने से क्या फायदा होने वाला है? अगले संस्करण में उसे जोड़ा जा सकता है। अब उसमें

मुद्रित अन्य विषयों पर जरा विचार करें।

1984 में प्रकाशित "विश्व विज्ञान कोश" की नमूने की एक प्रति मेरे अवलोकन के लिए भेजी गई थी। (विश्वकोश केंद्र, तमिल विश्वविद्यालय, 37 रामन स्ट्रीट, मद्रास-17 से।) उसमें एक पृष्ठ पर सारस पक्षी के बारे में विवरण देने के साथ साथ सामने उस पक्षी का श्वेत-श्याम (ब्लैक एंड व्हाइट) चित्र दिया गया था। इस पर पंछी का जो ब्यौरा था उसमें उसके शरीर की रंग-बिरंगी छटा का तथा उसके चोंच के चमकीले रंग का आकर्षक वर्णन था। मन में यही आ रहा था, वर्णन के अनुसार चित्र भी कुदरती रंग में दिया होता तो बेहतर रहता। "समुद्र की गहराई में जीने वाले प्राणियों" को—वर्णन के अनुसार सुनहली और चमकीली मछलियों को—श्वेत-श्याम छपाई में देखते समय भी मन में यही अफसोस हुआ था।

1981 में मलयालम भाषा में सामान्य ज्ञान विषय पर एक अंग्रेजी-मलयालम सचित्र कोश प्रकाशित हुआ था। इसकी एक प्रति मेरे लिए ले आए थे शिवकाशी में रहने वाले मेरे अजीज दोस्त एन. मारियप्पन। मुझे न मलयालम आती है न अंग्रेजी। यह बात मेरे मित्र को मालूम है।

मैंने इस सामान्य ज्ञान कोश को उलट-पुलट कर देखा। हर पृष्ठ पर वस्तुओं और जानवरों के बारे में विवरण के साथ बहुत ही बेहतरीन चित्र उनके कुदरती रंग में छपे थे मानों हमसे बोल रहे हों, इन्हें देखकर मेरे अंदर बच्चों का-सा कौतूहल जग गया। यह किताब बहुत दूर कहीं लंदन या मास्को से निकली हो, ऐसी बात नहों है। यहीं नजदीकी शहर शिवकाशी में छपकर निकली है। मेरी मेज पर तमिल विश्वविद्यालय से प्रकाशित विज्ञान विषयक विश्वकोश और सामाजिक विज्ञान कोश ग्रंथ खुले पड़े थे...। क्या बताऊं, छपाई और साज-सज्जा में मलयालम पुस्तक के सामने खड़े होने की लियाकत नहीं थी।

विश्वविद्यालय प्रकाशन के समाज-विज्ञान खंड में "चल्लि कट्टु (तमिलनाडु का लोकप्रिय वीरतापूर्ण खेल-कूद जिसमें बलिष्ठ नौजवानों के बीच में उच्छृंखल बैल पर काबू पाने की प्रतियोगिता होती है) को दिखाने के लिए एक चित्र बनाया गया है। अपने प्राध्यापकों की अद्भुत सूझ की दाद देनी पड़ेगी, जानवर-बैल पर इंसान-बैल हावी हो रहा है और वह नौजवान बाकायदा अपनी कमीज और लिबास में लैस है और आंखों में काला (!) चश्मा भी पहने है, यही नहीं पैर में जूते हैं ... इन सबसे मजेदार बात यह है कि उधर बैल की नाक पर नकेल है।

इस तरह प्रतिभा, परिश्रम और सूझबूझ के साथ हमारे विशिष्ट विद्वान अनेकानेक "विश्व विज्ञान कोश" लाखों रुपयों की लागत से तैयार करके भावी पीढ़ी को प्रदान कर रहे हैं।

अण्णाच्ची

1

"कंदसामि चेट्टियार अण्णाच्ची"
"कवि क.व. कंदसामि चेट्टियार"
"करडिकुलम कंदसामि"
"मित्र कंदसामि चेट्टियार जी"
इनमें से कोई भी नाम लें, इनसे अभिहित व्यक्ति हमारे अण्णाच्ची ही हैं।

याद नहीं आ रहा, उनसे पहली मुलाकात कब हुई थी। कु. अलगिरि सामि ने ही मुझे उनसे परिचित कराया था। उन दिनों वह कोविलपट्टी के ए.वी. स्कूल में पढ़ रहा था। छुट्टियों पर जब भी यहां इडैचेवल आता, अण्णाच्ची के बारे में सुनाता। (मेरे ख्याल में यह चालीस के दशक के प्रारंभ का समय रहा होगा।)

कोविलपट्टी में जहां इस समय लक्ष्मी मिल्स का 'शो रूम' है, वहीं पर थी अण्णाच्ची की पान की दुकान। उसके ठीक सामने था कोविलपट्टी का तत्कालीन बस अड्डा।

सुना कि यहां पर पान की दुकान लगाने से पहले वे कृष्णन कोविल गली में बिनौले-खली की दुकान चलाते थे। इस दुकान का मुझे पता नहीं था।

अब बैठकर याद करने की कोशिश करता हूं तो पान की दुकान पर देखा उनका हुलिया मेरे स्मृति-पटल पर आ रहा है। वे भी मुझसे पहली बार वहीं पर मिले थे। काला-कजरारा रंग। जरा-सा ऊपर को उठे हुए खुले खुले उजले दांत। आगे की ओर झुकी सघन किंतु छोटी-सी नाक। तंग माथे के ऊपर कमान के आकार में कटे हुए बाल। छोटा कद, मुद्गर-सा गोल शरीर। हरेक उंगली ड्योढ़ी मोटी। कमर पर केवल खादी क़ी उजली लुंगी। शहर से बाहर जाते हुए आधे हाथ की कमीज पहनकर ऊपर से अंगोछा डाल लेते। सर्दियों में बदन पर मात्र बाजूवाला बनियान।

सामने जा खड़ा होता तो बिहंसे मुंह से स्वागत करते—"आइए रासनारायणन !" अण्णाच्ची को 'ज, ष' जैसे वर्णों का उच्चारण करना नहीं आता। गांधी सी, नेरू सी, रासा सी बोलते। जानबूझकर नहीं, उनकी जीभ बस, कुछ ऐसा ही बोल पाती थी।

अण्णाच्ची पके हुए देशभक्त रहे; स्वतंत्रता सेनानी भी। झंडा-सत्याग्रह में भाग लिया

था। व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेते हुए मद्रास तक पद-यात्रा करके लौटे। पद-यात्रा सत्याग्रह के दौरान हुए अपने कई अनुभव उन्होंने मुझे सुनाए हैं। यहां से किस तरह मदुरै पहुंचे, मदुरै वैद्यनाथ अय्यर जी के यहां सत्याग्रहियों का प्रेमपूर्ण आतिथ्य, विदाई के वक्त अय्यर द्वारा सभी सत्याग्रहियों को एक एक लोटे का उपहार...सभी का वर्णन किया है।

अण्णाच्ची ने पहले सोचा था, "लोटा काहे के लिए दे रहे हैं?" बाद में ही उन्हें उसकी उपयोगिता का पता चला। पैदल यात्रियों के लिए लोटा किस किस तरह से काम आता है, यह जानकर उन्हें बेहद खुशी हुई। इसकी चर्चा करते हुए अण्णाच्ची हमारे सामने बारंबार कृतज्ञता के साथ वैद्यनाथ अय्यर का स्मरण करते थे।

'प्रचंड विकटन' पत्रिका में जब कु. अलगिरि सामि काम करता था, महाबलिपुरम आदि दर्शनीय स्थानों की सैर में भाग लेने के लिए मैं मद्रास गया था। कोविलपट्टी से हम चार-पांच मित्र एक साथ चलनेवाले थे, पर आखिरी लमहे में उन सबने अपनी यात्रा स्थगित कर दी, इसलिए मुझे अकेले जाना पड़ा। अकेले सफर करने की मेरी आदत नहीं है। दूसरे विश्वयुद्ध का समय था...ज्यादातर लोग डर के मारे मद्रास नगर छोड़कर गांवों की ओर भाग रहे थे। अखबारों में यही पढ़ने को मिलता था कि वहां पर अंधाधुंध चलनेवाली मिलिटरी लारियों के नीचे दबकर रोज कम-से-कम दो आदमी मरते हैं। सो, एक तरफ प्राण भय छाया हुआ था। दूसरी ओर महानगरों के लिए सहज ठगी और धोखाधड़ी, माल-संपत्ति का नुकसान। फिर मद्रास में कुछ भी पूछताछ कीजिए, आपसे बात करने को कोई राजी नहीं। कभी रास्ता बताएं भी तो इस ढंग से बताएंगे कि आप गुमराह हो जाएंगे। कभी आपको बहकाकर अपने साथ ले जाएंगे और अंटी का माल छीनकर बीच सड़क पर छोड़ देंगे...इस तरह की कई बातें सुनने में आती थीं। मुझे गाड़ी में बिठाने के लिए रेलवे स्टेशन तक आए अण्णाच्ची ने मुझे समझाया, "अगर वहां पर किसी से कोई खबर मालूम करनी हो तो खादीधारी किसी सज्जन से पूछिएगा..."। सच्ची बात थी! खादीधारी उन दिनों बड़े सच्चे होते थे। खादी पहने लोग दुर्लभ भी थे।

अण्णाच्ची की दुकान के सामने जब देखो राजनैतिक बहसें चलती रहतीं। उनकी दुकान पर दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएं बिकती थीं, इसलिए पत्रिकाएं खरीदने के लिए आनेवाले ग्राहकों के साथ बातचीत का विषय या तो राजनीति होती थी या साहित्य। तिस पर बस अड्डे के सामने वाली दुकान होने की वजह से हमेशा भीड़-भाड़ और चहल पहल रहती थी।

विशेष करके स्वयं कांग्रेस पार्टी के लोग अण्णाच्ची से ज्यादा टकराते थे। उन दिनों का कांग्रेस दल अनेक राजनीतिक दलों का मिला-जुला मोर्चा था। समाजवादी, साम्यवादी, रायिस्ट सभी लोग कांग्रेस में थे।

अगस्त 1942 की क्रांति के साथ जो रगड़े-टंटे हुए थे उनके बाद कांग्रेसियों के अंदर

यह राय जोर पकड़ने लगी कि अब कम्युनिस्टों को कांग्रेस के अंदर रहने न दिया जाए। पुरजोर नारों के साथ इस तरह की आवाज उठानेवाले नेता बंबई के एस.के. पाटील थे। अखबारों ने इस खबर को प्रमुखता देकर छापा था। जगह जगह नारे बुलंद होने लगे, "कम्युनिस्ट और रायिस्ट लोगों को कांग्रेस से निकाल दो।"

यह रुख अण्णाच्ची को नहीं भाया। उनकी राय थी, "ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ते हुए कांग्रेस को एक सशक्त दल के रूप में संयुक्त रहना चाहिए; खासकर ऐसे नाजुक दौर पर छिन्न-भिन्न होना आजादी की लड़ाई को कमजोर कर देगा।"

कांग्रेस सभाओं में भाषण देते हुए बड़े बड़े राजनीतिक वक्ता जनता को सावधान करते थे, "कम्युनिस्टों के साथ बात न करें, उनकी बातें न सुनें, यदि वे लोग आपके सामने आ जाएं, तो खुद वहां से हट जाएं।" उनकी बातें सुनकर गांधी जी के तीन बंदरों की याद आ जाती थी।

इससे भी आगे बढ़कर कुछ उत्साही कांग्रेसियों द्वारा कम्युनिस्टों की सभाओं में गड़बड़ी पैदा करना आदि देखकर अण्णाच्ची के मन में कम्युनिस्टों के प्रति हमदर्दी-सी पैदा हो गई। साम्यवादियों के साथ उनकी इस सहानुभूति ने कांग्रेस साथियों के मन में क्रोध और खीझ उत्पन्न कर दी। उन लोगों के भयंकर क्रोध और असहनीय कटाक्ष वचनों ने अण्णाच्ची को जबरन कम्युनिस्टों के पास धकेल दिया !

इस बीच में अण्णाच्ची कम्युनिस्टों की तरफ कान देकर सुनने लगे कि आखिर वे लोग क्या कहते हैं। "जनशक्ति", 'पीपुल्स वार' जैसी उनकी पत्रिकाएं तथा 'गांधी-जोशी पत्राचार', 'जीत देशभक्ति की होगी, हुल्लड़बाजी की नहीं' जैसे प्रकाशनों को पढ़ने और बेचने भी लगे थे।

अण्णाच्ची जितना ही मना करते थे, 'मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं;' इधर से कांग्रेसी उतने ही जोर के साथ उनके मुंह पर कहने लगे, "तुम कम्युनिस्ट ही हो।"

उन दिनों अण्णाच्ची की शादी नहीं हुई थी। जान-पहचान के किसी परिवार में पैसा देकर खा-लिया करते थे। उनका कमरा छोटा-सा था—आठ फुट चौड़ा दस फुट लंबा। शादी के बाद भी कुछ दिनों तक वे इसी छोटे कमरे में पत्नी-समेत रहते थे। (इसी कमरे में बैठकर हम लोगों ने—मैं, अण्णाच्ची, विलात्तिकुलम स्वामी जी, कु. अलगिरि सामी ने—कोविलपट्टी में मुत्तमिल विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना भी बनाई थी!)

कोट्टै कलुगुमलै गांव में अण्णाच्ची के लिए लड़की देखकर शादी तय कर दी गई। विवाह समारोह कलुगुमलै में। कु. अलगिरि सामी मद्रास से आ नहीं पाया। काफी कोशिशों के बावजूद आ नहीं पा रहा था, इस पर अपना खेद व्यक्त करते हुए उसने लंबी चिट्ठी लिखी थी। चेल्लैया को कु. अलगिरि सामी बनाने में अण्णाच्ची का काफी योगदान रहा था। अण्णाच्ची का सपना था कि अलगिरि सामी महाकवि भारती के समान प्रशस्त कवि

बन जाए। छुटपन से वे उसे कविता लिखने के लिए प्रोत्साहित करते। वे स्वयं भी कविताएं, गीत, कीर्तन आदि रचते थे और मित्र मंडली में उनका सस्वर पाठ करके कृतार्थ हो जाते। एक बार एक गीत लिखा था। गीत का एक बोल कुछ इस तरह से बना था कि भंग-श्लेष से उसका दूसरा अर्थ निकलता था जो बहुत ही हास्यास्पद लगता था। वह बोल था, "एन्नैक्कलंदवंडि"। नायिका अपने प्रियतम के बारे में सखि से कह रही है, वह इतना प्रिय है कि मेरा उससे संगम हुआ था। गीत के बोल में 'वंडि' अलग पद की तरह लिखा गया था। 'वंडि' का अर्थ होता है 'गाड़ी'। इस वजह से वे हमारे हंसी-मजाक के लक्ष्य बन गए। हम उन्हें घेरकर पूछने लगे "अरे, वह कौन-सी वंडि (गाड़ी) थी? क्या गाड़ी ने जाकर उसके साथ संगम किया था?" हम लोग बारंबार इसी बात को पूछते जाते थे और हंसते जाते थे। आखिर वे भी हमारी हंसी में शरीक हुए। कहने लगे, "ठीक है, ठीक है, जाने दो। यह पंक्ति ठीक नहीं बनी। फिर से लिखेंगे।"

2

विवाह-मंगल के अवसर पर छंदोबद्ध रूप में अभिनंदन-पत्र तैयार करने और उसे सुंदर ढंग से छपवाने-मढ़वाने के बाद विवाह मंडप पर प्रशस्ति-गान के लहजे में सस्वर पाठ के साथ प्रस्तुत करने की परंपरा उन्हीं दिनों चल पड़ी थी। थोड़े ही दिनों में गांवों में भी इसका प्रसार हो गया। विवाह के महीने जब शुरू हो जाते, इधर-उधर कोनों में दुबके रहनेवाले दो कौड़ी के कवि भी जरा तन कर बैठ जाते। कोविलपट्टी में भी—खासकर जवाहर युवक संघ की ओर से प्रस्तुत होनेवाले विवाह-अभिनंदन-पत्र अण्णाच्ची स्वयं लिखते थे। आसपास के गांवों से आकर मांगनेवालों के लिए अभिनंदन-गीत वे मुफ्त में ही लिखते और खुशी खुशी देते।

शादी के लिए आवश्यक सामान खरीदने के लिए कोविलपट्टी आनेवाले लोग बस से उतरते ही सीधे अण्णाच्ची के पास पहुंचते और एक पर्ची पर वर-वधू के नाम लिखाकर उन्हें दे जाते थे। नाम चाहे जितने ही लंबे हों या ऊटपटांग किस्म के हों, अण्णाच्ची गल्ले पर बैठे बैठे और अपनी दुकानदारी संभालते हुए खाली सिगरेट पैकेट के गत्ते काट लेते, क्लिप लगाकर करीने से रख लेते और थोड़ा थोड़ा करके कविता को पूर्णता दे देते।

ठीक बन जाने पर कहते, 'सुनिए रासनारायणन!" और अभिनंदन कविता सुनाने लगते। उस समय उनकी मुख-मुद्रा देखने लायक होती थी। उपलब्धि की संतृप्ति, अवर्णनीय आनंद! देखनेवालों पर संक्रमण कर जानेवाला आनंद!

वे लोग आकर पूछते, "अभिनंदन तैयार हो गया?" अण्णाच्ची उन्हें बिठाकर उसकी स्वच्छ प्रति बनाते और उनके हाथ में रख देते। वे लोग उसके नीचे अपना नाम लिख लेते

और मुद्रण के लिए प्रेस में दे जाते। आज अण्णाच्ची का नाम रखने के लिए उनसे विरचित—किंतु उनके नाम से रहित—मढ़े हुए कुछेक अभिनंदन-पत्र ही शेष हैं।

इस तरह जो अण्णाच्ची दुनिया भर के लिए बधाई के छंद लिखकर मुक्त हस्त से लुटा चुके हैं "यह लो अभिनंदन !" "लो यह अभिनंदन !" आज स्वयं उनके विवाह मंगल पर, क्या यह हमारा कर्तव्य नहीं बनता कि हम उनके लिए अभिनंदन-पत्र तैयार करें, छपवा कर उसे सुंदर फ्रेम में मढ़वा लें और प्रेम से प्रस्तुत करें?

हमारी मंडली में अलगिरि सामी ही ऐसा व्यक्ति है जो कविता रच सकता है। लेकिन क्या कहें, वह विवाह-अभिनंदन के नाम से खीझ उठता था। अभिनंदन लिखना उसे बिलकुल नहीं सुहाता था। उसके स्थान को पूरा करने के लिए भाग्य से हमें मिल गए कुरुविकुलम गुरुपर कविराज! (यह वही कविराज हैं आगे चलकर जिन्होंने कु. अलगिरि सामी को लोककवि अण्णामलै रेड्डियार के कई सारे अप्रकाशित मुक्तक-गीत सुनाए थे।)

विवाह के दिन हम लोग कलुगुमलै जाने के लिए कोविलपट्टी के बस-स्टैंड पर बड़े सबेरे जमा हो गए और बस के इंतजार में बैठे थे। लड़ाई के उस जमाने में एक सीट पा लेना मेडिकल कालेज में एक सीट पाने के बराबर होता है।

कंडक्टर महाशय अगर सड़क पर दिख जाते तो कम से कम दस यात्री, जिन्हें टिकट की तलब होती हैं, अत्यंत विनय के साथ परिजन के रूप में उनके पीछे पीछे चलते। उनकी चाल में यह खासियत थी कि जब वे यूं चलते थे, उनकी दृष्टि नीचे फर्श पर न लगकर कंडक्टर के मुख-मंडल पर लगी रहती। कंडक्टर के चेहरे पर बदल बदल कर आनेवाले संचारी भाव इन लोगों के चेहरों पर भी प्रतिबिंबित होते। कंडक्टर के मुंह से निकलते हास्य-रसहीन हर चुटकुले और लतीफे पर ये लोग होड़ लगाकर हंसते और लोट-पोट हो जाते। अगर कंडक्टर महोदय होटल में नाश्ता करते होते तो ये लोग बड़े सब्र के साथ बाहर इंतजारी में खड़े रहते ! बिल कंडक्टर के पास पहुंच जाए, इससे पहले ही एकाध साहसी यात्री आगे बढ़कर उस बिल पर पिल पड़ते और पैसा चुका देते। ऐसा करते हुए वे इस बात का जरूर ध्यान रखते कि कंडक्टर की दृष्टि उन पर पड़े। बाहर खड़े यात्री पहले से जानकारी रखते थे कि कंडक्टर साहब क्या लेंगे, सिगरेट या कि सफेद पान। वहां से यात्री-परिजनों के घेरे में कंडक्टर महाराज का शानदार जुलूस निकलेगा बस की तरफ...सामने से इसी भंगिमा के साथ एक अन्य महाराज का भव्य जुलूस। यों वह जमाना 'सर्व अधिकारी' कंडक्टरों का स्वर्ण-युग बना था।

ऐसे में बस स्टैंड पर बैठे हम लोगों की यह चिंता, "कैसे हम कलुगुमलै पहुंचने वाले हैं", बिल्कुल उचित और स्वाभाविक थी। अण्णाच्ची पिंछली रात को ही दुकान बंद करके चले गए थे, इंतजामात की निगरानी के लिए। जिस स्थान पर अण्णाच्ची की दुकान थी, उसके पास ही एक ऊंचा चबूतरा-सा बना हुआ था। उसके ऊपर विवाह के लिए जुटाई

आवश्यक साधन-सामग्री और हमारे सामान रखे हुए थे। सामान को घेरकर अण्णाच्ची के रिश्तेदारों के साथ हम लोग बैठे थे, बस की प्रतीक्षा में।

कलुगुमलै वाली बस आ गई। पौ फटी थी, पर पूरी तरह से प्रकाश नहीं आया था। बस से उतरकर हम लोगों की ओर बढ़ते हुए कंडक्टर बोले, "अण्णाच्ची की शादी पर जानेवालों में से दस लोग मेरी बस में आ सकते हैं।" 'पहले मैं पहले मैं' के अंदाज से भीड़ में धक्का-मुक्की करते हुए हम दस लोग पहली खेप में सवार हो गए।

कलुगुमलै के 'कल्याण मंडपम' में पहुंचकर हम लोगों ने निगरानी कर ली कि वहां के इंतजाम में कोई कसर तो नहीं है। अण्णाच्ची ने अपनी दंत-पंक्ति को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करते हुए हम लोगों का स्वागत किया। थोड़ी देर बैठकर बतियाते रहे। तब तक अगली खेप के लोग भी पहुंच गए। ये लोग पुष्पहार सहित सारी सामग्री लेकर आए थे। किंतु एक चीज को छोड़ आए थे। मंगलसूत्र वाला बक्सा नदारद !

उसी बस से एक आदमी को कोविलपट्टी भगाया गया। लौटकर उसने यह सूचना दी—"वह तो नहीं मिला !"

अण्णाच्ची सकपका गए, "हे भगवान, यह कैसी परीक्षा है !" सभी के चेहरों पर शादी की जो खुशी थी, जाने कहां गायब हो गई।

जो व्यक्ति यह सूचना लाया था, अकेले में ले जाकर हमने उसे सावधान किया, "खबरदार ! किसी को इस बात की बू तक न लगे।" गनीमत यह थी कि लड़कीवालों के ठहरने का स्थान जरा दूर था।

यह राज हम चार-पांच लोगों तक सीमित रहा। मुहूरत का समय हो रहा था। हम लोगों की बुद्धि काम नहीं कर रही थी। कुछ सूझ नहीं रहा था। ऐसे में उधर कु. अलगिरि सामी के ससुर चंद्रगिरि मास्टर जी चश्मा लगाए हुए बड़ी बेफिक्री के साथ अभिनंदन पढ़कर सुना रहे थे। नंबरदार चीनी नायकर को खीझ आ रही थी। मास्टर जी को मंगलसूत्र खो जाने की खबर नहीं थी। उन्हें पता भी होता, तब भी इसे गंभीरता से नहीं लेते। यही नहीं, शुरू हो जाते इसी तरह के टक्कर का कोई वाकया लेकर : "ठीक ऐसा ही हादसा हुआ चंद्रगिरि में—सुनिए...।"

हम सब लोगों ने बड़ी फुर्ती से एक गुप्त बैठक करके रास्ता ढूंढ़ ही लिया। उसके तहत, एक महिला को एकांत में बुला लिया जो रिश्ते में अण्णाच्ची की 'धरम की भाभी' लगती थीं। हमारा मंशा थी कि केवल उन्हीं तक इस रहस्य को खोलें और उनकी मदद से समस्या का समाधान कर दें।

उस महिला-रत्न को हमारी हड़बड़ी का क्या पता था? बड़ी शांति के साथ आहिस्ता आहिस्ता कदम बढ़ाते हुए हमारी तरफ आने लगीं, चेहरे पर शादी की खुशी लहरें मार रही थी। हम लोग बड़ी दुविधा में थे कि कैसे यह बात खोली जाए। इस कार्य के निर्वाह

के लिए मित्र-मंडली के बीच में से मेरा चयन हुआ और मैं उनके पास भेजा गया।

गांव में 'कट्टुताली' के उत्सव पर महिलाएं स्वयं आगे बढ़कर अपना मंगलसूत्र समर्पित कर देती थीं। मुझे इस प्रथा की जानकारी थी। लेकिन चेट्टियार जाति में ऐसी रस्म प्रचलित है या नहीं, इसके बारे में निश्चित जानकारी के अभाव में मन में अजीब तरह की दुविधा उठ रही थी। किंतु अब इसके सिवा कोई चारा नहीं था। मैंने बात यों शुरू की, "बहन जी, बात कुछ ऐसी हो गई है... किसी को इसका पता नहीं लगना चाहिए। बात खुल जाए तो शायद शादी ही रुक जाए..."

महिला सकपका गई, पूछने लगी, "बात क्या है?" धीमे से सारी बात सुनाने के बाद मैंने पूछा, "मंगलसूत्र का बक्सा खो गया, अब क्या किया जाए?...।"

इस पर उनकी प्रतिक्रिया हुई, "अरे, ऐसे भी लोग होते हैं क्या..इतनी बेएहतियाती बरतने वाले ! विवाह के दिन मंगलसूत्र का गुम हो जाना, यह कोई ऐसी-वैसी बात है? अच्छी तरह से ढूंढ़ लिया?...पूछताछ की? दुश्मन भी ऐसा काम करने को राजी नहीं होगा, क्यों जी?"

"बहन जी, आप जो कह रही हैं, सब ठीक है। सोलह आने सच्ची बात है। आपका कहना हमारे गांव के लिए ठीक है, वहां पर ऐसी बात हरगिज नहीं होती। लेकिन बहन जी यह जो गायब हुआ है, वह शहर में हुआ है...मेन रोड पर...जहां बहुत-सारे लोग ऐरे-गैरे सब इकट्ठे होते हैं...बस स्टैंड पर...कोई अच्छे भले आदमी के हाथ लगे तभी मिल सकता है, अन्यथा नहीं। उसके बारे में बातचीत करने का अब समय नहीं है। मुहूरत की घड़ी आ ही गई, अब क्या करें? कोई रास्ता बताइए। यह ऐसी बात है किसी को कानों कान खबर न लगे।" मैंने कहा।

वह ऐसा जमाना था, जब मंगलसूत्र बांधने के लिए लगन निकालने की भांति, मंगलसूत्र बनाने हेतु सोना गलाने के लिए भी शुभ घड़ी शोधी जाती थी। आजकल की तरह जौहरी की दुकानों में बने बनाए मंगलसूत्र नहीं बिकते थे। लाख दो लाख देने पर भी कोई एकदम मंगलसूत्र खरीद नहीं सकता।

"विवाह के शुभ अवसर पर मंगलसूत्र का खो जाना जरूर किसी भावी खतरे की निशानी है", महिला ने संक्षेप में इतना ही कहा। फिर "मुरुगा !" (भगवान का नाम) उच्चारण करते हुए गले से अपना मंगलसूत्र उतारने लगी।

3

उसी समय अण्णाच्ची भागे भागे वहां पहुंच गए। वे अपनी हल्की आवाज में चिल्लाते हुए आ रहे थे, "मिल गया रासनारायणन मिल गया।"

"मुरुगा, मुरुगा !!" भगवान का नाम लेते हुए उस महिला ने गले के ऊपर तक निकाले हुए मंगलसूत्र को फिर से पहन लिया। इस दृश्य से हमारी आंखें सजल हो गईं।

वेदी पर आकर बैठी वधू को देखकर हम लोगों का दिल जरा-सा बैठ गया। कहां अण्णाच्ची का हट्टा-कट्टा दोहरा शरीर और कहां बिल्ली की बच्ची-सी दुबली-पतली यह लड़की! दोनों में रत्ती भर भी तारतम्य नहीं था।

जो भी हो, शादी धूमधाम से संपन्न हो गई। बहुत-सारी अच्छी अच्छी पुस्तकें खरीद कर हम लोगों ने उन्हें उपहार में दीं। अण्णाच्ची किताबों पर जान देने वाले जीव थे। उनकी तरफ जाने वाली किताबें कभी लौटने का नाम नहीं लेतीं। उन्हें यदि किसी सेना की टुकड़ी का सिपहसालार बना कर किसी देश पर धावा बोलने को कहा जाए तो राजधानी पर कब्जा होते ही जब उनके सिपाही वहां के खजाने में घुस कर सोने-जवाहरात लूट रहे होते, वे सीधे वहां के पुस्तकालय में प्रवेश करके दोनों हाथों से पुस्तकें ही बटोरते !

बहुत सारी किताबें जो हमारे लिए प्यारी-न्यारी थीं, अण्णाच्ची के पास पहुंच कर वहीं फंसी रह गईं। हम चाहे जो भी जादू करें या मंत्र पढ़ें, वे कभी वापस नहीं मिलने वाली हैं। जाल में फंसी मछली कहां फिर पानी में लौट पाती है !

हम लोगों को कतई पता नहीं लगता था कि इतनी सारी किताबें ले जाकर ये कहां छिपा के रखते हैं। हम उन्हीं से पूछते, "कहीं कोई अंडरग्राउंड तो नहीं है?" गूंगे की हंसी के साथ वे चुप्पी साध लेते। जिस तरह कोई कंजूस रुपया-पैसा जुटाता, उसी जुनून के साथ अण्णाच्ची किताबें जुटाते थे। पर उनकी हालत तो ऐसी थी कि उन्हें इतमीनान के साथ बैठकर किताबें पढ़ने के लिए फुरसत ही नहीं मिलती थी। क्योंकि बड़े तड़के साढ़े चार बजे उठकर अपनी दुकान खोल देते हमारे अण्णाच्ची। रात की बस छूट जाने पर बस स्टैंड पर ही रात गुजारने के लिए मजबूर देहाती भाई जब तक पान-सुपारी-तंबाकू न खाते, टट्टी नहीं जा पाते थे। कस्बों में रहनेवाले इसके लिए चुरुट का प्रयोग करते थे। शहर के लोग इसी प्रतीक्षा में बैठे रहते थे, सुबह कब होगी, कब हम काफी में डुबो-डुबोकर अखबार खाएं। अण्णाच्ची की बड़े सवेरे खुली दुकान सभी तबके के लोगों को राहत देती थी। पिछली रात को आखिरी बस के पहुंचने के बाद ही उन्होंने दुकान बंद की होगी। ऐसे में भले आदमी को पढ़ने की फुरसत कहां मिली होगी? रविवार के दिनों में बसों की छुट्टी नहीं होती, इसलिए उन्हें भी छुट्टी नहीं मिलती।

आनेवाले ग्राहकों को सौदा देते हुए ज्यादा से ज्यादा अखबारों पर एक बार ऊपरी तौर पर चरा जा सकता है, बस। पता नहीं, भविष्य में मिलनेवाली किस लंबी छुट्टी का ख्याल करते हुए अण्णाच्ची बड़ी निर्दयता के साथ किताबें इकट्ठी करते गए। अंत में उनके विषय में भी यही कहावत सच निकली, "सूखे पत्ते बटोरने का ही समय मिला, आग तापने के लिए समय नहीं रहा।"

एक दिन मैंने अण्णाच्ची की दुकान पर दो अद्भुत ग्रंथ देखे थे—एट्टैयपुरम कडिगैमुत्तु कवि से रचित "समुद्रविलासम" और "तंजैवाणन् कोवै" नामक ग्रंथ जो ताड़-पत्र पर लिखा था। किसी जरूरी काम से बाजार जाना था। लौटकर देखता क्या हूं कि वह ग्रंथ गायब है साथ में ताड़-पत्र भी। गांधी जी के परम शिष्य अण्णाच्ची जो सपने में भी झूठ नहीं बोलते, केवल पुस्तक के मामले में झूठ बोलते थे। चंद्रगिरि मास्टरजी एक कहावत सुनाया करते हैं : "किताब के मामले में और औरत के मामले में हरेक आदमी घटोत्कच होता है।" इस कहावत को सुनाने के बाद मास्टरजी ठहाका मारकर हंसते, फिर ऐसा भोला मुंह बनाते मानों बड़े नादान हों।

तिरुच्ची के आकाशवाणी कार्यालय जाने के बाद हम चार जने—कु. अलगिरि सामी, कंदसामि चेट्टियार अण्णाच्ची, लायल मिल के नटराजन और मैं—मदुरै आकर ठहरे। दिन भर मदुरै की सड़कों की खाक छानते रहे, भोजन की तलाश में। दो दिन से अच्छा खाना नहीं मिला था। उन दिनों चाहे कितना पैसा दीजिए ढंग का खाना नहीं मिलता था। किसी भी होटल में घुस जाइए, आपकी पत्तल पर पहले रखा जाएगा गेहूं के आटे का मोटा-तगड़ा दोसा। गोलाकार वह दोसा आड़े में पौन हाथ लंबा होगा, मोटाई उसकी डेढ़ अंगुल की होगी। इतने बड़े दोसा को लाकर परोसने की 'भंगिमा' ऐसी होती थी मानों बैरा कह रहा हो, 'देखता क्या है, खा बे खा !' उसे खत्म करने के बाद ही अन्न के कण (भात) दर्शन देंगे।

जब भी वह गोधूम-वृत्त पत्तल पर पड़ता हमारा दिल भी बैठ जाता। मन में यही भाव आता, "छिः यह भी कोई जिदंगी है !" कथा में आता है न, भद्रगिरि जी ने किसी चीज को अपने दृष्टिकोण से देखा तो मन में ठान लिया कि अब तो संन्यास लेना ही उचित है...वैसा प्रसंग याद आ जाता।

"धान के खलिहान" के नाम के मशहूर कावेरी तट पर उस दिन हमें खाने के लिए कुछ नहीं मिला था, आज इस पर विचार करते हुए आश्चर्य-सा लग रहा है। लड़ाई का वह जमाना भयंकर अभावों का जमाना था। सुबह के समय निकलिए, तब भी इडली का टुकड़ा मयस्सर नहीं होता था। किसी भी होटल में जाइए, मूंग की दाल की इडली के नाम से एक ऐसी चीज पेश की जाती थी जिसे आप खा ही नहीं सकते। दोसा मांगिए तो मिलेगा गेहूं का दोसा। वह ऐसा जमाना था जिसमें चावल रूपी सूर्य अस्त हो चुका था। अलगिरि सामी चुटकी लेता, "सरकार की नजर में हम सब मधुमेह के मरीज हैं।"

वह ऐसा जमाना था जब गेहूं से तमिल भाषियों का पहले पहल आमना-सामना हुआ था। इस बिचारे को (तमिल भाषी) अभी तक गेहूं खाने का अभ्यास नहीं था। यहां के होटलों के रसोइयों को गेहूं की चीजें बनाने की कला भी नहीं आती थी। (केवल हलवा बना पाते थे, किंतु उसके लिए चीनी नहीं मिलती थी उन दिनों।)

भूखे बैलों की तरह तिरुच्ची, श्रीरंगम जैसे स्थानों में भटकने के बाद हम लोग मदुरै पहुंचे। जब हम मीनाक्षी मंदिर की परिक्रमा कर रहे थे। लायल मिल नटराजन के मामाजी हमें दिख गए जो श्री मीनाक्षी देवस्थान में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। नटराजन और हमें देखकर उन्होंने हालचाल पूछा और घर चलने का न्यौता दिया। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा, रात का भोजन घर पर करें और रात में आराम करके सुबह गांव चलें।

रात के भोजन के लिए बड़ी बड़ी आशाएं लेकर हम लोग उनके यहां पहुंच गए। उन्होंने भी अपनी इज्जत रखी। पूड़ी, चपाती जैसी गेहूं की चीजें न खिलाकर हमें बढ़िया भात ही परोसा। भात के साथ मट्ठा और आम का अचार मिल जाए, वही बहुत होता। किंतु उन्होंने हमारे लिए दावत का आयोजन किया था। घृत-मिश्रित स्वादिष्ट अन्न को हमारे उदरों ने प्रेमपूर्वक स्वीकार किया। सोचने लगे, वाह रे वाह ! बहुत दिनों के बाद ऐसे ऐसे भोजन-पदार्थ खाने को मिले हैं।

उनके घर की खुली छत पर दूध की तरह चांदनी बिछी हुई थी। गर्मी के दिन थे। इसलिए छत पर ही सोने का फैसला हुआ। ऊपर गए तो बड़ी-सी दरी बिछी थी और तीन तकिए रखे हुए थे। मामाजी नीचे किसी काम में व्यस्त थे। थोड़ी देर तक हम लोग चांदनी रात का आस्वादन करते हुए बैठे थे। पेट भरा हुआ था, मन भी; इसलिए गीत आया, कविता आई। अण्णाच्ची एक अर्धाली शुरू करते और अलगिरि सामी उसे पूरा करता। वह अर्धाली मीनाक्षी देवी या चोक्कनाथ (शिवजी) की प्रशंसा में न होकर नटराजन के मामाजी पर होती थी। कविता यदि सुस्वादु भोजन खिलानेवाले की प्रशंसा न कर पाए तो उसका अस्तित्व ही निरर्थक है।

4

अण्णाच्ची कभी-कभार हम लोगों को अपने यहां खाने पर बुलाते। ऐसे मौकों पर हमें बहुत संकोच होता। कारण यह था कि उनकी पत्नी के मुंह से एक बार भी हमारे लिए स्वागत-वचन नहीं निकला था। "आओ" तक न कहती थीं, न हम लोगों से बोलती थीं। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा था। लेकिन भाभीजी के हाथ का खाना बड़ा जायकेदार होता था। जब भी मैं उनके यहां खाने पर जाता, साग बना होता था। स्वाद और सुगंध को साग के अंदर लाना वाकई पाक कला का राज होता है। रहस्य में भी सूक्ष्म रहस्य तो भाभीजी के पकाए अन्न में होता था। पत्तल पर परोसा भात गुड़ के ढेले के समान ठोस दिखाई देता, किंतु उस पर हाथ धरते ही एक एक दाना अलग हो जाता, साथ ही रुई के समान मृदुल भी। ऐसा कैसे होता है, आज तक हमें इस राज का पता नहीं चला है। यह तो 'आंखों ने न देखा है, कानों ने न सुना' वाली बात है। वह सादगी और स्वाद अन्यत्र दुर्लभ है। यदि

संघकालीन कवयित्री अव्वैयार अण्णाच्ची के यहां आकर साग-भात खा लेतीं तो तमिल के लिए एक और श्रेष्ठ कविता मिल गई होती।

अण्णाच्ची बड़ी लालसा के साथ चटकारे लेते हुए भरपेट खाते। भोजन के बीच में हमसे कहते भी, "मैं ढेर-सारा खाता हूं।"

भोजन के बाद बाहर आते ही हम लोग उनसे कहते, "अण्णाच्ची, भाभीजी सचमुच बढ़िया खाना बनाती हैं !" तब अण्णाच्ची का यह जवाब होता, "यही एक गुण है, उसमें।" इस वाक्य को कहते समय हमेशा 'एक गुण' पर बलाघात होता था।

अण्णाच्ची की पहली संतान लड़की हुई। वे बहुत खुश थे। अब भी मुझे याद है, वे बार बार खुशी से जिक्र करते थे कि जन्मकुंडली के अनुसार उनकी लड़की बड़ी होकर अव्वैयार जैसी प्रशस्त कवयित्री बनेगी।

कोविलपट्टी के पुराने बस स्टैंड का पहली बार स्थान-परिवर्तन हुआ, चन्दैपेट्टै के पश्चिम की ओर। साथ ही अण्णाच्ची की दुकान की भी पुराने स्थान से बदली हुई। नए बस स्टैंड के सामने इडली-दोसा वाले काफी होटल के रूप में बदल गई—बस स्टैंड के सामनेवाली पंक्ति में जहां आजकल राजा होटल चल रहा है।

इस दुकान से भी खर्चा पूरा नहीं होता था। अण्णाच्ची और भाभी के बीच में हमेशा कोई न कोई रगड़ा-टंटा चलता रहता। कभी अकेले में बड़े अफसोस के साथ कहते, "रासनारायणन, आज उसे मैंने पीट दिया।"

हम लोग न उन्हें डांट सकते थे न समझा ही सकते थे। हर दृष्टि से वे हमसे बड़े थे। इसलिए इसी उक्ति के साथ रुक जाते, "पृच्, आप भी कैसे अण्णाच्ची हैं !"

पान की दुकान चलाते हुए अण्णाच्ची 'राजा' की तरह मौज की जिदंगी बिता रहे थे। अब परिवार होने पर आर्थिक तंगियां शुरू हो गईं। कष्ट और कठिनाइयों के बीच में भी वे अलगिरि सामी की भरसक मदद करते थे।

अब उनका शरीर पहले की तरह स्वस्थ नहीं रहता था। जरा दुर्बल दिखने लगे। कारण पूछने पर बताते थे, ("रात में पलक तक नहीं झपक पाया। दिन भर काम और रात भर बच्ची की झिकझिक, लगातार रोती रहती है")

होटल में काम करने के लिए पर्याप्त संख्या में नौकर नहीं रख पाते थे। दोनों के दोनों बराबर काम में लगे रहते थे।

एक बार अण्णाच्ची को जुकाम-सा हुआ, फिर वह खांसी में बदल गया। खांसी ऐसी जो रुकने का नाम नहीं लेती थी। मैं उन्हें डाक्टर के पास ले गया—"चलिए डाक्टर से मिल आते हैं।" पहले तो उन्होंने मना किया—"मैं नहीं चलूंगा।" मुझे तब कहना पड़ा, "अण्णाच्ची, आपको इस खांसी के बारे में कुछ नहीं पता। यह तो बुरे किस्म की खांसी है।"

मेरे मन के अंदर जो आशंका थी, वह सच निकली। एक्सरे देखने के बाद डाक्टर ने मुझसे अकेले में बताया, "डरने की कोई बात नहीं । अभी शुरुआत है। लगातार सूई लगानी होगी; बिला नागा गोलियां भी खानी पड़ेंगी।"

इधर अण्णाच्ची ने भी मुझसे साफ कह दिया; "मारो गोली सूई-वूई को। मुझे नहीं लगवानी कोई सूई। यह खांसी मेरा क्या खाक बिगाड़ सकती है? बेकार का गोरखधंधा है यह सब !"

अंत में हारकर मुझे उनके सामने सच्चाई खोलनी पड़ी। तब जाकर चुप रहे। 'तपेदिक' का नाम सुना तो उनका दिल कांप-उठा। फिर अपनी बच्ची और परिवार की याद करके आंसू बहाने लगे। दिल में गहरा सदमा हो गया। "मेरे पीछे ये दोनों अनाथ हो जाएंगी न? इन्हें कौन सहारा देगा?" चिंता ने उनके मन को ग्रस लिया था। उनके साथ देर तक बैठकर उन्हें तसल्ली देनी पड़ती थी। मैंने कहा, "खाली खांसी होती तो कोई बात नहीं थी। बुरे किस्म की यह बीमारी लग ही गई तो हमें भी इससे लड़ना ही पड़ेगा। इसका सामना करने के लिए आजकल एक से बढ़कर एक अच्छी सूइयां और गोलियां सुलभ हो गई हैं। इसलिए अब हमें इस बीमारी से डरने की कोई जरूरत नहीं है।

"इसी तरह फिक्र करते रहेंगे तो बीमारी जड़ जमा लेगी। चिंता करना छोड़ दें तो पल में भाग जाएगी। सो, इसके लिए पहला उपचार होता है, चिंता छोड़ देना" इसी तरह उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए मैं लगातार दो-तीन दिन उनके पास ही बैठा रहा। तब जाकर उन्हें रास्ते पर ला पाया।

डाक्टर ने साफ कह दिया है कि "आपको अंडे जरूर खाने चाहिए।" यह सुनकर अण्णाच्ची जिद पकड़ने लगे, "अंडा? इससे बेहतर है मर जाना।" बाप रे, उन्हें अंडा खिलाने के लिए हमें बहुत मशक्कत करनी पड़ी।

अंडे खरीदकर लाए गए। उन्हें वे लगातार घूरते रहे। करुणा और अहिंसा की प्रतिमूर्ति रामलिंग स्वामी जी की बातें याद आई होंगी। तिरुक्कुरल का अध्याय 'मांस निषेध' का स्मरण आया होगा। हमारे साथ पहले इस विषय पर बहस करते हुए वे पूछा करते थे, सेंजनी की फली और प्याज में भी तो 'मांस के गुण' भरे रहते हैं। इसलिए अंडे पर वे इस तरह दृष्टि गड़ाए रहे मानों उनके सामने कोई बम रखा हो।

"क्यों भई, आज रहने दो इसे, कल खाएंगे," मुंह बनाते हुए कहने लगे।

इतना भर कहना काफी है न? इससे यही मतलब निकलता है, अण्णाच्ची पचास फीसदी राजी हो गए हैं अंडा खाने के लिए।

पर उनके पीछे हटने के मूल में असली कारण जो छिपा था वह बाद में ही प्रकट हुआ। उनका यही विचार था कि सूखी मछली की तरह अंडे में भी दुर्गंध होती है।

बरसात के दिनों में जब सूखी मछलियों से भरी कोई लारी कभी सड़क से गुजरती,

उसके निकल जाने के काफी देर बाद भी मछली की बू हवा में मिली रहती। अण्णाच्ची अपनी नाक जोर से दबाए रखते, फिर खंखारकर थूकते। उसके बाद कहते, "छिः...कैसी दुर्गंध है...कैसी दुर्गंध! मरोड़ रही है अंतड़ियों को। पता नहीं; इसे लोग कैसे खाते होंगे" यों कहते हुए वे जब दुनिया के लिए अफसोस प्रकट करते तो हम लोग हंसा करते थे। कु. अलगिरि सामी ने मलेशिया से लौटकर जो वाकया सुनाया था, उसकी याद आ गईः

कुआलालम्पूर के बाजार में अलगिरि बस के इंतजार में खड़ा है। सुनते हैं, वहां की सड़कें और बाजार बड़े स्वच्छ रहते हैं, हर तरफ सफाई रहती है। तब एकाएक कहीं से कोई असहनीय दुर्गंध ने इसकी नाक पर धावा बोला। वह बदबू ऐसी वैसी नहीं थी, उस किस्म की भयंकर दुर्गंध को अपनी उम्र में उसकी नाक ने कभी अनुभव नहीं किया था। लेकिन बाजार में इसके साथ जितने लोग बस की प्रतीक्षा में खड़े थे, उन्हें देखने पर लगा कि इस बदबू की उन्हें कोई परवाह नहीं है। उलटे वे लोग एक दूसरे को सार्थक दृष्टि से देखने लगे और एकाएक आंखें चमक उठीं।

इसकी तड़फड़ाहट और परेशानी को देखकर एक सज्जन ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अंग्रेजी में कहा, "टोरियान फल तोड़ रहे हैं, हां टोरियान।"

"क्या कहा? टोरियान? ऐसे फल का नाम मैंने अभी तक सुना नहीं। फल से तो सुगंध आती है न, बदबू कहां आती है? शायद यह सड़ा हुआ फल होगा" यों मन में विचार किया अलगिरि ने। तब तक बस भी आ गई थी और वह दफ्तर पहुंच गया।

अलागिरि की आदत कुछ ऐसी थी कि नई बात जो भी देखता या सुनता तो उसके बारे में अधिक से अधिक जानने की उत्सुकता होती थी। इसी आदत के कारण अपनी संस्था के अध्यक्ष नाट्टुकोट्टै चेट्टियार से उसने अपनी जिज्ञासा प्रकट कर ही दी। इसे सुनकर चेट्टियार जी कहकहे लगाकर हंसने लगे। फिर उन्होंने अपनी स्वाभाविक चेट्टिनाड की तमिल में टोरियान के बारे में विस्तार से वर्णन किया। वे थे ऐसे चेट्टियार जिन्होंने घाट घाट का पानी पिया था। पता चला कि दुनिया में सबसे ज्यादा जायकेदार फल अगर कोई है तो वह टोरियान है, यद्यपि इस दुर्गंध के बावजूद। मलेशिया के सघन वनों के अंदर जो टोरियान मिलता है, वह हमारे यहां के ताड़ के फल जितना बड़ा होता है। लोहे के गोले जैसा उसका वजन होता है। कहीं सिर पर गिर जाए तो समझिए काम तमाम हो गया।

कहने लगे, उस फुल को तोड़ने के लिए सधे हुए हाथ चाहिए। अगर कोई एक बार टोरियान खा ले तो बार बार खाने को उसका दिल करेगा। टोरियान दिख जाने पर वह अपने को रोक नहीं पाएगा।

मलेशिया में प्रचलित कहावत है : "जहाज बेचकर टोरियान खाया।"

"यह तो ठीक है, उसमें दुर्गंध काहे को है?" अलगिरि ने पूछा।

तुम भी बड़े 'वो' हो। बताओ दुर्गंध किसमें नहीं है? क्या ताड़ी में नहीं है? सूखी

मछली में नहीं है? भले आदमी, मैं कहता हूं उस दुर्गंध में भी एक स्वाद है। चुरुट से किस कदर बदबू निकलती है, पर उसे लोग होंठ पर लगाए खींचते रहते हैं न? फिर एक बार कहकहे पर कहकहे...

मैंने अण्णाच्ची से पूछा, "बताइए किसने कहा आपको, अंडे में बदबू होती है?"

अण्णाच्ची ने मुझे इस अंदाज से देखा मानों पूछ रहे हों, "ऐसा कैसे पूछ रहे हो?"

5

दो गिलास मंगवाकर मैंने अपने बगल में रख लिए। मेज के काने पर अंडे को हल्का-सा ठोकने के बाद उसका छिलका उतारा और इस ढंग से गिलास में उंडेला कि उसका पीला हिस्सा सफेद के साथ घुल मिल न जाए। उसके बाद पानी की घूंट की तरह उसे निगल गया। दूसरा अंडा निकाला उसी तरह ठोका...पीला हिस्सा घुलकर मिले बगैर उंडेला...फिर उसे भी पी गया एक ही घूंट में।

अण्णाच्ची जो इसे देख रहे थे, पास में आकर गौर करने लगे। उनकी प्रतीक्षा के खिलाफ न उससे दुर्गंध आ रही थी, न घिनौनापन ही महसूस हुआ। उनका मन सहज स्थिति में आ गया था। तीसरे अंडे को उसी भांति तोड़कर गिलास में डाला और उनके मुंह के पास बढ़ाते हुए कहा, "सूंघकर देखिए अगर बदबू नहीं आई तो पी लीजिए।" उन्होंने कहा, "बास तो नहीं आ रहा।" तब मैंने उनको मुंह खोलने के लिए कहा। जीभ को बचाकर गले के अंदर उंडेलते हुए बोला, "निगल लीजिए।"

निगल लिया उन्होंने। चेहरे पर उल्लास-एवरेस्ट जीतने का—हम सबने तालियां बजाते हुए उनकी परिक्रमा की अभिनंदन में। मैं ओर एक अंडा तोड़ने का उपक्रम करने लगा। "रहने दो। कल पी लेंगे।" उन्होंने कह दिया। तुरंत उन्हें दो घूंट गर्मागर्म काफी पिलाई गई।

काफी पीने के बाद वे हम लोगों के साथ बातें करते रहे। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा : "घिनौना लगता है अण्णाच्ची? मतली तो नहीं आ रही?" उन्होंने जवाब दिया, "कुछ भी नहीं हो रहा है भाई ! मुझे खुद ही शक हो रहा है, मैंने ही अंडा खाया है !" हम उनका मजाक उड़ाने लगे।

अंडे 'निगलते' अण्णाच्ची को घेरकर हम लोगों ने कितनी बार हंसी मजाक किया है ! इन मजाकों को वे प्रसन्न मुद्रा में स्वीकार कर लेते। मित्रगण उन्हें कभी नाराज नहीं कर सकते। मैंने कभी उन्हें गुस्सा करते नहीं देखा है।

एक दिन बस से उतरकर अण्णाच्ची की दुकान पर गया। कमीज पहने हुए थे। यह इस बात का सूचक है कि वे शहर से बाहर जाने वाले हैं। मैंने उन्हें देखकर पूछा, "कहीं दूर (जा रहे हैं)?" साथ में थे अलगिरि के ससुर चंद्रगिरि मास्टर। हर बात में उनको मजाक

सूझता। किसी भी बात को टेढ़ा करके 'सेक्स' में मिलाकर उस 'भंगिमा' को देखे बिना उन्हें नींद नहीं आती ! मैंने जो पूछा था 'दूर'–इसके उत्तर में चंद्रगिरि ने पलटकर प्रश्न किया : छिः... ! आप भी कैसा सवाल करते हैं...क्या ये (अण्णाच्ची) कोई औरत है जो दूर (माहवारी के समय दूर बरतना) रहें।"

अण्णाच्ची हम दोनों से कहने लगे, "बैठिए। कोट्टै कलुगुमलै तक हो आता हूं।" उस समय उनकी उंगलियां कमीज के बटन को घुमा रही थीं। (हां उन्होंने अपने परिवार को वहां भेज रखा था)। चंद्रगिरि ने तुरंत उन पर कटाक्ष किया, "इसीलिए तो मैंने कहा था अंडे और दूध ज्यादा नहीं पीना चाहिए; ये नाहक घर की याद उभाड़ देते हैं ! देखा न, वही हुआ !"

चिकित्सा के दौरान ज्यादा आराम की जरूरत थी। इसलिए अण्णाच्ची पहले की तरह मेहनत नहीं कर पा रहे थे। फिर 'कॉफी क्लब' कहलानेवाले होटल के अंदर अंगीठी जलाना और अन्य अट्रम-सट्रम काम करना उनके लिए दूभर हो रहा था। इसलिए 'कॉफी क्लब' को तिलांजलि देनी पड़ी। फिर जान-पहचान के किसी व्यक्ति के साझे में उसी को किराने की दुकान बनाया गया। किंतु वह भी ठीक नहीं चली। उनका साझेदार बड़ा ढीला निकला। चलो, इसे किसी तरह बर्दाश्त कर भी सकते हैं, कोई उनकी आंख बचाकर माल उड़ाने लगे। इसे कहां तक सहा जाएगा? अतः इस उद्योग से भी हाथ खींचना पड़ा।

उसके बाद बाहर आकर अपनी अलग किराने की दुकान खोली–बालमुरुगन लाज के पास, उसी कतार पर। जैसे तैसे गाड़ी चलने लगी।

अण्णाच्ची अपने छुटपन में करडिकुलम से भागकर जब कोविलपट्टी आए थे, तब भी उन्होंने किराने की दुकान पर ही काम शुरू किया था। (वेंकटसुब्बु रेड्डियार की दुकान पर)

वेंकटसुब्बु रेड्डियार का व्यापार अच्छा चलता था। आसपास के गांवों के छोटे व्यापारी और प्रतिष्ठित गृहस्थ उन्हीं की दुकान से सामान खरीदते थे। बड़ा दिलचस्प व्यक्तित्व था रेड्डियार का। हाथी का रंग; रंग में ही नहीं, रूप में भी वे हाथी जैसे थे। बाईं आंख में भेंगापन। उन्हें मैंने हंसते हुए–मुस्कुराते हुए भी–कभी नहीं देखा। आंवले के आकार में बंधी हुई चोटी। विशाल श्यामल शरीर पर उजली धारा के समान जनेऊ लहराता रहता। छोटी नाक किंतु बड़े बड़े नथुने। उनके अंदर वे लगातार सुंघनी ठूंसते रहते। गांव-देहात की चुनिंदा गालियों का संयोजन करते हुए अपनी दुकान पर काम करनेवाले छोकरों पर वे उनका प्रयोग करते। एक ही कसर थी–संतान भाग्य नहीं मिला था उन्हें। इसलिए वे एक विशिष्ट प्रकार का दान-कर्म करते थे। गरीब लोग किसी भी समय उनकी दुकान से या घर में दस्तक देकर प्रसूति की देशी दवाएं मुफ्त में ले जा सकते थे। दुकान के छोकरों पर वे किस तरह की गालियां बकते थे, इसे अण्णाच्ची सुना सुनाकर हंसते। हंस हंसकर

लोटपोट हो जाते। इतना हंसने लोटपोट होने के लिए उस बात में कुछ भी धरा नहीं है! फिर भी अण्णाच्ची उसके कथन-श्रवण मात्र से हर्षित हो जाते।

वेंकटसुब्बु रेड्डियार के यहां से छुटपन में प्राप्त किराने की दुकानदारी का अनुभव अब उनके लिए काम आया। भादों-आश्विन का महीना था। उन दिनों हाथ में छतरी लेकर घूमने की मेरी आदत नहीं थी। बस से उतरते ही मेरा पहला काम होता था अण्णाच्ची की दुकान पर जाकर हाजिरी देना। उसके बाद ही कोविलपट्टी नगर के अंदर प्रवेश कर पाता था।

आसमान पर छाए बादलों से धुएं के रंग में पानी की बूदें उड़ती आ रही थीं, जैसे कोई उजले रंग की रेत बरसा रहा हो, सूजी के दानों की तरह बूंदें ! मुझे रेलवे स्टेशन के पासवाले प्रेस तक जाना था। मैं इसी उधेड़बुन में खड़ा था, अभी तो हल्की बूंदाबांदी हो रही है, किसी भी समय यह जोर पकड़ सकती है। मेरी परेशानी देखकर अण्णाच्ची ने पूछा, "छतरी चाहिए?" अण्णाच्ची की भी छतरी रखने की आदत नहीं थी। धूप में सूखती पानी में भीगती काठी थी उनकी। काफी समय पहले कोई 'पुण्यात्मा' उनकी दुकान पर अपनी छतरी भूल से छोड़ गया था। वह छतरी अभी तक उनके पास थी। उसे वे बड़ी सुरक्षा और सावधानी के साथ—स्वयं भी उसके उपयोग किए बिना, हमारे जैसे साथियों के मांगने पर भी दिए बिना—रखे हुए थे। वे इसी इंतजारी में थे कि उस छतरी का मालिक किसी भी क्षण में आकर उनसे छतरी मांग सकता है, मांगने के उसी क्षण लौटाने की मुस्तैदी के साथ बैठे हुए थे। गाढ़ी निद्रा में उन्हें कोई जगा दे तब भी वे यही कहते, "यह लो अपनी छतरी", और छतरी उठाकर दे देते। उनके खून में वह सच्चाई और ईमानदारी रची-बसी थी। जहां तक अण्णाच्ची के शील-सदाचार की बात है, कलियुग अभी शुरू नहीं हुआ है। जरा ठगे-से रहने पर सब कुछ लूटने पर अमादा रहनेवाले इस जमाने में ऐसा एक बावरा आदमी ! बीच सड़क पर केले का छिलका पड़ा देखते तो अपनी दुकान से उतरकर उसे सड़क के किनारे फेंक आते। उन पर भरोसा करके कोई भी कीमती चीज (किताब के सिवा!) दे सकते हैं। आदमकद ऊंचाई तक धन का अंबार लगाने पर भी पराए धन का लालच नहीं करते। उन्हें कोई काम सौंपने के बाद आप निश्चिंत होकर सो सकते हैं, हां। पर, किसी भी काम को आसानी से स्वीकार नहीं करते, यह भी एक बात है !

छतरी निकालकर उन्होंने उसे झाड़ा और खोलकर देखा।

"हाय रे ! यह क्या हो गया? बोले। सैकड़ों की संख्या में नन्हें-नन्हें सूराख ! पता नहीं, यह पहले भी ऐसी थी? या दुकान में रहते रहते इसका यह हाल हो गया? उन छिद्रों को देख देखकर अण्णाच्ची का मन दुखी हो रहा था।

मैंने उन्हें समझाया : "व्यवहार किए बिना रखे रहने पर भी 'यह गधी' ऐसे हो जाती है।" भारी मन से ही उन्होंने वह छतरी मुझे सौंपी। (महर्षि कण्व भी शकुन्तला को दुष्यन्त

के पास भेजते हुए इतना अधिक दुखी नहीं हुए होंगे?) छतरी हाथ में लेकर—खोलते हुए—मैंने उस पर दृष्टि डाली।

"काले आसमान पर चांदी के तारे सूई की नोक-से !" मैंने कहा। अण्णाच्ची ठहरे कवि ! मेरे उपमान का आस्वादन करते हुए मुस्कराए। फिर बोले "छतरी सावधान !" मैं सीधे प्रेस की तरफ़ चला गया। जिस काम से गया था, थोड़ी ही देर में वह पूरा हो गया। हल्की हल्की सर्दी लग रही थी। तबीयत हुई गर्मागर्म कॉफी पीने की। प्रेस के पास ही 'कॉफी क्लब' था। प्रेस मैनेजर से विदा लेकर निकल पड़ा।

कॉफी बढ़िया लगी। मन में आया, एक और कप पिया जाए। उस जमाने में कॉफी भी अच्छी बनती थी और अपना शरीर भी ठीक-ठाक था। इडैचेवल की सड़क पर रेड्डियार की दुकान पर हर बार हम दो दो कॉफी पीते। पता नहीं, वैसी जायकेदार कॉफी आजकल कहां जाकर छिप गई है।

स्वाद लेते दूसरा कप खत्म किया ही था कि हमारे एक मित्र पहुंच गए। इस ख्याल से कि उनको साथ देते हुए एक और कॉफी पी जाए, फिर कॉफी का आर्डर दिया। उसे भी खत्म किया गया। गपशप में थोड़ा समय बीता, तब जाकर वहां से निकले। अब बूंदें तगड़ी तगड़ी गिर रही थीं। होटल से बाहर आकर ज्योंही मैंने छतरी खोली, मित्र ने पूछा "वाह, छतरी बहुत बढ़िया है !" मजाक नहीं कर रहे थे, उनका आशय सचमुच यही था। छतरी भी सचमुच बढ़िया ही थी ! कोलम्बो की छतरी, राजा-रानी छापा छतरी !!

ओह राम, यह कैसी लीला है तेरी...कैसे आई यह छतरी मेरे हाथ में?

मित्र से विदा लेकर मैं फिर प्रेस में पहुंचा।

मैनेजर ने पूछा, "क्यों कैसे लौट आए? क्या चाहिए?"

मेरी प्रतीक्षा तो दूसरी ही थी। मैं इसी इंतजार में खड़ा था कि वे पूछेंगे, "आप भी भले आदमी हैं ! फटी-पुरानी छतरी रखकर नई छतरी लेकर चलते बने !"

मेरा इरादा था, उनके पास जाकर माफी मांगूं अपनी गलती के लिए; फिर नई छतरी देकर पुरानी अपनी लेकर चलूं। लेकिन वे हैं कि छतरी का प्रसंग ही नहीं छेड़ रहे हैं। आखिर खुद आगे बढ़कर मैंने छतरी उनकी तरफ बढ़ाई। "क्यों, क्या बात है?" की मुद्रा में वे मेरी ओर ताकने लगे।

"पता नहीं, यह किसकी छतरी है। मैं जो छतरी लाया था, उसे यहीं पर रखा था। अब वह भी नजर नहीं आ रही है !"

"क्या कहा? छतरी?" उन्होंने फिरकर अपनी कुर्सी के पीछे देखा, वह छतरी वहीं टंगी थी। "यहां तो किसी ने भी छतरी नहीं रखी है..." याद करने की कोशिश करते हुए मुझसे बोले। फिर निश्चित स्वर में उन्होंने कहा, "नहीं, यहां कोई भी छतरी नहीं छोड़ गया है।"

6

अब क्या किया जाए? कुछ सूझ नहीं रहा था। मेरे मन ने कहा इस तरह की नई छतरी को भूलनेवाला व्यक्ति जरूर उसकी तलाश में लौटेगा। मैंने अण्णाच्ची की दुकान का पता एक पर्ची पर लिखकर मैनेजर के हाथ में दिया और बताया, "यह छतरी वहीं मिलेगी; छतरी का मालिक आए तो इस पते पर भेजिएगा।" ऐसा कहकर मैं प्रेस से निकला। वापसी में दक्खिनी बाजार जाकर "अण्णामलै एम्पोरियम" में कमीज का कपड़ा लेने के लिए अंदर घुस गया। दीपावली की खरीद के लिए काफी भीड़ लगी थी। पहचान की दुकान थी। इसलिए दुकानदार ने मुझे पास में बुलाकर कपड़ा दिखाया। अपनी पसंद का कपड़ा मिल गया तो थान से एक पीस कटवाकर हाथ में ले लिया। बढ़िया कपड़ा मिलने से दिल में खुशी हो रही थी।

वहां से बाहर आकर मैं सोचने लगा, "दीपावली की हड़बड़ी में इसे सिलवाना ठीक नहीं होगा। रखे रहेंगे, बाद में सिलवा लेंगे।" यों सोचते हुए मैं लौट रहा था। कमीज का कपड़ा वाकई अच्छा मिल गया है, चलो इसे किसी मित्र को दिखाकर खुश हो लें। यह ख्याल आने पर मेरे पैर अण्णाच्ची की दुकान की ओर बढ़ने लगे। खादी छोड़कर दूसरे कपड़े को वे मन से भी नहीं छूते थे, यह अपनी बात थी। लेकिन दूसरों के लिए कपड़ों के संबंध में राय जरूर दे सकते थे।

दूर से ही अण्णाच्ची ने मुझे देख लिया। व्यापार के सिलसिले में वे चाहे जितना व्यस्त रहें, सड़क पर चलनेवाले लोगों पर भी एक नजर रखते थे—मित्र, परिचित-अपरिचित, वांछित-अवांछित कोई भी उनकी नजर से चूक नहीं सकता। हम दोनों के बीच में परस्पर 'नमस्ते' का रिश्ता नहीं था। सहज मुस्कान के आदान-प्रदान से अभिवादन हो जाता था। 'नमस्ते' तो एक बार की चीज होती है, जब किसी को देख लें तब की बात। लेकिन मुस्कान वैसी नहीं है। हृदय में विकसित हो रही प्रसन्नता और आपसी स्नेह को जिस क्षमता के साथ विहंसा मुंह प्रकट कर सकता है, उसके सामने भावहीन 'नमस्ते' कहीं टिक नहीं पाती।

इस समय मेरे मुंह में जो हास और विकास है क्या अण्णाच्ची उसका कुछ अनुमान कर पाएंगे? हरगिज नहीं! पर यह क्या। अण्णाच्ची नामक उस दर्पण पर मेरा हास प्रतिफलित नहीं हो रहा। ज्यों ज्यों मेरा मुंह विहंसता जाता है, उनका मुंह कुम्हलाकर सिकुड़ क्यों रहा है?

"छतरी कहां है?" अण्णाच्ची ने पूछा। मैंने सुना है, चोरों को कोई चीज मिल जाए तो किसी दूसरी चीज को वहीं छोड़ जाते हैं, ऐसा कोई मनोविज्ञान उनके अंदर काम कर रहा होता है। जब कमीज का कपड़ा हाथ लगा तो क्या मैंने छतरी वहीं छोड़ दी?

हाय रे...वह नई छतरी लाकर दिखाया होता तो अण्णाच्ची कितना खुश हो जाते।

नहीं, नहीं खुश कैसे होंगे, नाराज होंगे, असली छतरी छोड़कर ऐसी एक छतरी लाने की वजह से।

कमीज का पार्सल अण्णाच्ची के हाथ में ठूंसकर मैं बाजार की ओर बेतहाशा भागा। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ।

"ऐसी बात है? याद नहीं आ रहा है...छतरी लेकर आप कहां आए थे? मान लें कि आप छतरी लेकर ही आए थे, तब भी इसी भीड़भाड़ में उसे कहां ढूंढ़ सकते हैं? कहां रखी थी छतरी?" मुझे याद आ रहा था, छतरी बंद करने पर उसमें से पानी टपक रहा था। छतरी में से पानी पूरी तरह से छंट जाए इसी ख्याल से छतरी को औंधा करके ड्योढ़ी पर रखा था।

बाहर उतारी हुई चप्पलें जिस तरह 'गायब हो जाती' हैं, वैसे यह भी गायब हो गई!

मेरे भुलक्कड़पन से...नहीं, मेरी बुद्धिहीनता से...किसी और ने फायदा उठा लिया।

क्या किया जाए? छतरी चली गई !

उसके खोने का दुख एक ओर था तो दूसरी ओर अण्णाच्ची को होने वाला भारी अफसोस। दोनों ने मिलकर दिल को बुरी तरह से मरोड़ा।

पुरानी छतरी के साथ कोई आदमी प्रेस में दिया गया पता ढूंढ़ते-तलाशते हुए अब अण्णाच्ची की दुकान पर पहुंचा गया होगा ताकि पुरानी देकर नई बदल ले; उसी समय पुरानी छतरी का असली मालिक भी आकर अपनी छतरी का तकाजा कर रहा होगा। ऐसी एक नाजुक हालत में अण्णाच्ची को ला खड़ा कर दिया, हाय ! चाहे लाखों रुपए खर्च करें, तब भी उसी तरह की दो छतरियां कोई नहीं ला सकेगा।

अण्णाच्ची को अगर अपने मित्रों पर गुस्सा आए तो बिलकुल चिल्लाएंगे नहीं। एकदम चुप्पी साध लेंगे। मानों कुछ भी नहीं हुआ हो। वह उनका मौन अधिक घातक होता है। इससे अगले के दिल में होने वाली यंत्रणा मार खाने से भी अधिक तीव्र होगी। छतरी को लेकर जो कुछ भी हादसा हुआ, सारी बातें सुनते रहे—रोचक वर्णनों के साथ। सुनने के साथ ही कुछ ऐसी चुप्पी साधते बैठे रहे मानो यह सब वे साथ ही साथ भूल रहे हों।

जीवन बहुत ही विनोदपूर्ण होता है।

हम जिस बात का अंदेशा करके डरते रहते, वह कभी घटित नहीं होती ! वे दोनों ही छतरीवाले अण्णाच्ची की तलाश में नहीं आए। याद करने की कोशिश करता हूं तो पूरा ही हादसा सपना-सा लग रहा है।

बहुत दिनों के बाद कभी बातें करते हुए हमें छतरीवाली यह घटना याद आई। मैंने कहा, "अण्णाच्ची, मुझे ऐसा लगता है कि वे दोनों ही छतरीवाले एक साथ एक ही बस में यात्रा करते हुए किसी दुर्घटना में फंसकर मर गए होंगे !"

अण्णाच्ची को मेरा यह मजाक रुचिकर नहीं लगा।

गर्मियां शुरू हो गई थीं। खेती में लगे लोगों के लिए यही अवकाश का समय होता है। हाल ही में मेरी शादी हुई थी। कोई फिल्म देखने के इरादे से पत्नी को साथ में लेकर मैं कोविलपट्टी के लिए निकला। मेरी पत्नी ने लोबिया-मूंग वगैरह एक थैली में भर लिया अण्णाच्ची के यहां देने के लिए। इन चीजों को उनके यहां पहुंचाने के बाद हम दोनों थिएटर चले गए। शुरुआत होते ही मालूम हो गया कि रद्दी फिल्म है। मध्यांतर से पहले ही बारिश ने जोर पकड़ लिया। गर्मियों की बारिश बंद होकर आसमान साफ हो गया था। मौका पाकर हम दोनों थिएटर से निकल पड़े। बाहर आकर देखते क्या हैं, सड़क के दोनों ओर गड्ढों में पानी भरा हुआ है, आसमान पर बादल मधुमक्खी के छत्ते के समान लटक रहे हैं—अब नहीं तो थोड़ी देर बाद उतर आने की मुद्रा में।

मेन रोड से जहां पर इलैयरसनेन्दल की सड़क अलग होती है, वहां पहुंचते पहुंचते 'बालमुरुगन' से पहले ही अण्णाच्ची की आवाज सुनाई दे रही थी ! 'रासनारायणन, रासनारायणन, सड़क से न आइए; इधर से चक्कर काटकर आइए; 'वायर' टूटा पड़ा है, बिजली का तार। दिशासूचक खंभे के पास से चक्कर काटकर हम अण्णाच्ची की दुकान पर गए।

अण्णाच्ची ने कहा कि जहां पर हमारे ठहरने का प्रबंध हुआ है वह जगह ठीक नहीं है। भारी वर्षा के कारण वहां की कच्ची छत पर पानी जमा है, सीलन इतनी ज्यादा है कि किसी भी क्षण छत गिर जाने का खतरा है। उन्होंने सुझाव दिया, "इसलिए बेहतर होगा आप 'बालमुरुगन लाज' में एक कमरा लेकर वहीं ठहरिए।

हमें भी सुझाव ठीक लगा। हमने जाकर एक कमरा ले लिया। फिर वहीं पर नीचे होटल में खाने के लिए बैठ गए।

उस चौराहे के दोनों तरफ दो थिएटर थे जहां से फिल्म के बाद लोग आ रहे थे। उस समय रात के सवा दस बजे होंगे। अण्णाच्ची जोर से आवाज दे रहे थे "सड़क से होकर न आइए। 'वायर टूटा पड़ा है। चक्कर काटके आइए...चक्कर काट के..." ऐसा चिल्लाते हुए अण्णाच्ची ने सड़क के बीचों बीच आड़े में लटके पड़े 'तार' के दोनों तरफ लोगों को रोक दिया था। दोनों ही ओर जमा होने वाले लोगों की संख्या देखते देखते बढ़ रही थी। ऐसे में दो ही विकल्प थे; या तो दोनों तरफ के लोग उल्टी दिशाओं में लौट चलें या जिस तरह हमने किया था, दिशासूचक खंभे तक जाकर चक्कर काटते हुए निकल आएं। उस खंभे के पास से होकर एक समय में दो ही जन निकल सकते हैं। जो समझदार थे, वहां से निकलने लगे। ऐसे लोग बहुत कम थे। इस बीच में लोगों के छंटने का मार्ग न होने से दोनों ओर भीड़ बढ़ती जा रही थी। चारों तरफ सनसनी फैली थी—"क्या है? क्या बात है?" आगे का नजारा देखने की उत्सुकता से पीछे से धक्का मुक्की।

साफ दिखाई दे रहा था, बीच में 'वायर' पड़ा है और दोनों ओर लोग किंकर्तव्यविमूढ़

होकर हिचकते खड़े हैं।

इसी बीच एक जोशीला युवक उस वायर को इस तरह लांघ कर निकाला, जैसे कार्तिक के महीने में मंदिर के सामने अग्नि को लांघ रहा हो। भेड़चाल की तरह तीन-चार जनों ने उस नौजवान का अनुकरण किया। एक साइकिलवाला भी वायर के ऊपर से निकल गया। शायद उसका ख्याल रहा होगा कि अपनी साइकिल का टायर जो है रबड़ का है, बिजली क्या करेगी? लेकिन जब उसकी साइकिल 'वायर' पर से गुजरी तो मुझे ऐसा लगा कि एकाएक लड़खड़ा रही थी।

इस तरह चार पांच लोगों की छलांग और साइकिल वाले के साहस ने संभवतया लोगों में जोश पैदा कर दिया होगा। लोग इस इरादे से आगे बढ़ रहे थे,वायर को लांघकर निकल चलें। दोनों तरफ से भीड़ पास पास आने लगी।

एक पल दो पल तक लोगों का आगे बढ़ना और डरकर पीछे हटना...वही क्रम चलता रहा। इस बीच में उस वायर के ऊपर खाकी वर्दी में एक युवा कंडक्टर गिर गया। उसका शरीर जमीन पर पड़ा था और बाईं कलाई वायर पर।

"हाय रे ..हाय मां...अरे रे...हाय !" के आर्तनाद के साथ वह नौजवान तड़पकर मर रहा था। भीड़ में सब लोगों की नजर उसीके ऊपर थी। सभी जब निष्क्रिय खड़े थे, केवल एक व्यक्ति बड़ी सक्रियता के साथ उस नौजवान की जान बचाने की कोशिश में थे। पास में मणि अण्णाच्ची की दवाइयों की दुकान थी, उसके सामने पार्सल की पेटियों के लंबे तख्ते पड़े थे। उनमें से एक तख्ता हाथ में लिए वे भागे भागे आए।

उन्होंने मन में यह गणना कर ली होगी कि इस तख्ते की सहायता से उसके हाथ को हटा दूं तो उस नौजवान को बचा सकता हूं।

इस तरह भागकर आनेवाले व्यक्ति हमारे अण्णाच्ची ही थे।

7

यह तो मुझे बाद में पता चला—दूसरों ने जब ब्यौरा दिया था—कि वह व्यक्ति अण्णाच्ची थे। मैं यह सारा दृश्य दूर से, बालमुरुगन होटल के अंदर से, देख रहा था।

वह नौजवान कंडक्टर मुश्किल से अठारह या उन्नीस साल का रहा होगा। पता चला, वह लड़का अभी काम सीख ही रहा था। रंग गोरा, घुंघराले बाल। बेचारा जमीन पर औंधा पड़ा था। बाईं कलाई, जिसपर घड़ी बंधी हुई थी, तार के ऊपर थी। होटल के भीतर-बाहर जलती बत्तियां रात को दिन बना रही थीं। होटल के अंदर से दो जनों की बातचीत सुनाई दे रही थी। कोई कह रहा था, "अरे गजब हो गया ! वह लड़का हमारा अम्बि*

* अम्बि : तमिलनाडु में ब्राह्मण घराने के कुमार को आमतौर पर 'अम्बि' कहते हैं।

ठहरा... हमारा अम्बि ! अभी उसे एक महीना भी पूरा नहीं हुआ, गोपालन कंपनी में लगे हुए।"

"कौन? हमारा कंडक्टर अम्बि? हाय रे !" दूसरे ने जवाब दिया।

मैं खड़ा खड़ा देख रहा था: सारी भीड़ जब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देख रही थी—केवल एक व्यक्ति हाथ में तख्ता लिए हुए बड़ी फुर्ती के साथ उस मजदूर बालक की रक्षा करने के लिए आ रहे हैं। सांवला-सा वह तगड़ा रूप अपनी लुंगी को घुटने के ऊपर दोहरा करके बांधे हैं। कंधे पर खादी का अंगोछा लंबाकार झोली की तरह लटका है। भीड़ दूर खड़ी होकर देख रही है।

हाथ में तख्ता-सा लेकर जो व्यक्ति भागे हुए आए थे, कंडक्टर अम्बि की कलाई को तार से हटाने के लिए झुके। दोनों हाथों से तख्ते को जमीन पर टेककर झुकते हुए—जैसे कि कोई खिलाड़ी क्रिकेट के डंडे से बैटिंग कर रहा हो—उसी स्थिति में पलट कर उसी 'वायर' के ऊपर चित्त गिर पड़े। गिरते समय अंगोछा जो खिसका कई तहों में लिपट कर उनका सिरहाना बन गया—तकिये की तरह। ज्यों ही वे तार के ऊपर चित्त गिरे, कंडक्टर अम्बि करवट बदलकर ठीक वायर के ऊपर सीधे लेटा। चित्त लेटे व्यक्ति का बायां हाथ दो बार मुड़ कर तन गया। फिर दोनों शरीर निस्पंद।

जमीन पर चित्त लेटे व्यक्ति को गौर से देखने के बाद ही मुझे पता चल रहा है कि वह अण्णाच्ची हैं। उस समय तक घटी समस्त घटनाएं मेरी आंखों के सामने किसी सनसनीखेज दृश्य के समान दिख रही थीं। रात की उस रोशनी में दूर से देखते हुए मैं उस व्यक्ति को पहले पहचान नहीं पाया था।

जब दिल में चुभन महसूस हुई, मैंने 'अण्णाच्ची !' पुकारते हुए एक कदम आगे रखा। पीछे से मेरी पत्नी ने मुझे पकड़ लिया, पूछने लगी, 'कहां जा रहे हैं?"

आगे बढ़कर भीड़ को धकेलते हुए मैं घटना-स्थल पर पहुंचा। मुझे देखते ही मणि अण्णाच्ची और तंगवेलु हांफते हुए बोले, "देखिए राजनारायणन, कैसा अनर्थ हो गया ! ये हमारे अण्णाच्ची हैं न, जो इस तरह गिरे पड़े हैं।"

मेरा दिमाग बैठ गया। कुछ नहीं सूझ रहा था। चित्त एकदम भ्रमित था। "डोरी की तरह पतले तार में इतनी ताकत?" यह विचार आया तो भय-मिश्रित विस्मय से मैं चौंक उठा। धीरे धीरे बाद में तर्क-बुद्धि काम करने लगी। क्यों हुआ, कैसे हुआ जैसे प्रश्नों का विश्लेषण और अनुमान संभव हुआ। नीचे पड़े हुए हाथ को बिजली के तार से हटाने के लिए सूखा तख्ता ले आने की बात बुद्धिमानी की उपज थी, लेकिन बारिश के कारण गीली जमीन पर भी विद्युत-धारा बह रही होगी, इस सामान्य ज्ञान के अभाव ने—यह सूझ उस क्षण में किसी को भी नहीं हुई थी—एक और जान की बलि ले ली। "मत जाओ, गीली जमीन है; उसमें भी करेंट होगा" इस तरह चिल्लाने की सूझ भीड़ में किसी को नहीं

आई...हमारे लोग कितने अज्ञान में पड़े हुए हैं...पल बीतते बीतते शोक घनीभूत हुआ। अपने को संभालना मुश्किल लग रहा था। मंगवा कर मेज पर रखा खाना ज्यों का त्यों पड़ा था। उसे वैसे ही छोड़ कर हम दोनों ऊपर लाज के अपने कमरे में पहुंचे।

पहले तल्ले के बरामदे से सड़क का दृश्य साफ साफ नजर आ रहा था। बाईं भुजा पर सिर टिकाए कंडक्टर अम्बि लेटा हुआ है। अपने अंगोछे को सिरहाने पर तकिए के समान लगाए अण्णाच्ची चित्त लेटे हुए हैं, मानों आराम से सो रहे हैं—बीच सड़क पर।

बादल फिर से उमड़-घुमड़ कर आ गए, वर्षा होने लगी। हम अपने कमरे के अंदर जा बैठे। मानो बिजली इसी के लिए रुकी थी, हमारे बैठते ही बिजली चली गई। घुप्प अंधेरा, घनघोर वर्षा, असह्य पीड़ा—मन भारी भारी लग रहा था। अचानक पतले किंतु तार-स्वर में, जैसे सलेटी पर पत्थर की कूची से कोई खुरच रहा हो, चीख सुनाई पड़ी—"हाय...मेरे अधिकारी ! मुझे छोड़ गए...ए...!"अण्णाच्ची की पत्नी का रोदन स्वर था। इस चीख-पुकार ने हमें भी ग्रस लिया जैसे बारूद के अंबार पर चिनगारी पड़ने से होती है।

वह चीख लगातार सुनाई दे रही थी। कमरे में मोमबत्ती रखने के लिए आया लाज का छोकरा बोला—"कैसा अंधेर है बाबूजी !"

मोमबत्ती भी जल कर खतम हो गई। मेरी पत्नी ने भारी मन से टिप्पणी की, "लगता है, हम लोग मानों अण्णाच्ची के लिए 'मूंग और धान डालने के लिए'* यहां पर आज पहुंचे हों।"

सुबह पहली बस से उसे गांव भेज दिया, इसी विचार से कि वह गर्भिणी है, और उसे ज्यादा भूखी रहना उचित नहीं होगा।

अण्णाच्ची के नाते-रिश्ते के लोगों के पहुंचते पहुंचते दोपहर बीत गयी थी। अण्णाच्ची का महाप्रयाण शुरू हो गया। अर्थी पर रखने से पहले बिठाए उस शरीर को देख कर कोई नहीं कह सकता कि अण्णाच्ची अब नहीं रहे।

शवयात्रा में यू. रामसामी दिख गया। मेरे पास आकर अफसोस प्रकट किया। कह रहा था कि वह कलकत्ता से उसी सुबह को पहुंचा है। रेल से उतर कर इडैचेवल की बस पकड़ने से पहले अपनी आदत के मुताबिक अण्णाच्ची की दुकान पर हाजिरी देने पहुंचा, तभी उसे मालूम हुआ था। अण्णाच्ची को छोड़कर वह उनके घरवालों में से किसी को नहीं जानता। इसलिए मेरे पास आकर शोक व्यक्त किया, "यूं लगता है भाई, अण्णाच्ची की अंतिम यात्रा में भाग लेने के लिए ही मैं कलकत्ता से इतनी दूर आया हूं।" कहते कहते दुख से उसका गला रुंधा जा रहा था।

---

* दाह संस्कार से पहले मृतक के मुंह में धान और अनाज डाला जाता है।

शवयात्रा आगे बढ़ी, लायल मिल नटराजन आकर शामिल हुए। देखते देखते बहुत-से लोग हो गए। उनमें हर राजनीतिक दल के नेता, कार्यकर्ता और अनुयायी थे।

श्मशान में सभी पार्टियों के नेताओं ने भावुकतापूर्वक भाषण दिए।

अपना पूरा जीवन आम जनता की सेवा में बिताए अण्णाच्ची के नाम की कसमें खाई गईं।

सब ने कहा, "एक मजदूर की जान बचाने की कोशिश में अण्णाच्ची ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।"

बिना अपवाद के सभी ने कहा, "अब अण्णाच्ची के परिवार की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है।" उनके परिवार के संरक्षण के लिए एक 'निधि वसूली समिति' उसी स्थान पर गठित की गई जिसमें सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि शामिल थे। अध्यक्ष सचिव कोषाध्यक्ष आदि तत्काल मनोनीत किए गए।

उसके बाद ही उनके शरीर को अग्नि दी गई।

विद्युत विभाग ने केवल कंडक्टर अम्बि के लिए एक हजार रुपए की मुआवजा रकम दी। कंदसामि चेट्टियार जानबूझ कर बिजली के तार पर जा गिरे, ऐसा कोई कारण बता कर उनके लिए मुआवजा देने से इंकार कर दिया। विद्युत विभाग के इस फैसले से सभी लोग नाखुश थे। पर इस विषय में कोई कुछ नहीं कर पाया।

निधि वसूली समिति ने रसीद-पुस्तकें छपवा कर कई स्थानों को भेज कर वसूली शुरू कर दी।

मैंने एक दिन 'निधि वसूली समिति' के अध्यक्ष से मिल कर पूछा, "अब तक कितनी राशि वसूल हुई होगी?" उनका उत्तर था, "वसूली का काम प्रगति पर है। यह नहीं बता सकता कि कितना वसूल हुआ है। मेरे पास रसीद-पुस्तकें और हिसाब वगैरह अभी तक नहीं पहुंचे हैं।'

हमारे गांव इडैचेवल में भी कोई आया था। मैंने उसके साथ घूमकर वसूली में मदद की और पैसा भिजवाया।

एक महीना हुआ; दो महीने हुए; दिन बीतते चले गए। निधि के विषय में कहीं कोई बात नहीं हो रही थी। सब चुप, अपने अपने काम में मस्त। निधि-समिति के अध्यक्ष पर कोई उंगली तक नहीं उठा सकता। उनका जीवन खुली हुई पुस्तक है। अब तक उन्होंने दूसरों को दिया ही है, किसी से कुछ लिया ही नहीं।

उनसे जाकर मिला तो लाचारी के साथ कहने लगे, "मैं क्या करूं राजनारायणन! वसूली का पैसा मेरे पास आए तभी तो?"

अण्णाच्ची के परिवार को गांव भी नहीं भेजा जा सकता। उनके कुलाचार के अनुसार पूरे एक वर्ष तक उसी स्थान में रहकर मातमपुर्सी करनी होगी। साल पूरा होने तक उनकी

पत्नी घर के बाहर नहीं निकल सकती, इसलिए कोई काम-वाम भी नहीं कर सकती।

अण्णाच्ची के छोटे भाई मुरुगैया कोविलपट्टी में ही किसी प्रेस में काम करते थे। अपने परिवार के साथ अलग रहते थे। फिर भी ऐसे संकट में भैया के परिवार की भरसक मदद किया करते थे। कभी बाजार में मुरुगैया से मुलाकात होती तो मैं दर्याफ्त करता, "अण्णाच्ची का परिवार कैसा है?" उस समय वे गद्‌गद होकर बखान करते कि भाभी बड़ी गुणवती हैं और अपना पूरा समय बच्ची की परवरिश में लगाती हैं।

पूरे एक साल तक वह परिवार कोविलपट्टी में रहा, उसके बाद गांव कोट्‌टै कलुगुमलै चला गया। किंतु आखिर तक अण्णाच्ची के परिवार को उनके नाम से वसूल की गई निधि नहीं दी गई।

सब लोग यही कहते रह गए, "करना चाहिए, अवश्य करना चाहिए, उस परिवार के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए।"

मैं एक बार फिर निधि-समिति के अध्यक्ष से मिला।

उन्होंने कहा "कई जगहों पर वसूली हुई है। लेकिन पैसा मेरे पास नहीं आया है। न कोई हिसाब ही आया है। ऐसे में हम क्या कर सकते हैं भाई? बहुत दिन हो गए। जो पैसा वसूल हुआ होगा, अब उनके पास नहीं मिलेगा। खर्च कर दिया होगा सबने...क्या किया जाए ऐसे लोगों का?"

मरने के बाद भी अण्णाच्ची ने दूसरों की मदद की। इतना जरूर कह सकता हूं कि अण्णाच्ची के परिवार के लिए निधि वसूली करने वाले भाइयों ने उस धन का दुरुपयोग नहीं किया होगा, पीने-पाने में या ऐश-आराम में नहीं लगाया होगा। क्योंकि मैं उन लोगों को भी जानता हूं जिन्होंने वसूली की थी। उन्होंने पैसे को परिवार के लिए खर्च किया होगा।

एक दिन अण्णाच्ची के भाई मुरुगैया से बातें करते हुए मैंने पूछा : "एक साल तक वह परिवार यहीं रहा है। खर्चा-वर्चा कैसे चलता था?"

"जितना हो सके, हम देते थे। फिर ऊपर के खर्च के लिए भैया द्वारा जमा की गई किताबें, पत्र-पत्रिकाएं जितनी थीं उन्हें थोड़ा थोड़ा करके बेचा गया था। इस तरह खर्च जैसे-तैसे पूरा होता था।"

अण्णाच्ची ने भी यही सोचकर ढेर सारी किताबें जमा की थीं कि ये बाद में काम आएंगी। सचमुच वे परिवार के काम आईं। उस परिवार ने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया। साहित्य वह कितना ही श्रेष्ठ और महान क्यों न हो, यदि वह पेट की ज्वाला बुझाने में समर्थ न हो तो उसका प्रयोजन ही क्या है?

अण्णाच्ची को गुजरे आज पूरे पैंतीस वर्ष हो गए हैं। सुनते हैं कि अब उनके परिवार में केवल उनकी पत्नी जीवित हैं।

उनके यादगार के रूप में बची हैं हमारे हृदयों में उनके संबंध में अमर स्मृतियां और फिर यह लेख।

अण्णाच्ची की लिखी हुई कविताओं की कापियां, गीतों का समाहार इत्यादि न जाने कहां कहां किन मिठाई की दुकानों में नमकीन और पकवान लपेटने के काम आकर कैसे कैसे चली गईं। अब जो कुछ शेष हैं अनजान-अपरिचित लोगों के लिए उनके द्वारा रचित अभिनंदन-छंद।

मेरा पूरा विश्वास है कि कहीं किसी मिट्टी की दीवार पर टंगे अभिनंदन-गीत के फ्रेम के पीछे लंबाकार 'रामबाण' कीड़े के रूप में अण्णाच्ची आज भी जीवित हैं; अपनी कविताओं से उन्हें इतना अधिक लगाव था।

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित